\* भगवद्धक्तोंद्वारा की गयी प्रार्थना*\** भक्तमाल-अङ्क ] भगवद्भक्तोंद्वारा की गयी प्रार्थना मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी प्रार्थना परमात्मप्रभुसे प्रार्थना ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि नमस्ते सते ते जगत्कारणाय प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय। मे मा प्रहासी:। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधाम्यृतं नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥ वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवत्। तद् त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं वक्तारमवत्। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्। 'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय अर्थात् मेरे त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥ मन-वाणी दोनों एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्। आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये। हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो। महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥ मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान

मेरा त्याग न करे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्म-विद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मैं वाणीसे श्रेष्ठ शब्दोंका उच्चारण करूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा। वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे मेरी

रक्षा करें और मेरे आचार्यकी रक्षा करें, आचार्यकी रक्षा

करें। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों

तापोंकी शान्ति हो।' ध्रुवकी प्रार्थना

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्विय मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम्। येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं

नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥ 'हे अनन्त परमात्मन्! मुझे आप उन विशुद्ध-हृदय महात्मा भक्तोंका संग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके संगमें मैं आपके गुणों तथा लीलाओंकी कथा-सुधाका पान करके

उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके

दु:खोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच

जाऊँगा।' (श्रीमद्भा० ४।९।११)

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो

वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः। सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥ 'हे जगतुके कारण सत्स्वरूप परमात्मा! आपको

नमस्कार है। हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व! आपको नमस्कार है। शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! आपको नमस्कार है। आप ही एक शरणमें जानेयोग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हैं, आप ही एक पूजा करनेयोग्य हैं। आप ही एक जगतुके

जगतुके कर्ता, पालक और संहारक हैं। आप ही एक निश्चल और निर्विकल्प हैं। आप भयोंको भय देनेवाले हैं, भयंकरोंमें भयकर हैं, प्राणियोंकी गति हैं और पावनोंको पावन करनेवाले हैं। अत्यन्त उच्च पदोंके आप ही नियन्त्रण करनेवाले हैं, आप परसे पर हैं, रक्षण करनेवालोंका भी

पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हैं। आप ही एक

आपको भजते हैं। हम आपको जगत्के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं। आप ही एकमात्र सत्यस्वरूप हैं, निधान हैं, अवलम्बनरहित हैं, इसलिये संसारसागरके

नौकारूप आप ईश्वरकी हम शरण लेते हैं।(तन्त्रोक्तस्तवपंचक)

रक्षण करनेवाले हैं। हम आपका स्मरण करते हैं, हम



\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क प्रह्लादकी प्रार्थना वृत्रासुरकी प्रार्थना यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ। हरे तव पादैकमूल-अहं कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥ दासानुदासो भवितास्मि भूयः। 'वर देनेवालोंमें शिरोमणि मेरे स्वामी! यदि आप मुझे स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यह वर माँगता गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥ हूँ कि मेरे हृदयमें कभी, किसी भी कामनाका—चाहका न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं बीज ही अङ्करित न हो।' (श्रीमद्भा० ७।१०।७) न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा महर्षि आपस्तम्बकी प्रार्थना समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥ को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दु:खितात्मनाम्। अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखभुक्॥ अजातपक्षा इव मातरं खगाः यन्ममास्ति शुभं किञ्चित्तद्दीनानुपगच्छतु। स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः। यत् कृतं दुष्कृतं तैश्च तदशेषमुपैतु माम्॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥ नरकं यदि पश्यामि वत्स्यामि स्वर्ग एव वा॥ 'हे हरे! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि यन्मया सुकृतं किञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः। अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी कृतं तेनापि दुःखार्तास्सर्वे यान्तु शुभां गतिम्॥ 'मेरे लिये वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दु:खित सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो। हे प्राणनाथ! मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता चित्तवाले सम्पूर्ण जीवोंके भीतर प्रवेश करके अकेला ही सबके दु:खोंको भोगता रहूँ।मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी ही सेवामें संलग्न रहे। हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर सभी दीन-दु:खियोंके पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया हो, वह सब मेरे पास आ जाय। भले ही मैं नरकको न स्वर्ग चाहता हूँ, न ब्रह्माका पद, न सम्पूर्ण भूमण्डलका साम्राज्य, न रसातलका एकछत्र राज्य और न योगकी देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरेद्वारा मन, वाणी, शरीर और क्रियासे जो कुछ पुण्यकर्म बना हो, उससे सभी दु:खार्त सिद्धियाँ ही-यहाँतक कि मैं अपनर्भव-मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पाँख उगे बच्चे अपनी माँकी प्राणी शुभगतिको प्राप्त हों।'( स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड) बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ—गौका रन्तिदेवकी प्रार्थना दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये व्याकुल रहती है, मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है। (श्रीमद्भा० ६।११।२४—२६) मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥ भीष्मकी प्रार्थना 'मैं भगवान्से आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति और अपुनर्भव-मोक्ष नहीं चाहता। मैं केवल यही चाहता त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने। हूँ कि समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर उन सबके सारे दु:ख मैं ही भोगूँ, जिससे (फिर) किसी भी वपुरलककुलावृताननाब्जं प्राणीको दु:ख न हो—सभी दु:खसे सदाके लिये छूट विजयसखे रितरस्तु मेऽनवद्या॥ निर्माणित्राकृतिहरूप्राप्ति हिन्दु प्राप्ति है। प्राप्ति हिन्दु प्राप्ति हिन्दु प्राप्ति है। प्राप्ति हिन्दु प्राप्ति हिन्दु विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

	की गयी प्रार्थना * २३
	**************************************
समान श्यामवर्ण है, जिसपर सूर्यकी रश्मियोंके समान	श्रीशंकराचार्यकी प्रार्थना
श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश	अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
श्रीमुखपर घुँघराली अलकावली लटकती रहती है; उन	भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
अर्जुनके सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट रति—प्रीति	दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
हो ।' ( श्रीमद्भा० १।९।३३ )	श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥
कुन्तीकी प्रार्थना	सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।	सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥	उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।	दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामिकञ्चनगोचरम्॥	मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।	परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥	दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
'जगद्गुरो श्रीकृष्ण! हमलोगोंके जीवनमें सर्वदा पद-	भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥
पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे	नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर	इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥
पुनर्जन्मका चक्र मिट जाता है। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य,	'हे भगवान् विष्णु! मेरा अविनय दूर कीजिये, मेरे
विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका मद बढ़ रहा है, वह	मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर
मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो	दीजिये। जगत्में प्राणिमात्रके प्रति दयाभावनाका विस्तार
उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं। आप अकिंचनोंके	कीजिये और इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं
(जिनके पास कुछ भी अपना नहीं है, उन निर्धनोंके) परम	भगवान् श्रीपतिके उन चरणारिवन्दोंकी वन्दना करता हूँ;
धन हैं। आप मायाके प्रपंचसे सर्वथा निवृत्त हैं, नित्य आत्माराम	जिनका मकरन्द गंगा और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो
और परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्यमोक्षके अधिपति	संसार ( जन्म-मरण)-के भयका तथा खेदका छेदन करनेवाले
हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ।'(श्रीमद्भा०	हैं। हे नाथ! (वस्तुत: मुझमें और आपमें) भेद नहीं है,
१।८।२५—२७)	तथापि मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि तरंग ही
बिल्वमंगलकी प्रार्थना	समुद्रकी होती है, समुद्र तरंगका कहीं नहीं होता। हे
हे देव हे दियत हे भुवनैकबन्धो	गोवर्द्धनगिरिको उठानेवाले! हे इन्द्रके अनुज (वामन)! हे
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।	दानवकुलके शत्रु ! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले ! आपके सदृश
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम	प्रभुके दर्शन हो जानेपर क्या भव (जन्म-मरण)-का लोप
हा हा कदा नु भवितासि पदं दूशोर्मे॥	नहीं हो जाता ? हे परमेश्वर ! मत्स्यादि अवतारोंमें अवतरित
हे देव! हे दियत! हे त्रिभुवनके अद्वितीय बन्धु! हे	होकर वसुधाकी सर्वदा रक्षा करनेवाले आपके द्वारा संसारके
कृष्ण! हे लीलामय! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु! हे नाथ!	तापोंसे भयभीत क्या मैं रक्षाके योग्य नहीं हूँ ? हे गुणोंके
े हे प्रियतम! हे नयनाभिराम! हाय, हाय, मैं तुम्हारे चिन्मय	मन्दिर दामोदर! हे सुन्दर मुखारविन्दवाले गोविन्द! संसार-
स्वरूपको कब देख पाऊँगा?	सागरका मन्थन करनेके लिये मन्दर (पर्वत)! मेरे महान्

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क 'जो उन्हीं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वामांगमें प्रसन्ततापूर्वक भयको आप मिटाइये। हे करुणामय नारायण! मैं सब प्रकारसे आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करूँ। यह छ: पदोंके विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-सौभाग्य अपने रूपमें की गयी प्रार्थनारूप भ्रमरी सदा मेरे मुखकमलमें प्रियतमके सर्वथा अनुरूप है, सहस्रों सिखयाँ सदा जिनकी निवास करे।' सेवाके लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको श्रीयाम्नाचार्यकी प्रार्थना देनेवाली देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्मरण करें।' न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी श्रीचैतन्यदेवकी प्रार्थना न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे। न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये। मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्विय॥ अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा। त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥ पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥ न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके सहस्रशो यन्न मया व्यधायि। 'हे जगदीश! मुझे धन, जन, कामिनी, कविता—कुछ भी नहीं चाहिये (मुक्ति भी नहीं चाहिये)—बस, जन्म-सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥ जन्ममें मेरी आप ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो। हे गोविन्द! वह दिन कब होगा, जब आपका नाम लेनेपर मेरी आँखोंसे निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होगी, मेरी वाणी प्रेमावेगसे गद्गद श्चिराय मे कुलिमवासि लब्धः। त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-हो जायगी और मेरा शरीर पुलकित हो जायगा।' (शिक्षाष्टक) मन्त्रमं पात्रमिदं दयायाः॥ श्रीसूरदासजीकी प्रार्थना 'मैं न धर्मनिष्ठ हूँ न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके तुम तजि और कौन पै जाऊँ। चरणारविन्दोंका भक्त ही हूँ। मैं तो अकिंचन हूँ, अनन्यगति काके द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाऊँ॥ हूँ और शरणागतरक्षक आपके चरणकमलोंकी शरण आया ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिये अघाऊँ। हूँ। संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है, जिसको हजारों अंतकाल तुमरो सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं पाऊँ॥ बार मैंने न किया हो। ऐसा मैं अब फलभोगके समयपर रंक अयाची कियो सुदामा, दियो अभय पद ठाऊँ। विवश (अन्य-साधनहीन) होकर, हे मुकुन्द! आपके आगे कामधेनु चिंतामनि दीनो, कलप-बुच्छ तर छाऊँ॥ बारम्बार रोता—क्रन्दन करता हूँ। अनन्त महासागरके भीतर भवसमुद्र अति देखि भयानक, मनमें अधिक डराऊँ। डूबते हुए मुझको आज अति विलम्बसे आप तटरूप होकर कीजै कृपा सुमिरि अपनो पन, सूरदास बलि जाऊँ॥ मिले हैं और हे भगवन्! आपको भी आज यह दयाका गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी प्रार्थना अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान। अनुपम पात्र मिला है।' (श्रीआलवन्दारस्तोत्र) श्रीनिम्बार्काचार्यकी प्रार्थना जनम जनम रित राम पद यह बरदानु न आन॥ अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर। विराजमानामनुरूपसौभगाम् अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥ सखीसहस्रै: परिसेवितां सदा कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥ तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

st भक्त और भगवानstभक्तमाल-अङ्क ] भक्त और भगवान् दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥ भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं श्रीभगवान्ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा में हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्। कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे। सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥ भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्भव! मेरा नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साध्भिर्विना। श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥ भक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसी भी प्राणीसे ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। वैरभाव नहीं रखता और घोर-से-घोर दु:ख भी इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो प्रसन्नतापूर्वक सहता है। उसके जीवनका सार है अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्धांगिनी सत्य, और उसके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना कभी नहीं आती। वह समदर्शी और सबका भला विनाशरहित लक्ष्मीको। ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। करनेवाला होता है। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरिकञ्चनः। अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥ जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोडकर केवल मेरी उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती। वह संयमी, मधुरस्वभाव और पवित्र होता है। संग्रह-शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हुँ। परिग्रहसे सर्वथा दूर रहता है। किसी भी वस्तुके लिये मिय निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः। वह कोई चेष्टा नहीं करता। परिमित भोजन करता है वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सित्स्त्रयः सत्पतिं यथा।। और शान्त रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। उसे केवल मेरा ही भरोसा होता है और वह आत्मतत्त्वके जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको चिन्तनमें सदा संलग्न रहता है। प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः। द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं। अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्। वह प्रमादरहित, गम्भीरस्वभाव और धैर्यवान् नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्।। होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यू-मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण-ये छहों उसके वशमें रहते हैं। वह स्वयं तो कभी कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें किसीसे किसी प्रकारका सम्मान नहीं चाहता, परंतु सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे दूसरोंका सम्मान करता रहता है। मेरे सम्बन्धकी बातें उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते, फिर समयके फेरसे दूसरोंको समझानेमें बड़ा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रताका व्यवहार करता है। उसके हृदयमें नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है। साधवो हृदयं मह्यं साधनां हृदयं त्वहम्। करुणा भरी होती है। मेरे तत्त्वका उसे यथार्थ ज्ञान मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागिप॥ होता है।

ऊँचे स्वरसे गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है, न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्णयं भैया उद्भव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। सारे संसारको पवित्र कर देता है। योगसिद्धीरपुनर्भवं वा न मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥ श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्। जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥ जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका, उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी अमृतमयी कथामें श्रद्धा रखे, निरन्तर मेरे गुण-लीला इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका और नामोंका संकीर्तन करे, मेरी पूजामें अत्यन्त निष्ठा ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बडी-बडी रखे और स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करे। सिद्धियों और मोक्षतककी अभिलाषा नहीं करता। आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्। मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः। मेरी सेवा-पूजामें प्रेम रखे और सामने साष्टांग न च सङ्कर्षणो न श्रीनैवात्मा च यथा भवान्॥ उद्भव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम लोटकर प्रणाम करे, मेरे भक्तोंकी पूजा मेरी पूजासे हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बढ़कर करे और समस्त प्राणियोंमें मुझे ही देखे। बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकै: स्मरन्। आत्मा भी नहीं है। मर्व्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः॥ निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्। उद्भवजी! मेरे भक्तको चाहिये कि अपने सारे अनुव्रजाम्यहं नित्यं पृयेयेत्यङ्घिरेण्भिः॥ कर्म मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे उनको करते जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगतुके चिन्तनसे समय मेरे स्मरणका अभ्यास बढाये। कुछ ही दिनोंमें सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन उसके मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायँगे। उसके रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान मन और आत्मा मेरे ही धर्मोंमें रम जायँगे। दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्। यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूलि देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च॥ उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ। मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानोंमें निवास करते वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं हों, उन्हींमें रहे और देवता, असुर अथवा मनुष्योंमें जो रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्छ। मेरे अनन्य भक्त हों, उनके आचरणोंका अनुसरण करे। विलज्ज उद्गायति नृत्यते च अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम। मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥ जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित्त मेरी प्राप्ति के जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और

म्बिलिखिखान Dहँडरके भी उपलब्हें, तसहीं ज़िल्ह छोटुकुरो वहाँ भी भी मान गामिक एक स्वापन कि कि प्राप्त कर कि प्रा

पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी

भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \*

[ भक्तमाल-अङ्क

# श्रीभक्तमाल

#### श्रीनाभादासजीकृत भक्तमालका मंगलाचरण

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक। इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥१॥ मंगल आदि बिचारि रहि बस्तु न और अनूप। हरिजन को जस गावते हरिजन मंगलरूप॥२॥ संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास। भजिबे को दोई सुघर कै हिर कै हिरदास॥३॥ ( श्रीगुरु ) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ। भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥४॥ भगवान्के भक्त, भगवान्की भक्ति, भगवान् और भगवद्धक्तोंका चरित्रगान करनेमें भगवद्धक्त ही मंगलरूप भगवत्तत्त्वका बोध करानेवाले गुरुदेव—ये अलग-अलग हैं॥२॥ वेद, पुराण, इतिहास आदि सभी शास्त्रोंने तथा सभी साधु-सन्तोंने यही निर्णय किया है कि भजन,

चार नाम और चार वपु हैं, पर वास्तवमें इनका वपु

(स्वरूप—तत्त्व) एक ही है। इनके श्रीचरणोंकी वन्दना करनेसे समस्त विघ्नोंका पूर्णरूपसे नाश हो जाता है॥१॥

यही समझमें आता है कि भक्त-चरित्रोंके समान दूसरी और

ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरणके सम्बन्धमें विचार करनेपर

कोई वस्तु सुन्दर नहीं है, जिससे मंगलाचरण किया जाय। | होनेका इससे सरल दूसरा कोई उपाय नहीं है॥४॥

# श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण

महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये। ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥ कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये। जानों निजमित ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥१॥ लिया। वह आज्ञा यह थी कि श्रीभक्तमालकी विस्तारपूर्वक

श्रीप्रियादासजी भक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीकाका । मंगलाचरण एवं इस टीकाके लिखे जानेका हेतु बताते हुए कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य एवं

गुरुदेव श्रीमनोहरदासजीके श्रीचरणकमलका हृदयमें ध्यान और मुखसे नाम-संकीर्तन कर रहा था, उसी समय

इस प्रकार भक्तोंका चरित्र कहकर अपनी वाणीको विश्राम दीजिये अर्थात् भक्तोंका चरित्र कहनेमें वाणीको श्रीनाभाजीने मझे आज्ञा दी, जिसे मैंने शिरोधार्य कर <sup>|</sup>

टीका करके सुनाइये। टीका कवित्त छन्दोंमें कीजिये, जो कि अत्यन्त प्रिय लगे और सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध हो।

आराधनाके लिये भगवान् या भगवान्के भक्त—दो ही सबसे सुन्दर हैं॥ ३॥स्वामी श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)-

ने मुझ नारायणदास (नाभादास)-को आज्ञा दी कि

भक्तोंका यशोगान करो; क्योंकि संसार-सागरसे पार

लगा दीजिये। ऐसा कहकर श्रीनाभाजीने वाणीको

विश्राम दिया, तब मैंने भावनामें ही निवेदन किया कि | श्रीशुकदेवजी वृक्षोंमें प्रवेश करके स्वयं बोले थे, वैसे ही मैं तो अपनी बुद्धिको जानता हूँ कि वह टीका करनेमें । आप भी मेरी जड़मितमें प्रवेश करके टीकाकी रचना

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \*

[ भक्तमाल-अङ्क

होकर दुढतापूर्वक सुनायी है। यदि नीरस हृदयवाला व्यक्ति

भी सदा इसका श्रवण करे तो उसके हृदयमें सरसता होगी

और सरस हृदयवालेके लिये बारम्बार सुननेपर भी यह टीका

उत्तरोत्तर सरस प्रतीत होगी। ऐसी यह 'भक्तिरसबोधिनी'

सुन्दर नामवाली टीका गायी है, जो भक्तिके सभी रसोंका

प्रतिज्ञारूपी सुगन्धित द्रव्य लगाइये। फिर नाम-संकीर्तनरूप

अनेक आभूषण, हरि और साधुसेवाके कर्णफूल तथा मानसी सेवाकी सुन्दर नथ पहनाइये। फिर सत्संगरूपी

अंजन लगाइये। जो भक्तिमहारानीका इस प्रकार शृंगार

करके फिर उन्हें अभिलाषारूपी बीडा (पान) अर्पण

श्रीप्रिया-प्रियतमको प्राप्त करता है। ऐसा सन्तों एवं

भक्तिरसबोधिनी टीकाका नामस्वरूप-वर्णन

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है। अक्षर मधुरताई अनुप्रास जमकाई अति छवि छाई मोद झरी सी लगाई है।।

काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होति नाभाजू कहाई, याते प्रौढ़िकै सुनाई है।

हृदै सरसाई जो पै सुनिये सदाई, यह 'भिक्तरसबोधिनी' सुनाम टीका गाई है॥२॥

सर्वथा असमर्थ है, परंतु मैंने श्रीमद्भागवतमें सुना है कि । करा लेंगे॥१॥

इस कवित्तमें श्रीप्रियादासजी अपने काव्यकी विशेषताएँ। अपने मुखसे प्रशंसा करना अच्छा नहीं होता, परंतु इसे तो श्रीनाभाजीने कहवाया है, इसीसे इसकी प्रशंसा नि:शंक एवं टीकाका नाम बताते हुए कहते हैं कि मैंने टीका-

काव्यकी ऐसी रचना की है, जो पाठकों और श्रोताओंको सुख देनेवाली है और अत्यन्त सुहावनी लगती है। इसमें

सचाई है अर्थात् सत्य-सत्य कहा गया है। पुनरुक्ति दोषको मिटा दिया गया है। अक्षरोंकी मधुरता, अनुप्रास और यमक

आदि अलंकारोंसे अत्यन्त सुशोभित होकर इस टीका-काव्यने आनन्दकी झरी-सी लगा दी है। अपने काव्यकी | बोध करानेवाली है॥२॥

श्रीभक्तिदेवीका शृंगार श्रद्धाई फुलेल औ उबटनौ श्रवण कथा मैल अभिमान अंग अंगनि छुड़ाइये। मनन सुनीर अन्हवाइ अंगुछाइ दया नविन वसन पन सोधो लै लगाइये॥

आभरन नाम हरि साधु सेवा कर्णफूल मानसी सुनथ संग अंजन बनाइये। भक्ति महारानीकौ सिंगार चारु बीरी चाह रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये॥३॥

शंगारित रूप विशेष आकर्षक होता है. अत:। इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये टीकाकारने इस कवित्तमें

श्रीभक्तिदेवीके शृंगारका वर्णन एक रूपकके द्वारा किया है। भक्तिदेवीके श्रीविग्रहकी निर्मलताके लिये श्रद्धारूपी फुलेलसे शुष्कता दुरकर कथाश्रवणरूपी उबटन लगाइये

और अहंकाररूपी मैलको प्रत्येक अंगसे छुडाइये। फिर करके उनके सुन्दर स्वरूपका दर्शन करता रहे, वह मननके सुन्दर जलसे स्नान कराकर दयाके अँगोछेसे पोंछिये। उसके बाद नम्रताके वस्त्र पहनाकर भक्तिमें । शास्त्रोंने गाया है॥३॥

## भक्तिरसबोधिनी टीकाकी महिमा

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृंगारु चारु, पाँचों रस सार विस्तार नीके गाये हैं।

टीका को चमत्कार जानौगे विचारि मन, इनके स्वरूप मैं अनुप लै दिखाये हैं।।

जिनके न अश्रुपात पुलिकत गात कभू, तिनहूँ को भाव सिंधु बोरि सो छकाये हैं। जौलौं रहें दूर रहें विमुखता पूर हियो, होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥४॥

• •	भावका वर्णन * ३९
<u> इस कवित्तमें टीकाकार टीकाकी विशेषता बताते हुए</u>	कार्तन आदि करके प्रेमवश जिनके नेत्रोंमें कभी भी आनन्दके
कहते हैं कि इस भक्तिरसबोधिनी-टीकामें शान्त, दास्य,	आँसू नहीं आते हैं और शरीरमें रोमांच नहीं होता है, ऐसे
सख्य, वात्सल्य और शृंगार—भक्तिके इन पाँचों रसोंका	नीरस, कठोर हृदयवाले लोगोंको भी भक्तिके भावरूपी
तत्त्व विस्तारसे अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। इनके	समुद्रमें डुबाकर तृप्त कर दिया गया है। जबतक वे इससे
सुन्दर स्वरूपोंको जैसा मैंने भलीभाँति उत्तम रीतिसे वर्णन	दूर हैं, तभीतक भक्तिसे पूर्ण विमुख हैं, किंतु यदि कान
कुन्दर स्वरूपाका जसा मन मलामाति उत्तम रातिस वर्णन करके दिखाया है, इस चमत्कारको पाठक एवं श्रोता अपने	ूर हे, तमातक माक्तस पूर्ण विमुख हे, किंतु वाद कान लगाकर इसका थोड़ा भी श्रवण करेंगे तो उनका हृदय चूर–
	•
मनमें अच्छी तरहसे विचार करनेपर ही जानेंगे। श्रवण,   	चूर होकर रससे परिपूर्ण हो जायगा॥४॥
भक्तमालव	•
पंच रस सोई पंच रंग फूल थाके नीके,	·
वैजयन्ती दाम भाववती अलि 'नाभा', नाम	·
धारी उर प्यारी, किहूँ करत न न्यारी, अहो! देखौ गति न्यारी ढरियापनको आई है।	
भक्ति छिबभार, ताते, निमतशृंगार होत, हो	त वश लखै जोई याते जानि पाई है॥५॥
प्रस्तुत कवित्तमें श्रीभक्तमालको पंचरंगी वैजयन्ती	किया, उन्हें यह इतनी प्रिय लगी कि इसे वे कभी भी अपने
माला बताकर उसकी महिमा, सुन्दरता और भगवित्प्रयताका	कण्ठसे अलग नहीं करते हैं। इस मालाकी विचित्र गति तो
वर्णन किया गया है। पूर्व कवित्तमें कहे गये पाँच रस ही	देखिये कि भगवान्ने इसे कण्ठमें धारण किया और यह
मानो फूलोंके सुन्दर गुच्छे हैं, भाववती नाभा नामकी सखीने	लटककर श्रीचरणोंमें आ लगी है। इस मालामें भक्तिकी
अपने प्रियतमको पहनानेके लिये इसे अच्छी तरहसे बनाया	सुन्दरताका भार है, इसीसे झुकी है। पंचरंगी भक्तमाल पहने
है। यह वैजयन्ती माला इतनी सुन्दर है कि लोकाभिराम	हुए श्यामसुन्दरका जो दर्शन करता है, वह उनके वशमें
श्यामसुन्दर श्रीरामकी बुद्धि भी इसे देखकर ललचा गयी।	होकर उन्हें वशमें कर लेता है। यह रहस्यकी बात भक्तमालके
उन्होंने इस प्यारी वनमालाको अपने वक्ष:स्थलपर धारण	द्वारा जानी गयी है॥५॥
संतसंगके प्रभावका वर्णन	
भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरीहू कौ, वारिदै बिचारि वारि सींच्यो सत्संग सों।	
लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँदिशि कढ़न सो चढ़न अकाश, यश फैल्यो बहुरंग सों॥	
संत उर आल बाल शोभित विशाल छाया, वि	जेये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों।
देखौ बढ़वारि जाहि अजाहू की शंका हुती, र	ताहि पेड़ बाँधे झूमें हाथी जीते जंग सों॥६॥
भक्तिका वृक्ष जब साधकके हृदयमें छोटे–से पौधेके	वृक्षकी छाया अर्थात् सत्संग पाकर त्रिविध तापोंसे तपे
रूपमें होता है, तब उसे हानिका भय मायारूपी बकरीसे भी	जीवसमूह सन्तापरहित होकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। इस
होता है, अत: पौधेकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर	प्रकार सार-सम्भार करनेपर इस भक्तिका विचित्ररूपसे
विचाररूपी घेरा (थाला) लगाकर सत्संगरूपी जलसे सींचा	बढ़ना तो देखो कि जिसको पहले कभी छोटी-सी बकरीका
जाता है, तब उसमें चारों ओरसे शाखा-प्रशाखाएँ निकलने	भी डर था, उसीमें आज महासंग्रामविजयी काम, क्रोध
लगती हैं और वह आकाशकी ओर चढ़ने-बढ़ने लगता है।	आदि बड़े-बड़े हाथी बँधे हुए झूम रहे हैं, परंतु उस वृक्षको
सरल साधुहृदयरूप थालेमें सुशोभित इस विशाल भक्ति-	किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं॥६॥

[ भक्तमाल-अङ्क भक्तमाल-स्वरूपवर्णन

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \*

#### जाको जो स्वरूप सो अनुप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहिं मध्य लाल है।

गुण पै अपार साधु कहैं आंक चारिही में, अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है।।

सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानो, घूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है। सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है॥७॥

जिस भक्तका जैसा सुन्दरस्वरूप है, उसको | विशेषता है। सन्तोंकी सभा इसे सुनकर भक्तमाल श्रीनाभाजीने अति उत्तम प्रकारसे अपने काव्यमें स्पष्ट

कर दिया है। कविता ऐसी की है कि जैसे महीन वस्त्रके

अन्दर रखे हुए माणिक्य रत्नकी चमक बाहर प्रकाश करे, उसी प्रकार कविताकी शब्दावलीसे भक्तस्वरूप

प्रकट होता है। साधु-भक्तोंके गुण और उनकी महिमा अपार है, किंतु नाभाजीने सन्तगुरुकृपासे थोड़े ही

अक्षरोंमें भक्तोंके गुणोंका ऐसी विचित्रताके साथ वर्णन किया है कि उसके अनेक अर्थ होते हैं और गुणोंका

अपार विस्तार हो जाता है। यही सच्चे टकसाली कविकी । भक्तमाल है॥७॥ भक्तमाल-माहात्म्यवर्णन बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करें हरें जगपाप, जाप हियो परिपूर है।

जानि सुख मानि हरिसंत सनमान सचे बचेऊ जगतरीति, प्रीति जानी मूर है।। तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधिसकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है। शोभित तिलक भाल माल उर राजै, ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है॥८॥ कोई बड़े साधक कैसे ही अच्छे भक्तिमान् हों,

रात-दिन भगवानुके गुणोंका गान करते हों, संसारके पापोंको हरते हों, जप-ध्यान आदिसे उनका हृदय परिपूर्ण हो, श्रीहरि और सन्तोंके स्वरूपको जानकर

सचाईसे उनकी सेवा और उनका आदर भी करते हों तथा उसमें सुख भी मानते हों—जगतुके मायिक प्रपंचोंसे

बचे भी हों और प्रेमको ही मूलतत्त्व मानते हों—इतनेपर | उसका जानना असम्भव है॥८॥

भक्तमालके मंगलाचरणकी भक्तिरसबोधिनी टीका हरि गुरु दासनि सों साँचो सोई भक्त सही गही एक टेक फेरि उर ते न टरी है।

भक्ति रस रूप कौ स्वरूप यहै छिबसार चारु हरिनाम लेत अँसुवन झरी है।। वही भगवन्त सन्त प्रीति को विचार करै, धरै दूरि ईशता हू पांडुन सो करी है। गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहाँ गाई श्री पैहारी जू की रीति रंगभरी है॥ ९॥

काव्यका रसास्वादनकर आनन्दविभोर होकर झुम रही है, मानो सन्तरूपी भ्रमरसमूह चरित्ररूपी सुगन्धित पुष्पोंपर मँडरा रहा है। आश्चर्यचिकत होकर वे कहते हैं कि यह कैसी विचित्र रसमयी कविता है! मैंने अगर अर्थात्

स्वामी श्रीअग्रदेवजीका नाम तो सुना था, परंतु अब मैंने जाना और अनुभव किया कि अगर (श्रीअग्रदेवजी) वस्तुत: अगर (सुगन्धित वृक्ष ही) हैं, जिनसे नाभाजी-

जैसा इत्र उत्पन्न हुआ है और जिसकी दिव्य सुगन्ध यह

भी भक्तिकी आराधना कठिन है, उसकी आराधना कोई

कैसे कर सकता है? विशुद्ध भक्तिका स्वरूप समझमें नहीं आता है, मन कम्पित होकर शिथिल हो जाता है। चाहे मस्तकपर सुन्दर तिलक और गलेमें कण्ठी माला सुशोभित हो, परंतु बिना भक्तमाल-पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन किये भक्तिका स्वरूप बहुत दूर है,

ईश्वरताको दूर रखकर जो भक्तोंकी प्रीतिको सदा | गुरुताकी सच्चाई भक्तमालमें वहाँ दिखायी गयी है, ध्यानमें रखे, वही भगवान् है, जैसा कि श्रीकृष्णने जहाँ पयोहारी श्रीकृष्णदासजीकी आनन्दमयी अनोखी राजसूययज्ञमें पाण्डवोंके साथ किया है। गुरुदेवकी रीति गायी गयी है॥९॥

भक्तमालकी रचनाके लिये श्रीनाभाजीको आज्ञा प्राप्त होना

\* भक्तमालकी रचनाके लिये श्रीनाभाजीको आजा प्राप्त होना \*

कवित्त ११ ]

अचरज दयो नयो यहाँ लौं प्रवेश भयो, मन सुख छयो, जान्यो सन्तन प्रभाव को।

मानसी सेवामें संलग्न थे और श्रीनाभाजी अतिकोमल एवं | देकर पाला है, आपके उसी दासने प्रार्थना की है॥ १०॥

देवजीको) महान् तथा नवीन आश्चर्य हुआ। मनमें विचारने लगे कि इसका यहाँ मेरी मानसी-सेवातक प्रवेश कैसे हो गया और यहींसे जहाजकी रक्षा कैसे की? विचार करते ही उनके मनमें बडी प्रसन्नता हुई। वे जान गये कि यह सब

सन्तोंकी सेवा तथा उनके सीथ-प्रसाद-ग्रहणका ही प्रभाव है, जिससे ऐसी दिव्य दुष्टि प्राप्त हो गयी है। तब श्रीअग्रदेवजीने आज्ञा दी कि 'तुम्हारे ऊपर यह साधुओंकी कृपा हुई है।

अब तुम उन्हीं साधु-सन्तोंके गुण, स्वरूप और हृदयके

(श्रीनाभाजीका उपर्युक्त कथन सुनकर श्रीअग्र-

मानसी स्वरूप में लगे हैं अग्रदास जू वै करत बयार नाभा मधुर सँभार सों। चढ़्यों हो जहाज पै जु शिष्य एक आपदा में कस्त्रौ ध्यान खिच्यो मन छूट्यो रूप सार सों॥

कहत समर्थ गयो बोहित बहुत दूरि आवो छिब पूरि फिर ढरो ताहि ढार सों। लोचन उघारि कैं निहारि कह्यौ बोल्यौ कौन! वही जौन पाल्यो सीथ दै दै सुकुवार सों॥ १०॥ एक बारकी बात है, स्वामी श्रीअग्रदेवजी महाराज | मधुर संरक्षणके साथ धीरे-धीरे प्रेमसे पंखा कर रहे थे। उसी समय श्रीअग्रदासजीका एक शिष्य जहाजपर चढा

श्रीअग्रदासजीका

श्रीअग्रदासजीका ध्यान अतिसुन्दरस्वरूप भगवान् श्रीसीतारामजीकी सेवासे हट गया। गुरुदेवकी मानसी सेवामें विघ्न समझकर श्रीनाभाजीने पंखेकी वायुसे जहाजको संकटसे पार कर दिया और श्रीगुरुदेवसे नम्र

निवेदन किया कि प्रभो! जहाज तो बहुत दूर निकल गया, अब आप उसी शोभापूर्ण भगवान्की सेवामें लग जाइये।

हुआ समुद्रकी यात्रा कर रहा था। उसका जहाज संकट (भँवर)-में फँस गया। चालक निरुपाय हो गये, तब उस

स्मरण

किया।

यह सुनकर श्रीअग्रदेवजीने आँखें खोलीं और नाभाजीकी ओर देखकर कहा कि अभी कौन बोला? श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा-जिसे आपने बचपनसे सीथ-प्रसाद

आज्ञा तब दई, 'यह भई तोपै साधु कृपा उनहीं को रूप गुन कहो हिये भाव को'॥ बोल्यो कर जोरि, 'याको पावत न ओर छोर, गाऊँ रामकृष्ण नहीं पाऊँ भक्ति दाव को। किह समुझाइ, 'वोई हृदय आइ कहैं सब, जिनलै दिखाय दई सागर में नाव को।॥११॥

> हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! में श्रीराम-कृष्णके चरित्रोंको तो कुछ गा भी सकता हूँ, परंतु सन्तोंके चरित्रोंका ओर-छोर नहीं पा सकता हूँ; क्योंकि उनके रहस्य अतिगम्भीर हैं, मैं भक्तोंकी भक्तिके रहस्यको नहीं पा सकता।' तब

> भावोंका वर्णन करो।' इस आज्ञाको सुनकर श्रीनाभाजीने

श्रीअग्रदेवजीने समझाकर कहा—'जिन्होंने तुम्हें मेरी मानसी सेवा और सागरमें नाव दिखा दी, वे ही भक्त भगवान् तुम्हारे हृदयमें आकर सब रहस्योंको कहेंगे और अपना स्वरूप

दिखायेंगे'॥ ११॥

था। आश्चर्यजनक एक नयी बात यह जानिये कि ये

जन्मसे ही नेत्रहीन थे। जब इनकी आयु पाँच वर्षकी हुई,

उसी समय अकालके दु:खसे दु:खित माता इन्हें वनमें

छोड़ गयी। माता और पुत्र दोनोंके लिये यह कितनी बड़ी विपत्ति थी। इसे आपलोग सोचिये। दैवयोगसे

श्रीकील्हदेवजी और श्रीअग्रदेवजी—दोनों महापुरुष उसी

मार्गसे दर्शन देते हुए निकले। बालक नाभाजीको अनाथ

जानकर जो कुछ दोनोंने पूछा, उसका उन्होंने उत्तर दिया। वे बडे भारी सिद्ध सन्त थे। उन्होंने अपने

कमण्डलुसे जल लेकर नाभाजीके नेत्रोंपर छिडक दिया।

सन्तोंकी कृपासे नाभाजीके नेत्र खुल गये और सामने

[ भक्तमाल-अङ्क

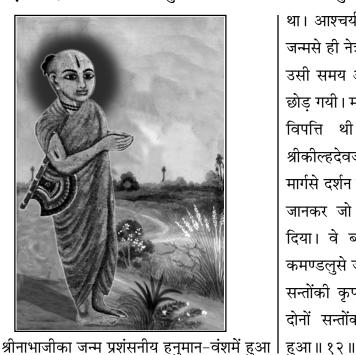
श्रीनाभाजीका चरित्र-वर्णन

हनुमान वंश ही में जनम प्रशंस जाको भयो दुगहीन सो नवीन बात धारिये।

उमिर वरष पाँच मानि कै अकाल आँच माता वन छोड़ि गयी विपति विचारिये॥

कील्ह और अगर ताहि डगर दरश दियो लियो यों अनाथ जानि पूछी सो उचारिये।

बड़े सिद्ध जल लै कमण्डलु सों सींचे नैन चैन भयो खुले चख जोरी को निहारिये॥ १२॥



दोनों सन्तोंको उपस्थित देखकर इन्हें परम आनन्द

पांय परि आंसू आये कृपा करि संग लाये कील्ह आज्ञा पाइ मन्त्र अगर सुनायो है। गलते प्रगट साधु सेवा सो विराजमान जानि अनुमानि ताही टहल लगायो है।।

चरण प्रछाल सन्त, सीथ सों अनन्त प्रीति जानी रस रीति ताते हृदै रंग छायो है।

भई बढ़वारि ताकौ पावै कौन पारावार जैसो भक्तिरूप सो अनूप गिरा गायो है॥१३॥

चरणोंमें पड़ गये। उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये। दोनों सन्त

कृपा करके बालक नाभाजीको अपने साथ लाये।

श्रीकील्हदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीअग्रदेवजीने इन्हें

राममन्त्रका उपदेश दिया और 'नारायणदास' यह नाम

रखा। गलता आश्रम (जयपुर)-में साधुसेवा प्रकट प्रसिद्ध

थी। वहाँ सर्वदा सन्त-समूह विराजमान रहता था। श्रीअग्रदेवजीने सन्तसेवाके महत्त्वको जानकर और सन्तसेवासे

दोनों सिद्ध महापुरुषोंके दर्शनकर नाभाजी उनके | बनेगा—यह अनुमानकर नाभाजीको सन्तोंकी सेवामें लगा

दिया। सन्तोंके चरणोदक तथा उनके सीथ-प्रसादका

सेवन करनेसे श्रीनाभाजीका सन्तोंमें अपार प्रेम हो गया। इन्होंने भक्तिरसकी रीतियाँ जान लीं। इससे इनके हृदयमें

अद्भुत प्रेमानन्द छा गया। हृदयमें भक्त-भगवान्के प्रेमकी

ऐसी अभिवृद्धि हुई कि जिसका ओर-छोर भला कौन पा सकता है! इस प्रकार जैसे श्रीनाभाजी मूर्तिमान् भक्तिके

स्वरूप हुए, वैसे ही सुन्दर वाणीसे इन्होंने भक्तमालमें ही यह समर्थ होकर जीवोंका कल्याण करनेवाला भक्तोंके चरित्रोंको गाया है॥१३॥

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीलालाचार्यजी (कोउ) मालाधारी मृतक बह्यो सरिता में आयो। दाह कृत्य ज्यों बंधु न्योति सब कुटुँब बुलायो॥ नाम सकोचहिं बिप्र तबहिं हरिपुर जन आए। जेंवत देखे सबनि जात काहू नहिं पाए॥ लालाचारज लच्छधा प्रचुर भई महिमा जगति। ( श्री ) आचारज जामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥३३॥

भण्डारा जानकर ब्राह्मणलोग नाक-भौंह सिकोडने लगे

और भोजन करने कोई नहीं आया। तब वैकुण्ठधामसे

भगवानुके पार्षद आये, जिन्हें भोजन करते हुए तो सभी

लोगोंने देखा, परंतु जाते समय वे आकाशमार्गसे चले

गये। किसीको मिले नहीं, उन्हें कोई न देख पाया। इस

चमत्कारसे लालाचार्यजीकी महिमा संसारमें लाखों गुनी

शव बहता हुआ उधर आया, उसके शरीरपर वैष्णव चिहन

अंकित थे और वह कण्ठी-माला धारण किये हुए था।

सहेलियोंने व्यंग्य करते हुए श्रीलालाचार्यजी महाराजकी

पत्नीसे कहा—'इन्हें देखकर ठीकसे पहचान लो, तुम्हारे

जेठ हैं या देवर!' यह कहकर खिलखिलाती हुई चल

दीं। पत्नीने घर आकर श्रीलालाचार्यजीसे यह बात बतायी, सुनकर श्रीलालाचार्यजी करुण-क्रन्दन करने लगे। अन्तमें

यह सोचकर अपने मनको शान्त किया कि मेरे ये भाई

भगवद्धक्त थे—वैष्णव सन्त थे, अत: इन्हें भगवद्धामकी

प्राप्ति हुई है। तत्पश्चात् उनका शव प्राप्तकर अन्तिम क्रिया करनेके उद्देश्यसे वे नदीके किनारे आये और विधि-

निकालकर उसका अपने भाईके समान दाह-संस्कार किया। तेरहवें दिन भोजनके लिये ब्राह्मणोंको तथा कुटुम्बियोंको निमन्त्रण देकर बुलवाया। अज्ञात शवका सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराजका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है— परम वैष्णव सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज आचार्य रामानुजजीके जामाता थे। वैष्णव-वेशके प्रति उनकी

श्रीरामानुजाचार्यजीके दामाद श्रीलालाचार्यजीकी

कथा सुनते ही भगवानुमें विशेष प्रीति होती है। एक

बार कोई तुलसीकण्ठी धारण किये हुए मृत शरीर

नदीमें बहता हुआ आया। श्रीलालाचार्यजीने उसे

अनन्य निष्ठा थी। वे वैष्णव-वेशधारी प्रत्येक सन्तको अपना भाई मानते थे और उसका उसी प्रकार आदर-सत्कार करते थे। श्रीलालाचार्यजी महाराजके इस दिव्य भावको उनकी सहधर्मिणी तो जानती थी, परंतु साधारण लोग भला इसे क्या समझें!

एक दिन श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नी जल भरनेके लिये नदीतटपर गयी हुई थीं, उनके साथ उनकी कुछ सहेलियाँ भी थीं, जो श्रीलालाचार्यजीकी वैष्णवनिष्ठाके

कारण उनका मजाक उड़ाया करती थीं। जिस समय वे लोग जल भर रही थीं, उसी समय किसी वैष्णव सन्तका | विधानपूर्वक उनकी क्रिया की।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं— आचारज को जामात बात ताकी सुनौ नीके पायो उपदेश सन्त बन्धु कर मानिये।

बढ गयी॥ ३३॥

कीजै कोटि गुनी प्रीति ऐपै न बनित रीति तातें इति करौ याते घटती न आनिये॥ मालाधारी साधु तन सरिता में बह्यो आयो ल्यायो घर फेरिकै विमान शव जानिये।

गावत बजावत लै नीर तीर दाह कियो हियो दुख पायो सुख पायो समाधानिये॥ ११०॥

छप्पय ३३. कवित्त ११२ ] श्रीलालाचार्यजी \* त्रयोदशाहके दिन श्रीलालाचार्यजीने उन वैष्णव पता नहीं किस जातिका शव उठा लाया और उसके सन्तके निमित्त ब्राह्मण-भोजनका आयोजन किया और | त्रयोदशाहमें हम लोगोंको खिलाकर भ्रष्ट करना चाहता उसके हेतू स्थानीय ब्राह्मणोंको आमन्त्रण दिया, परंतू | है, अत: इसके यहाँ किसी भी ब्राह्मणको नहीं जाना कोई भी ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन करने नहीं आया। चाहिये तथा जो ब्राह्मण परिचयके आयें, उन्हें भी सब उन ब्राह्मणोंने आपसमें तय किया कि यह लालाचार्य बातें बताकर रोक देना चाहिये। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका इन शब्दोंमें वर्णन करते हैं— कियो सो महोच्छौ ज्ञाति विप्रनको न्योतो दियो लियो आये नाहिं कियो शंका दुखदाइये। भये इक ठौरे माया कीने सब बोरे कछू कहैं बात और मरी देह बही आइये॥ याते नहीं खात वाकी जानत न जाति पाँति बड़ौ उतपात घर ल्याइ जाइ दाहिये। मग अवलोकि उत पर्यो सुनि शोक हिये जिये आइ पुछैं गुरु कैसे कै निबाहिये॥ १११॥ ब्राह्मणोंकी इस दुरिभसन्धिका ज्ञान जब लाला-दिव्य पार्षद ब्राह्मण-वेशमें उपस्थित होकर श्रीलाला-चार्यजीको हुआ, तो वे बहुत ही दु:खी और चिन्तित चार्यजीके घरकी ओर उन्मुख हुए। उन्हें देखकर वहाँके हुए। उन्होंने ये सब बातें आचार्यश्री रामानुजजीसे स्थानीय ब्राह्मणोंने उन्हें रोकना चाहा, परंतु उनके दिव्य निवेदन कीं। आचार्यश्रीने कहा कि तुम्हें इस विषयमें तेजसे अभिभृत होकर खडे-के-खडे रह गये और आपसमें विचार किया कि अभी जब ये लोग भोजन किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वे ब्राह्मण अज्ञानी हैं और उन्हें वैष्णव-प्रसादके माहात्म्यका ज्ञान करके बाहर आयेंगे तो हम लोग इनकी हँसी उडायेंगे ही नहीं है। यह कहकर उन्होंने दिव्य वैष्णव पार्षदोंका कि कहो, किसके श्राद्धके ब्राह्मण-भोजनमें आप गये आवाहन किया, वैष्णव-प्रसादकी महिमा जाननेवाले वे l थे ? क्या उसके कुल-गोत्रका भी आप सबको ज्ञान है ? श्रीप्रियादासजी महाराज इस प्रसंगका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं— चले श्रीआचारज पै बारिज बदन देखि करि साष्टांग बात किह सो जनाइयै। जाओ निहशङ्क वे प्रसाद को न जानै रङ्क जानैं जे प्रभाव आवैं वेगि सुखदाइयै॥ देखे नभ भूमि द्वार ऐहैं निरधार जन वैकुण्ठ निवासी पांति ढिग है कै आइयै। इन्हें अब जान देवौ जिन कछ कहो अहो गहो करौ हाँसी जब घर जाय खाइयै॥ ११२॥ इधर ब्राह्मण लोग ऐसा सोच रहे थे, उधर ब्राह्मण | सब ब्राह्मण हैं, इस प्रकार कहकर मुझे लज्जित न वेशधारी दिव्य पार्षदोंने श्रीलालाचार्यजीके आँगनमें करें। आप सबकी कृपासे मुझे आज दिव्य वैष्णव पार्षदोंके दर्शन हुए, अतः मैं तो स्वयं आपका जाकर वैष्णव-प्रसाद पाया और पुनः आकाशमार्गसे वैकुण्ठधामके लिये प्रस्थान कर गये। ब्राह्मणोंने उन्हें कृतज्ञ हुँ। आकाशमार्गसे जाते देखा तो उनकी आँखें ब्राह्मणोंको अब श्रीलालाचार्यजीके साधुत्व और सिद्धत्वमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह गया। उन सबने खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलका बहुत पछतावा हुआ। वे लोग आकर श्रीलालाचार्यजी महाराजके श्रीलालाचार्यजीके यहाँ जाकर भगवत्प्रसादके रूपमें चरणोंमें गिर पड़े और क्षमा माँगते हुए रोने लगे। सन्त पृथ्वीपर गिरे हुए अन्नकणोंको बीन-बीनकर खाया श्रीलालाचार्यजी महाराज तो परम वैष्णव थे, उन्हें उन और आनन्दमग्न हो गये। उन सबने आचार्यश्रीका \_Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shaलीगीपर किंचित् रीष था ही नहीं। वे बील-आप शिष्यत्व ग्रहण किया और वैष्णव दक्षा प्राप्त की।

श्रीपादपद्मजी

### गुरू गमन (कियो) परदेस सिष्य सुरधुनी दृढ़ाई। एक मंजन एक पान हृदय बंदना कराई॥

जानकर दूसरे लोग आलोचना करते थे। बादमें गुरुदेव

गुरु गंगा में प्रबिसि सिष्य को बेगि बुलायो। बिष्नुपदी भय जानि कमलपत्रन पर धायो॥ पाद पद्म ता दिन प्रगट, सब प्रसन्न मन परम रुचि। श्रीमारग उपदेस कृत श्रवन सुनौ आख्यान सुचि॥३४॥

श्रीसम्प्रदायके अनुयायी गुरुदेवके उपदेश करनेसे । करनेके लिये एक दिन स्नानार्थ गंगाजीमें घुसे और गंगाजीमें उत्पन्न निष्ठाका पवित्र इतिहास सुनिये। गुरुदेव पादपद्मजीको वहीं शीघ्र वस्त्र लेकर आनेको कहा। अपनी अनुपस्थितिमें अपने समान गंगाजीको माननेका । गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन और गंगामें चरणस्पर्श इन

अपनी अनुपस्थितिमें अपने समान गंगाजीको माननेका | गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन और गंगामें चरणस्पर्श इन उपदेश देकर चले गये। ये गुरुवत् गंगाजीकी उपासना करने लगे। अन्य कोई शिष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करते थे, कोई गंगाजलपान करते थे, परंतु पादपद्मजी हृदयसे ही विये। उन्हींपर पैर रखते हुए ये गुरुदेवके समीप दौड़कर गंगाजीकी वन्दना-पूजा करते थे। कभी भी गंगाजीमें गये। पादपद्मजीका जो प्रभाव गुप्त था, वह उस दिन स्नान, आचमन नहीं करते थे। इनके हृदयके भावको न प्रकट हो गया, इस दिव्य चमत्कारको देखकर सभीके

लौटकर आये और इनकी निष्ठाका परिचय प्रकट | उसी दिनसे उनका पादपद्माचार्य यह नाम पड गया॥ ३४॥

मनमें गंगाजी और पादपद्मजीमें अपार श्रद्धा हो गयी।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने निम्न दो किवत्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है— देवधुनी तीर सो कुटीर बहु साधु रहैं रहै गुरुभक्त एक न्यारो निहं ह्वै सकै। चले प्रभु गांव जिनि तजो बिल जांव करौ कही दाससेवा गंगा में ही कैसे छ्वै सकै। क्रिया सब कृप करै 'बिष्णुपदी' ध्यान धरै रोष भरै सन्त श्रेणी भाव नहीं भ्वै सकै।

ाक्रया सब कूप कर 'बिष्णुपदा' ध्यान धर राष भर सन्त श्रणा भाव नहा भ्व सक। आये ईश जानि दुख मानि सो बखान कियो आनि मन जानि बात अंग कैसे ध्वै सकै॥ ११५॥ चले लैके न्हान संग गंग में प्रवेश कियो रंगभिर बोले सो अँगोछा वेगि ल्याइये।

करत विचार शोच सागर न वारापार गंगा जू प्रगट कह्यो कंजन पै आइये॥ चलेई अधर पग धरें सो मधुर जाइ प्रभु हाथ दियो लियो तीर भीर छाइये।

निकसत धाय चाय पग लपटाय गये बड़ौ परताप यह निशिदिन गाइये॥ ११६॥

\* श्रीरामानुजिसद्धान्तके मतावलम्बी अन्य आचार्यगण \* छप्पय ३५ ] श्रीरामानुजसिद्धान्तके मतावलम्बी अन्य आचार्यगण देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानँद। तस्य राघवानंद भए भक्तन को मानद॥ पृथ्वी पत्रावलँब करी कासी अस्थाई। चारि बरन आश्रम सबहीको भक्ति दृढ़ाई॥ तिन के रामानँद प्रगट बिश्वमँगल जिन्ह बपु धर्त्यो। ( श्री ) रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसस्यो ॥ ३५ ॥ श्रीदेवाचार्यजीद्वारा श्रीरामानुजाचार्यकी पद्धति अर्थात् । थे, जिन्होंने भारतभूमिको अपने विजयपत्रके आश्रित कर लिया था। ये काशीमें स्थायीरूपसे निवास करते थे। विशिष्टाद्वैतसम्मत श्रीसम्प्रदायका प्रताप संसारी जीवोंको भक्तिरूप जीवन देनेके लिये अमृतके समान कल्याणकारी इन्होंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लोगोंमें भगवान्की होकर पृथ्वीपर फैला। देवगुरु बृहस्पतिके समान भक्तिको सुदृढ्रूपसे स्थापित किया। उनके शिष्यरूपमें महामहिमावाले दूसरे आचार्य श्रीहर्यानन्दजी हुए। उनके भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रकट हुए, जिन्होंने संसारका शिष्य श्रीराघवानन्दजी हुए, जो भक्तोंको आदर देनेवाले । कल्याण करनेके लिये ही शरीर धारण किया था॥ ३५॥ श्रीसम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित संक्षेपमें इस प्रकार है— श्रीदेवाचार्यजी भगवान् जगन्नाथमहाप्रभुका विशाल गगनचुम्बी रथ श्रीदेवाचार्यजी महाराज भगवत्प्राप्त परम वैष्णव भक्तोंद्वारा खींचा जा रहा था। अचानक रथ चलते-सिद्ध सन्त थे। श्रीमद्भागवतग्रन्थपर आपकी अगाध चलते रुक गया। लोगोंने बहुत प्रयास किया, परंतु रथ श्रद्धा थी। आपके कथावाचनके समय जड़-चेतन सभी टस-से-मस न हुआ। तभी श्रीहर्यानन्दजी भीडसे निकलकर आगे आये और सबको सुनाकर कहा कि मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वैष्णव धर्मका प्रचार करना आपका जीवन-लक्ष्य था और इसकी सम्पूर्तिके लिये आपलोग रथको छोड़कर दूर हट जायँ, यह रथ आप सदैव विचरण किया करते थे। स्वयं चलेगा। श्रीहर्यानन्दजी श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी बात सुनकर उपस्थित परम वैष्णव सन्त श्रीहर्यानन्दजी महाराज जनसमुदाय रथ छोड़कर अलग हट गया। आश्चर्य! रथ श्रीश्रियानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप सदा अपने-आप चलने लगा और सौ कदमतक अपने-आप भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें लवलीन रहा करते थे, चलता रहा। उपस्थित जनसमुदायमें महाप्रभु इसलिये आपके गुरुदेवने आपका 'हर्यानन्द'—यह नाम जगन्नाथस्वामीके साथ-साथ श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी भी जय-जयकार होने लगी। रख दिया था। एक बार आप महाप्रभु भगवान् जगन्नाथजीका श्रीराघवानन्दजी दर्शन करने भगवद्धाम श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्रापर जा श्रीसम्प्रदायमें श्रीराघवानन्दजी महाराजको गुरुदेव रहे थे, आपके साथ और भी बहुतसे वैष्णव भक्त वसिष्ठका अवतार माना जाता है। आप श्रीहर्यानन्दजी थे। उस समय जगन्नाथपुरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी महाराजके कृपापात्र थे। वेद-शास्त्र-पुराणादिके प्रकाण्ड रथयात्राका महोत्सव चल रहा था। भगवानुको विद्वान् होते हुए भी आप अत्यन्त अमानी थे, किसी प्रकारका अहंकार आपको छू नहीं गया था। आपने चारों रथपर बैठाकर गुण्डिचा मन्दिर ले जाया जा रहा था।

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीरामानन्दाचार्यजी वर्णींके लोगोंको भक्तिका उपदेश दिया। आप एक सिद्ध सन्त थे, परंतु आपकी सिद्धियाँ चमत्कार-प्रदर्शनके लिये श्रीरामानन्दजी श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-नहीं, अपितु लोगोंको भगवद्भिक्तकी ओर प्रवृत्त करनेके सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य हैं। कबीर, सेन, धन्ना, रैदास लिये थीं। आपने बहुत समयतक काशीमें निवास किया। आदि इनके शिष्य थे। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आपको श्रीरामानन्दाचार्यजीका गुरु होनेका गौरव प्राप्त है। । आगे छप्पय ३६ पृ० १६८ पर दिया गया है। श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी और उनके द्वादश प्रधान शिष्य अनँतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि। पीपा भावानँद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥ औरौ सिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर। बिस्वमँगल आधार सर्वानँद दसधा आगर॥ बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौं पार दियो। ( श्री ) रामानँद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥ ३६॥ जिस प्रकार श्रीरघुनाथजीने वानरोंकी सेनाको पार श्रीधन्नाजी, श्रीसेनजी और श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी— ये श्रीरामानन्दचार्यजीके सर्वप्रधान द्वादश शिष्य थे। करनेके लिये समुद्रपर पुल बनवाया था, उसी प्रकार श्रीरामानन्दाचार्यजीने संसारी जीवोंको भवसागरसे पार इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से शिष्य-प्रशिष्य एक-करनेके लिये अपनी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परासे सेतु-से-एक प्रसिद्ध एवं प्रतापी हुए। ये संसारका कल्याण निर्माण कराया। श्रीअनन्तानन्दजी, श्रीकबीरदासजी, करनेवाले, भक्तोंके आधार और प्रेमाभक्तिके खजाने थे। श्रीसुखानन्दजी, श्रीसुरसुरानन्दजी, श्रीपद्मावतीजी, श्रीनर-श्रीरामानन्दाचार्यजीने बहुत कालतक शरीरको धारणकर शरणागत जीवोंको संसार-सागरसे पार किया॥ ३६॥ हरियानन्दजी, श्रीपीपाजी, श्रीभावानन्दजी, श्रीरैदासजी, श्रीरामानन्दजी एवं उनके द्वादश प्रधान शिष्योंके चरित इस प्रकार हैं— श्रीरामानन्दाचार्यजी करता रहा। बारह वर्षकी अवस्थातक बालक ब्रह्मचारीने श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके समस्त शास्त्रोंका अध्ययन पूर्ण कर लिया। प्रवर्तक आचार्य श्रीरामानन्दजी एक उच्चकोटिके विवाहकी चर्चा चली। बालकने इनकार कर आध्यात्मिक महापुरुष थे। इनका जन्म कान्यकुब्ज दिया। इसके पश्चात् स्वामी राघवानन्दजीसे दीक्षा लेकर ब्राह्मणकुलमें माघकृष्ण सप्तमी, भृगुवार, संवत् १३२४ पंचगंगा घाटपर जाकर एक घाटवालेकी झोंपडीमें को प्रयागमें त्रिवेणीतटपर हुआ था। इनके पिताका नाम ठहरकर तप करना आरम्भ कर दिया। लोगोंने ऊँचे स्थानपर एक कुटी बनाकर तपस्वी बालकसे उसमें

> रहनेकी विनय की। उनकी विनय सुनकर वे उस कृटियामें आ गये और उसीमें ज्ञानार्जन और तपस्या

> करते रहे। उनके अलौकिक प्रभावके कारण उनकी बडी

ख्याति हुई। बड़े-बड़े साधु और विद्वान् आपके दर्शनार्थ

स्वामीजीने देश और धर्मका महान् कल्याण किया।

आश्रममें आने लगे।

पुण्यसदन और माताका नाम श्रीमती सुशीला था।
आठवें वर्ष इनका उपनयन-संस्कार किया गया।
उपनीत ब्रह्मचारी जब पलाशदण्ड धारणकर काशी
विद्याध्ययन करने चला, तब आचार्य एवं सम्बन्धियोंके
आग्रह करनेपर भी नहीं लौटा। विवश हो माता-पिता
भी साथ हो लिये और बालक अपनी माताके साथ अपने

मामा ओंकारेश्वरके यहाँ काशीमें ठहरकर विद्याध्ययन

\* श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी और उनके द्वादश प्रधान शिष्य \* छप्पय ३६ ] उनका दिव्य तेज राजनीतिक क्षेत्रमें उसी प्रकार चमकता इसके मुख्य मन्त्रको रामतारक कहते हैं। था, जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें। उस महाभयंकर कालमें अपने परमधाम-गमनके पूर्व श्रीस्वामीजीने अपनी आर्य-जाति और आर्य-धर्मके त्राणके साथ ही विश्वकल्याण शिष्यमण्डलीको सम्बोधित करके कहा कि 'सब शास्त्रोंका एवं भगवद्धर्मके अभ्युत्थानके लिये जैसे शक्तिशाली और सार भगवत्स्मरण है, जो सच्चे सन्तोंका जीवनाधार है। प्रभावशाली आचार्यको आवश्यकता थी, स्वामी रामानन्दजी कल श्रीरामनवमी है। मैं अयोध्याजी जाऊँगा। परंतु मैं अकेला जाऊँगा। सब लोग यहीं रहकर उत्सव मनायें। वैसे ही जगदगुरु थे। कहते हैं कि इनके सम्प्रदायकी प्रवर्तिका जगज्जननी कदाचित् मैं लौट न सकूँ, आपलोग मेरी त्रुटियों एवं श्रीसीताजी हैं। उन्होंने पहले हनुमान्जीको उपदेश दिया अविनय आदिको क्षमा कीजियेगा। यह सुनकर सबके था और फिर उनसे संसारमें इस रहस्यका प्रकाश हुआ। नेत्र सजल हो गये। दूसरे दिन स्वामीजी संवत् १५१५ इस कारण इस सम्प्रदायका नाम 'श्रीसम्प्रदाय' है और | में अपनी कुटीमें अन्तर्धान हो गये। यहाँ संक्षेपमें इनकी शिष्यपरम्पराका वर्णन प्रस्तुत है— श्रीरामानन्दजीके द्वादश शिष्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इन द्वादश भक्तोंमेंसे श्रीअनन्तानन्दजीका वर्णन छप्पय ३७ पृ० १७० पर, श्रीकबीरदासजीका छप्पय ६० पृ० २४२ पर, श्रीसुखानन्दजीका छप्पय ६४ पृ० २६१ पर, श्रीसुरसुरानन्दजीका छप्पय ६५ पृ० २६२ पर, श्रीनरहरियानन्दजीका छप्पय ६७ पृ० २६४ पर, श्रीपीपाजीका छप्पय ६१ पु० २४७ पर, श्रीरैदासजीका छप्पय ५९ पु० २३८ पर, श्रीधन्नाजीका छप्पय ६२ पु० २५८ पर, श्रीसेनजीका छप्पय ६३ पु० २५९ पर तथा श्रीसुरसुरीजीका छप्पय ६६ पु० २६३ पर आया है। अन्य शिष्योंका वर्णन आगे इस प्रकार किया गया है— श्रीपद्मावतीजी दीक्षा ले ली। इस प्रकार पद्मावती अपने माता-पिताके श्रीपद्मावतीजी साक्षात् भगवती लक्ष्मीजीकी साथ काशीमें ही रहकर भगवदाराधन करने लगीं। अंशस्वरूपा ही थीं, पद्मसदृश कान्ति होनेके कारण उनके श्रीभावानन्दजी माता-पिताने उनका पद्मावती यह नाम रखा था। श्रीसम्प्रदायमें श्रीभावानन्दजी महाराजको जनकजीका अवतार माना जाता है। इनके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीविट्ठलपन्त पद्मावतीजीका जन्म त्रिपुरा नामक नगरमें एक ब्राह्मणदम्पतीके घर हुआ था। आपके पिता पण्डित श्रीप्रभाकरजी महाराज था। इनके पूर्वज मिथिलाके निवासी थे, परंतु इनके पितामह भगवती लक्ष्मीके अनन्य आराधक थे। उनकी आराधनाके भगवान् पुण्डरीकनाथजीके बड़े भक्त थे, अतः वे पण्ढरपुरके पास ही आलन्दी नामक ग्राममें बस गये। वहीं फलस्वरूप साक्षात् भगवती लक्ष्मीजी ही उनकी कन्याके रूपमें अवतरित हुई थीं। बालिका पद्मावती जब पाँच श्रीविद्वलपन्तजीका जन्म हुआ, जो बादमें स्वामी रामानन्दाचार्यजीसे दीक्षा लेकर भावानन्दके नामसे विख्यात वर्षकी हुईं तो उन्होंने अपने पितासे काशी ले चलनेका आग्रह किया। उन्होंने यह भी बताया कि वे काशीमें हुए। आपका विवाह सिद्धोपन्त नामक एक कुलीन ब्राह्मणकी परम सुशीला कन्या रुक्मिणीसे हो गया। श्रीरुक्मिणीबाईजी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजका दर्शन करना चाहती हैं। माता-पिता अपनी लाडली पुत्रीका आग्रह स्वीकारकर उसे परम पतिव्रता थीं, वे पतिके कार्यों, अतिथि-अभ्यागतोंके लेकर काशीपुरी आये। पद्मावतीने श्रीस्वामीजीके दर्शनकर सत्कार और गृहस्थ-धर्मका सम्यक् रूपसे निर्वाह करती थीं। उनके चरणोंमें प्रणाम किया और आचार्यश्रीसे दीक्षा देनेकी एक दिन आपके यहाँ एक सन्त आये, सत्संगके दौरान

पद्मीविताकं क निंदर अपके जिला वर्षा तो में प्रति अपिका अपिका करिए हैं। यह स्वाहित स्वाहित स्वाहित के अपिका के

उन्होंने बताया कि काशीमें श्रीरामानन्दाचार्य नामके एक परम भागवत वैष्णव सन्त हैं, मैं उन्हींके दर्शन करने जा

प्रार्थना की। पद्मावतीकी विनती मानकर आचार्यश्रीने उन्हें

मन्त्र-दीक्षा दी और उपासना-रहस्यका बोध कराया।

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क गये। पत्नीको घर-गृहस्थी और अतिथि-सेवाका कार्य सौंपकर था। उन बालकोंके प्रति आपका श्रीराम-लक्ष्मणका भाव स्वयं उन सन्तके साथ काशीके लिये प्रस्थान कर गये। था, अतः उनके चले जानेपर पुनः आप विरह-व्याकुल हो मार्गमें उन्हें अनुभूति हुई कि मेरे साथ चल रहे सन्त साक्षात् गये। उसी समय श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शंखकी दिव्य ध्विन आपके कानोंमें पड़ी, जिसे श्रवणकर आपके विश्वामित्रजी हैं और इनके साथ सुकुमार अवस्थाके श्याम-गौर दो किशोर श्रीराम-लक्ष्मण हैं। फिर क्या था! वहीं अन्त:करणमें ज्ञानका उदय हुआ और आपने स्वामी इनकी भावसमाधि लग गयी। समाधिसे जाग्रत् होनेपर उन्होंने श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण की। स्वामीजीने देखा कि वहाँ न तो वे सन्त हैं और न ही दोनों किशोर। आपको राम-मन्त्रकी दीक्षा देकर आपका नाम भावानन्द फिर तो वे प्रभ्-दर्शनके लिये व्याकुल हो गये और 'हा रख दिया। राम'-'हा रघुनाथ' कहते हुए करुण क्रन्दन करने लगे। गुरुकी आज्ञासे आपने पुन: गृहस्थाश्रममें प्रवेश कहते हैं कि इनकी इस प्रकारकी दशा देखकर दो बालक किया। कालान्तरमें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव और सोपानदेव इनके पास आये और इन्हें खानेके लिये भगवत्प्रसाद दिया नामक उनके तीन पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् सन्त और फिर इन्हें मार्ग दिखाते हुए काशीके पंचगंगाघाटपर हुए। एक कन्या हुई, जिसका नाम मुक्ताबाई हुआ, वह पहुँचा दिया, जहाँ स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीका आश्रम । भी सिद्धयोगिनी थी। श्रीअनन्तानन्दजी और उनकी शिष्यपरम्परा जोगानंद गयेस करमचँद अल्ह पैहारी। (सारी) रामदास श्रीरंग अवधि गुन महिमा भारी॥ तिन के नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन। रघुबर जदुबर गाइ बिमल कीरति संच्यो धन॥ हरिभक्ति सिंधु बेला रचे पानि पद्मजा सिर दए। अनँतानँद पद परिस कै लोकपाल से ते भए॥३७॥ योगानन्दजी, गयेशजी, कर्मचन्दजी, अल्हजी, यशोगान करके पवित्र कीर्तिरूपी धनका संग्रह किया। पयहारीजी, (सारी) रामदासजी और श्रीरंगजी उत्तम-श्रीअनन्तानन्दजी भगवद्भक्तिरूपी समुद्रकी मर्यादा थे। पद्मजा श्रीजानकीजीने आपके सिरपर अपना वरदहस्तकमल गुणोंकी सीमा तथा महाप्रतापी हुए। श्रीरंगजीके शिष्यके रूपमें परमप्रसन्न श्रीनरहरिजीका उदय हुआ। ये सभी रखकर आशीर्वाद दिया। श्रीस्वामी अनन्तानन्दाचार्यजीके निरन्तर भक्तिकी वर्षा करनेवाले मेघके समान मंगलमय पूज्य श्रीचरण-कमलोंका स्पर्श करके उनके ये शिष्यगण शरीर धारण करनेवाले हुए। श्रीअनन्तानन्दजी एवं उनके लोकपालोंके समान भक्तजनोंका पालन करनेवाले शिष्यगणोंने श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजीका निर्मल हुए॥ ३७॥ यहाँ श्रीअनन्तानन्दजी तथा उनके शिष्योंका चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है— महेशपुर नामक ग्राममें हुआ था, आपके पिता पं० श्रीअनन्तानन्दजी श्रीअनन्तानन्दजी महाराज स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीविश्वनाथमणित्रिपाठी सनाढ्य ब्राह्मण थे, भगवान्

महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। आपके

गृहस्थाश्रमका नाम पं० छन्नूलाल था। आपका जन्म श्रीअयोध्याजीके समीप रामरेखा नदीके तटपर स्थित श्रीराम और अयोध्याधामके प्रति विशेष निष्ठा होनेके

अवध् पण्डित भगवती सरस्वतीके बडे भक्त थे,

कारण ये 'अवधु पण्डित' के नामसे विख्यात थे।

छप्पय ३७] * श्रीअनन्तानन्दजी और	र उनकी शिष्यपरम्परा*
************	****************
कहते हैं कि माता सरस्वतीजीके ही आशीर्वादसे	सिद्धपुरमें आपका जन्म वैशाख कृष्ण ७, सं० १४५७
कार्तिकपूर्णिमा, सं० १३६३ वि० को श्रीअनन्तानन्दजीका	वि० को हुआ। बालक यज्ञेश बचपनसे ही दीपककी
जन्म हुआ था। महापुरुषोंका जीवन बहुत ही विषम	लौको टकटकी लगाकर देखा करते थे, जो इनके
होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही भाँति आपकी भी	आगे चलकर सिद्धयोगी बननेका संकेत था। नौ
माताका परमधामगमन आपके जन्मके ठीक बाद ही हो	वर्षकी अवस्थामें बालक यज्ञेशका यज्ञोपवीत हुआ
गया था। उसके कुछ समय बाद पिताकी भी छत्रच्छाया	और वे पण्डित श्रीनाथजी महाराजकी पाठशालामें
सिरसे उठ गयी। अब तो बालक छन्नू अनाथ ही हो	विद्याध्ययन करने लगे। बालक यज्ञेश विलक्षण
गये, ऐसे समयमें अवधू पण्डितके यजमान ग्वालोंकी	प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी अद्भुत प्रतिभाको देखकर
दृष्टि आपपर पड़ी। उन लोगोंने आपका लालन-पालन	श्रीनाथजीने उन्हें काशी जाकर विद्याध्ययन करनेका
किया। थोड़ा बड़े होनेपर आप भी ग्वाल-बालोंके साथ	परामर्श दिया। बालक यज्ञेशने गुरूपदेशको स्वीकारकर
वनमें गाय चराने लगे।	काशीमें पं० श्रीनारायणभट्टजीकी पाठशालामें न्याय-
इधर भगवान्ने पं० श्रीश्यामिकशोर नामक एक	वेदान्तका अध्ययन करना शुरू किया। थोड़े ही
भगवद्भक्त ब्राह्मणको ध्यानावस्थामें आज्ञा दी कि वह	दिनोंमें आपकी गणना काशीके प्रतिष्ठित पण्डितोंमें
आपको अपने घर लाये और लालन-पालन करे। पं०	होने लगी। इसके बाद आप योगका अभ्यास करने
श्रीश्यामिकशोरजीको भी कोई सन्तान नहीं थी, प्रभुकी	लगे। इस क्षेत्रमें भी आपको अद्भुत सफलता
आज्ञा मानकर उन्होंने आपका पुत्रवत् पालन-पोषण	मिली और आप लम्बी अवधिकी समाधियाँ लगाने
किया और विद्याध्ययनके लिये काशी ले आये और फिर	लगे।
यहीं बस गये। आप भगवती सरस्वतीके वरद पुत्र थे,	काशीमें ही आपका विवाह एक सुशीला ब्राह्मण-
थोड़े ही समयमें आप सर्वशास्त्रनिष्णात होकर काशीके	कन्यासे हो गया, परंतु आपका गृहस्थ-जीवन अधिक
प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये।	समयतक न चल सका और अर्धांगिनीका परलोकगमन
एक बारकी बात है, महाशिवरात्रिको आप भगवान्	हो गया। इस घटनाने आपमें संसारके प्रति वैराग्यभावको
विश्वनाथजीके मन्दिरमें जागरण कर रहे थे। उसी समय	जन्म दिया और आपने सब धन-सम्पत्ति ब्राह्मणोंको
आपको स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी दिव्य	दान कर दी। अकिंचनरूपमें आप भगवान् विश्वनाथजीके
शंख-ध्वनि सुनायी दी। उस शंख-ध्वनिसे आकृष्ट	दर्शन करने गये और वहीं आपको प्रेरणा हुई कि इसे
होकर आप पंचगंगाघाटस्थित स्वामी रामानन्दजीके	विधिका विधान मानकर स्वीकार करो और स्वामी
आश्रममें आये और वहीं उसी समय उनका शिष्यत्व	रामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण करो। श्रीयोगेशजी
ग्रहण कर लिया, फिर लौटकर घर नहीं गये।	मन्दिरसे सीधे श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरणमें
श्रीमदाचार्यचरणने आपको श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देकर	आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीस्वामीजीने
'श्रीअनन्तानन्द' नाम रख दिया।	कृपापूर्वक आपको श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और
श्रीयोगानन्दजी	यज्ञेशदत्तके स्थानपर आपका नाम 'योगानन्द' रख
श्रीअनन्तानन्दजीके शिष्य परम वैष्णव सन्त और	दिया। श्रीयोगानन्दजी महाराज कहा करते थे कि
श्रीरामभक्त श्रीयोगानन्दजीके गृहस्थाश्रमका नाम	भक्तको पतिव्रता स्त्री और चातककी तरह भगवान्
श्रीयज्ञेशदत्त था। आपके पिता श्रीमणिशंकरजी परम	श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति रखनी चाहिये।
यशस्वी वैदिक ब्राह्मण और भगवान् सूर्यके भक्त	श्रीगयेशजी
थे। भगवान् सूर्यदेवके वरदानसे गुजरात-प्रान्तके	श्रीगयेशजी स्वामी रामानन्दाचार्यजीके द्वादश प्रधान
•	

१७२ * यो मद्भक्तः	स मे प्रियः * [ भक्तमाल-अङ्क
**************************************	****************
शिष्योंमें एक श्रीअनन्ताचार्यजी महाराजके शिष्य थे।	दुःख हुआ, परंतु उनकी सन्त-सेवामें निष्ठा और
भगवद्भक्तिके प्रचारार्थ आप भगवान्के नाम-गुणका	विश्वास दृढ़ ही रहा। इस अवधिमें वे भगवान्से बराबर
कीर्तन करते हुए विचरण करते रहते थे। एक बारकी	प्रार्थना करती रहीं कि प्रभो! मेरे सुखके लिये नहीं,
बात है, आप भ्रमण करते हुए एक गाँवके निकट पहुँचे	अपितु सन्त-महिमाकी प्रतिष्ठा संसारमें बनी रहे—इस
और इमलीके एक सूखे वृक्षके नीचे स्वच्छ-समतल	हेतु मुझे एक भक्त पुत्र प्रदान कीजिये। भगवान्की
स्थानपर बैठ गये। वहीं भगवान्का ध्यान करते हुए	लीला! और बार तो पुत्र जन्म लेकर कुछ दिन जीवित
आपको समाधि लग गयी। उस गाँवमें एक वैष्णवद्वेषी	रहता था, इस बार तो उसकी छठी भी न हो सकी और
व्यक्ति निवास करता था। उसने जब आपको देखा तो	वह चल बसा।
आपका उपहास करने लगा। वह उधरसे जानेवाले	धनचन्दजीकी पत्नीको पुत्र-वियोगका दु:ख तो
लोगोंसे कहता—'भाइयो! देखो, ये एक सिद्ध महात्मा	कम, पर सन्त–महिमापर प्रश्न–चिह्न लगनेका बहुत
बैठे हैं; ये तबतक यहाँसे नहीं उठेंगे, जबतक यह सूखा	दु:ख था। धनचन्द तो आगबबूला ही हो गये और
पेड़ हरा नहीं हो जायगा।'	पत्नीका केश पकड़कर घरसे निकालने लगे। इतनेमें ही
इस प्रकार वह वैष्णवद्वेषी व्यक्ति श्रीगयेशजीकी हँसी	किसी व्यक्तिने आकर कहा कि गाँवमें स्वामी
उड़ा रहा था, परंतु गयेशजीको क्या! वे तो निर्विकार भावसे	श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके पट्टशिष्य श्रीअनन्ता–
अपने इष्टदेवके स्वरूपचिन्तनमें मग्न थे, उन्हें बाह्य जगत्का	नन्दाचार्यजी आये हैं; वे सिद्ध सन्त हैं, उनकी कृपासे
ज्ञान ही कहाँ था! परंतु सर्वज्ञ परमात्मासे अपने भक्तका	यह बालक पुनः जीवित हो सकता है, अत: आप
अपमान न देखा गया, उन्होंने श्रीगयेशजीकी महिमाका	लोगोंको इस बालकको लेकर उनकी शरणमें चलना
ख्यापन करनेके लिये उस सूखे इमलीके वृक्षको हरा-भरा	चाहिये। इतना सुनना था कि धनचन्दकी पत्नी तत्काल
कर दिया। फिर क्या था? अभीतक जो जन-समुदाय	श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके दर्शन करने चल दी, उसे
उनकी हँसी उड़ानेके लिये एकत्र हुआ था, वही अब उनकी	अब भी सन्त-भगवन्तको कृपापर पूर्ण विश्वास था।
जय-जयकार करने लगा।	श्रीअनन्तानन्दजीके पास पहुँचकर उसने उनके चरणोंमें
श्रीकर्मचन्दजी	प्रणाम किया और सन्त-महिमाकी प्रत्यक्ष अनुभूति
श्रीकर्मचन्दजी अनन्तानन्दजीके शिष्य थे। आपके	कराकर पतिको सद्बुद्धि प्रदान करनेका आग्रह किया।
पिताका नाम धनचन्द था। राजस्थानमें देवासा नामका	श्रीअनन्तानन्दजी धनचन्दके घर आये और बालकके
एक ग्राम है, वहाँके धनी श्रेष्ठियोंमें आपकी गणना थी।	मुखमें चरणोदक डाला। सन्तकृपाका चमत्कार! निश्चेष्ट
आपकी धर्मपत्नी परमभगवद्भक्ता, उदार-हृदया और	पड़े बालकके शरीरमें श्वास-प्रश्वासके स्पन्दन होने लगे!
सन्त-सेविका थीं; परंतु धनचन्द पत्नीके इतने धार्मिक	फिर क्या था, हर्षसे सन्त-भगवन्तका जयघोष होने लगा।
होनेके बाद भी सन्तान-सुखसे वंचित ही थे, अत: वे	धनचन्द तो इस सुखद आश्चर्यको देखकर किंकर्तव्यविमूढ़से
धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, सन्त-सेवा और दान आदिको	रह गये, फिर पश्चात्तापके आँसुओंसे श्रीअनन्तानन्दजीके
ढकोसला ही मानते थे। एक बार जब धनचन्दजीकी	चरणोंका प्रक्षालन करने लगे। अनन्तानन्दजीने उन्हें उठाया
पत्नी गर्भवती थीं तो वे किसी नास्तिकके प्रभावमें आकर	और भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने बालकके
पत्नीसे कहने लगे कि यदि तुम्हारी संतान इस बार भी	गलेमें कण्ठी बाँधकर उसे भी श्रीरामनामका उपदेश दिया
जीवित नहीं रही तो मैं तुम्हें ही मार डालूँगा, अन्यथा	और उसका नाम रख दिया कर्मचन्द। बड़े होनेपर
यह सन्त-सेवा करना छोड़ दो।	श्रीकर्मचन्दजीने अपना शेष जीवन भगवत्सेवा और
धनचन्दजीकी पत्नीको पतिके इस दुर्भावसे बहुत	भगवद्भक्तिके प्रचारमें बिताया।

छप्पय ३७, कवित्त ११७] \* श्रीअनन्तानन्दजी और उनकी शिष्यपरम्परा \* \* श्रीसारीरामदासजी मारकर उसका पेट फाड़ देगा। श्रीरंगजीने पूछा-क्या श्रीसारीरामदासजी महाराज श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी तुमलोग सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करते हो ? यमदूत महाराजके शिष्य थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और बोला-नहीं, हमलोग केवल पापियोंके साथ ही ऐसा भगवद्धर्मके प्रचारार्थ तथा भगवद् विमुखोंको भक्तिमार्गपर व्यवहार करते हैं, भगवानुके भक्तोंकी ओर तो हम देख भी लानेके उद्देश्यसे निरन्तर विचरण करते रहते थे। नहीं सकते, अतः मैं आपको भी यह सलाह देने आया हूँ श्रीरंगजी कि जीवनके शेष भागमें आप भगवद्भक्ति कर लें। मैंने आपका नमक खाया है, अतः आपको कष्टमें पड़ते नहीं श्रीरंगजी श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके प्रधान शिष्योंमें एक थे। गृहस्थाश्रमके समय आपका निवास देखना चाहता हूँ। आपको यदि मेरी बातोंपर विश्वास न द्यौसा नामक ग्राममें था, जो तत्कालीन जयपुर राज्यमें आता हो तो आप मेरे साथ बनजारेके घर चलिये। मैं केवल आपको ही दिखायी दूँगा, दूसरा कोई मुझे नहीं देख था। आप वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए थे। आपके यहाँ सेवाकार्य करनेके लिये एक नौकर रखा गया था, परंतु वह स्वभावसे सकेगा। बड़ा ही दुष्ट था। कालवश मृत्युको प्राप्तकर वह यमलोक यह कहकर यमदूत बनजारेका प्राण-हरण करनेके गया। वहाँ उस पापीको यमराजने दूतकार्यमें नियुक्त किया उद्देश्यसे उसके घरकी ओर चल दिया। श्रीरंगजी भी और मृत प्राणियोंके प्राणोंको लानेका कार्य सौंपा। एक बार उसके पीछे-पीछे चल दिये, वहाँ जाकर श्रीरंगजीने देखा यमराजने उसे एक बनजारेके प्राणोंका हरण करके लानेको कि बनजारा अपने बैलको खली-भूसा चला रहा है। कहा, जो कि उसी द्यौसा ग्रामका रहनेवाला था, जहाँ वह बैल बार-बार सिर हिला रहा था, जिससे बनजारेको मरनेसे पहले श्रीरंगजीके यहाँ नौकरी करता था। वहाँ खली-भूसा चलानेमें असुविधा हो रही थी; अत: उसने आनेपर वह सबसे पहले श्रीरंगजीसे मिलने गया। वे उसे एक हाथसे बैलको जोरसे हटाया। ठीक उसी समय यमदूत जाकर बैलकी सींगोंपर बैठ गया, फिर तो देखते ही चौंक पड़े और बोले—अरे! मैंने सुना कि तू मर गया है, फिर तू यहाँ कैसे आ गया? यमदूतने कहा-कालप्रेरित बैलने क्रोधमें भरकर सींगोंसे ऐसा प्रहार किया मालिक! आपने ठीक ही सुना था, मैं मर चुका हूँ और अब कि बनजारेका पेट फट गया, उसकी आँतें बाहर निकल यमदूत बन गया हूँ। यहाँ मैं बनजारेको ले जाने आया हूँ। आयीं और वह वहीं तुरंत मर गया। श्रीरंगजीने कहा—अभी तो वह पूर्ण स्वस्थ है और थोड़ी श्रीरंगजीकी आँखोंके सामने घटी इस आश्चर्यमयी देर पहले ही मेरे यहाँसे कुछ माल लादकर ले गया है, उसे घटनाने उनकी आँखें खोल दीं, उन्होंने श्रीअनन्तानन्दजी तुम कैसे ले जाओगे? उसने कहा—मैं उसके बैलकी महाराजके चरण पकड़े और उनके उपदेशानुसार भगवद्भिक्त सींगपर बैठ जाऊँगा, जिससे कालप्रेरित वह बैल सींग । करने लगे। इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— द्यौसा एक गाँव तहाँ श्रीरंग सुनाम हुतो बनिक सरावगी की कथा लै बखानिये। रहतो गुलाम गयो धर्मराज धाम उहां भयो बड़ो दूत कही सुनु अरे बानिये॥ आये बनिजारे लैन देख तू दिखावै चैन बैल शृङ्ग मध्य पैठि मारे पहिचानिये। बिन् हरि भक्ति सब जगत की यही रीति भयो हरि भक्त श्रीअनन्त पद ध्यानिये॥ ११७॥ श्रीरंगजीके पुत्रको रातमें भूत दिखायी देता था | रहता हूँ। तब श्रीरंगजी पुत्रके सोनेके स्थानपर स्वयं उसके भयसे वह नित्य सूखता ही चला जाता था। सोये। रात होते ही वह प्रेत आया। श्रीरंगजी क्रोध करके श्रीरंगजीने बालकसे इसका कारण पूछा तो उसने बताया | उसे मारनेके लिये दौड़े। प्रेतने दैन्यतापूर्वक कहा कि किर्मागतिमां अभ्यक्तरं प्रदेशक देखन्मा में पिद्दार्शन अवस्ति विद्यापन कृपि अस्ति कृपि अस्ति कृपि किर्मा से पिद्दार से पिद्दार के प्रदेश किर्म क

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क प्रदान कीजिये। मैं जातिका सुनार हूँ, परायी स्त्रीसे पाप- | प्रेतकी आर्तवाणी सुनकर श्रीरंगजीने उसे चरणामृत दिया सम्बन्धके कारण मैं प्रेत हो गया हूँ। अपने उद्धारका | और उसका अत्यन्त सुन्दर दिव्यरूप कर दिया। इस उपाय संसारमें खोजनेके बाद अब आपकी शरण ली है। प्रकार श्रीरंगजीके भक्तिभावका गान किया गया है। श्रीरंगजीकी महिमा-सम्बन्धी इस घटनाका भक्तमालके टीकाकारने इस प्रकार वर्णन किया है— स्त को दिखाई देत भूत नित सूख्यो जात पूछें कही बात जाइ वाके ठौर सोयो है। आयो निशि मारिबेको धायो यह रोष भर्यो देवोगति मोकों उन बोलिकै सुनायो है॥ जाति को सोनार परनारि लगि प्रेत भयों लयों तेरी शरण मैं ढुढि जग पायो है। दियो चरणामृत लै कियो दिव्यरूप वाको अति ही अनूप सुनो भक्तिभाव गायो है॥ ११८॥ पयहारी श्रीकृष्णदासजी जाके सिर कर धर्म्यो तासु कर तर नहिं अड्ड्यो। आप्यो पद निर्बान सोक निर्भय करि अड्ड्यो॥ तेजपुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता। सेवत चरन सरोज राय राना भुवि जेता॥ दाहिमा बंस दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो। निर्बेद अवधि कलि कृष्टदास अन परिहरि पय पान कियो॥ ३८॥ इस कराल कलिकालमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी श्रीपयहारीजी भक्तिमय तेजके समूह थे और आपमें वैराग्यकी सीमा हुए। आपने अन्नको त्यागकर केवल अपार भजनका बल था। बालब्रह्मचारी एवं योगी होनेके दुग्धपान करके भजन किया। इसीलिये आप 'पयहारी' कारण आप ऊर्ध्वरेता हो गये थे। भारतवर्षके छोटे-बडे इस नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। आपने शिष्य बनाकर जितने राजा-महाराजा थे, वे सभी आपके चरणोंकी जिसे अपनाया, उससे याचना नहीं की, वरन् उसे सेवा करते थे। दधीचिवंशी ब्राह्मणोंके वंशमें उदय भगवत्पद—मोक्षका अधिकारी बना दिया और सांसारिक (उत्पन्न) होकर आपने भक्तिके प्रतापसे भक्तोंके शोक-मोहसे सदाके लिये छुड़ाकर अभय कर दिया। हृदयकमलोंको सुख दिया॥ ३८॥ यहाँ पयहारी श्रीकृष्णदासजीका जीवन-चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है— जयपुरमें गलता नामक एक प्रसिद्ध स्थान है, जो अब उस निर्जन पहाड़ी गुफामें दूध कहाँसे प्राप्त होता? गालवऋषिका आश्रम माना जाता है। वहाँ वैष्णव परंतु प्रभु-प्रेरणासे पहाड़ियोंपर चरती हुई एक ग्वालेकी सन्तोंकी गद्दी है, जो 'गालता गादी' नामसे प्रसिद्ध है। गाय झुंडसे निकलकर उस पहाड़ी गुफाके पास चली एक समय वहाँ स्वामी श्रीकृष्णदासजी नामके प्रसिद्ध आयी और उसके स्तनोंसे पय:स्रवण होने लगा। पयहारी सन्त थे। इन्होंने आजीवन अन्नके स्थानपर दुग्धका ही बाबाने इसे ईश्वरकृपा मानकर अपने कमण्डलुमें दुध आहार किया, जिसके कारण इनकी प्रसिद्धि पयहारी एकत्र कर लिया और वस्त्रपुतकर पी गये। गाय फिरसे जाकर झुंडमें शामिल हो गयी। अब तो यह नित्यप्रतिका बाबाके नामसे रही। श्रीपयहारीजी महाराज सिद्ध सन्त थे। एक बार क्रम हो गया। एक दिन ग्वालेने गायको गुफाकी ओर आप विचरण करते हुए कुल्हूकी पहाड़ियोंकी ओर चले जाते देख लिया तो वह उसके पीछे-पीछे वहाँतक चला गये और वहाँ एक गुफामें बैठकर भगवद्भजन करने लगे। गया। वहाँका अद्भृत दृश्य देखकर वह जड़वत् खड़ा रह

छप्पय ३८, कवित्त १२०] * पयहारी श्री	कृष्णदासजी* १७५
	<u>*************************************</u>
गया, फिर पयहारी बाबाको सिद्ध सन्त समझ उनके	संकटके कारण एक गुफामें छिपकर रह रहे थे। ग्वालेने
चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—बाबा! गोमाताकी कृपासे	वहाँ जाकर उनसे पयहारी बाबाके विषयमें बताया और
आज मुझे आपके दर्शन हो गये; आप मुझे कोई और	उन्हें लिवा लाया। राजाने बाबाके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम
सेवा बताइये। श्रीपयहारी बाबा उसकी साधुता और	किया और अपनी करुणकथा सुनायी। बाबाने राजाको
सेवाभावसे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—तुम कोई वर	'विजयी भव' का आशीर्वाद दिया और कहा कि इस
माँग लो। ग्वाला बोला—प्रभो! आपकी कृपासे मुझे दूध-	पहाड़ीपर चढ़कर चारों ओर देखो, जहाँतक तुम्हारी दृष्टि
पूत सब प्राप्त है; मुझे अब किसी वस्तुकी आवश्यकता	जायगी, वहाँतकका राज्य तुम्हारा हो जायगा। राजाने
नहीं। हाँ, अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो ऐसी	बाबाकी आज्ञाका पालन किया और थोड़े ही दिनोंमें बिना
कृपा कीजिये कि मेरे देशके राजाका राज्य फिरसे उन्हें	किसी विशेष प्रयासके उनका खोया राज्य पुन: उन्हें प्राप्त
मिल जाय। बाबा उसकी नि:स्पृहता, स्वामिभक्ति और	हो गया। राज्य-प्राप्तिके बाद राजाने अपने सम्पूर्ण राज्यमें
परोपकारिता देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले कि	सन्त-सेवा और भगवद्भजनका आदेश लागू कर दिया।
तुम अपने राजाको यहाँ बुला लाना। उन दिनों वहाँके	इस प्रकार श्रीपयहारी बाबाकी कृपासे कुल्हू राज्यके लोग
राजा शत्रुओंद्वारा राज्य छीन लिये जाने और प्राण–	भगवद्भक्त हो गये।
भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने :	श्रीपयहारीजीके सम्बन्धमें कई रोचक घटनाओंका वर्णन
इस प्रकार किया है—	
जाके सिर कर धर्यो तातर न ओड्यो हाथ दीन	गो बड़ोबर राजा कुल्हू को जु साखिये।
परबत कन्दरामें दरशन दीयो आनि दियो	भाव साधु हरि सेवा अभिलाखिये॥
गिरी जो जिलेबी थार मांझते उठाई बाल भ	यो हिये शाल बिन अरपित चाखिये।
लै करि खड़ग ताहि मारन उपाय कियो जियो सन्त ओट फिर मोल करि राखिये॥ ११९॥	
नृप सुत भक्त बड़ो अब लौं विराजमान स	ाधु सनमान में न दूसरो बखानिये।
संत बंधू गर्भ देखि उभै पनवारे दिये कर्ह	) अर्भ इष्ट मेरो ऐसी उर आनिये॥
कोऊ भेषधारी सो व्योपारी पग दासिनको कह	
	गोति बहु दई दाम राम मित सानिये॥ १२०॥
पयहारी श्रीकृष्णदासजीने जिस किसीके सिरपर हाथ	उसे मार डालनेके लिये उठा, परंतु समीपमें उपस्थित सन्तोंने
रखा, उसके हाथके नीचे अपना हाथ नहीं फैलाया, अपितु	उसे बचा लिया और राजासे कहा कि अब तो यह बालक
उसे बड़ा भारी-भक्तिका वरदान अवश्य दिया। कुल्हू	हमारा हो गया। यदि आपको लेना है तो मूल्य देकर आप
देशका राजा इस बातका प्रमाण है। इसको आपने पर्वतकी	इसे रख लीजिये॥ ११९॥
कन्दरामें जाकर दर्शन दिया और आपकी कृपासे उसे राज्य	श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि कुल्हूके राजाका यह पुत्र
भी प्राप्त हुआ। राजाको आपने ऐसा प्रेमभाव दिया कि उसे	मेरे इस टीकाके लिखनेके समयतक विराजमान है, वह बड़ा
सन्त-भगवन्तकी सेवा करनेकी अभिलाषा बनी रहती थी।	भारी भगवद्भक्त है, साधुओंकी सेवा तथा उनका सम्मान
एक बार पुजारी मन्दिरमें भगवान्का भोग लगानेके लिये	करनेमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। एक बार अपने
जलेबियोंके थाल ले जा रहे थे, उसमेंसे एक जलेबी गिर	भण्डारेकी पंक्तिमें एक सन्तकी पत्नीको गर्भवती देखकर
गयी। राजाका छोटा–सा बालक उसे उठाकर खा गया।	राजपुत्रने दो पत्तलें दीं और कहा कि गर्भस्थ बालक भक्त
यह देखकर राजाके मनमें बड़ा भारी दु:ख हुआ कि बिना	है और वह मेरा इष्टदेव है, मैं ऐसा मनमें मानता हूँ।
भोग लगे ही इसने खा लिया, तुरंत हाथमें तलवार लेकर	इसीलिये दूसरा पत्तल दे रहा हूँ। कोई वैष्णव वेषधारी

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क मनुष्य जूतियोंको बेचता और गाँठता था, उसे देखकर | इस वेषको धारणकर और इस कार्यको देखकर लोगोंके राजपुत्रको बड़ी दया आयी और उसने उससे कहा— मनमें कुभाव होता है। ऐसा कहकर उसे वैष्णव-सेवा एवं भगवन् ! आप दूसरे लोगोंको सन्त मानकर उनकी जूतियोंकी स्वनिर्वाहके लिये बहुत-सी खेती करनेयोग्य भूमि और धन सेवा करते हैं, पर आपके इस गुप्त भावको तुच्छ प्राणी क्या दिया, साथ ही उसे ज्ञान-प्रकाश भी दिया, उसकी बुद्धि जानें। इसलिये आप इस जूती-सेवा-कार्यको छोड़ दीजिये। । राममें रम गयी॥ १२०॥ श्रीपयहारीजीके शिष्यगण कील्ह अगर केवल्ल चरन ब्रत हठी नरायन। सूरज पुरुषा पृथू तिपुर हरि भक्ति परायन॥ पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी। देवा हेम कल्यान गंग गंगासम नारी॥ बिष्नुदास कन्हर रँगा चाँदन सबिरि गोबिंद पैहारी परसाद तें सिष्य सबै भए पार कर॥३९॥ पयहारी श्रीकृष्णदासजीकी कृपासे उनके सभी। रत थे। पद्मनाथजी, गोपालदासजी, टेकरामजी, टीलाजी, शिष्य जीवोंको भवसागरसे पार करनेवाले हुए— गदाधारी (गदाधरदासजी), देवापण्डाजी, हेमदासजी, कल्याणदासजी, गंगाजीके समान गंगाबाई, विष्णुदासजी, श्रीकील्हदेवजी, स्वामी श्रीअग्रदेवजी, केवलदासजी, चरणदासजी, हठीनारायणजी, सूरजदासजी, पुरुषाजी कान्हरदासजी, रंगारामजी, चाँदनजी और सबीरीजी ये (पुरुषोत्तमदास), पृथुदासजी, त्रिपुरदासजी—ये हरिभक्तिमें | सभी भक्त गोविन्दपरायण थे॥ ३९॥ श्रीपयहारीजी महाराजके इन शिष्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है— श्रीकील्हदेवजी थे। एक बार एक पंगु-सन्त आश्रममें आये। इनको पूजा परम भागवत सिद्ध सन्त श्रीकील्हदेवजी श्रीपयहारीजी करनेके लिये प्रस्तुत देखकर वे पंगु-सन्त बहुत संकुचित महाराजके प्रधान शिष्य और भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके हुए और इन्हें निषेध किया, परंतु अपनी निष्ठाके पक्के अनन्य भक्त थे। आपका पावन चरित आगे छप्पय ४० श्रीचरणदासजीने अपने नित्यके नियमानुसार विधिपूर्वक पृ० १७८ पर दिया गया है। उनका पादप्रक्षालनादि करके पूजन किया। सन्तके श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी) सद्भाव, भगवत्कृपा और श्रीचरणदासजीके स्पर्श करते श्रीअग्रदासजी श्रीरामोपासनामें शृंगाररसके आचार्य ही उन पंगु-सन्तका पंगुपन दूर हो गया। फिर तो उन्होंने पैदल चलकर सभी तीर्थोंकी यात्रा की। सन्त-समाजमें माने गये हैं। रसिक-महानुभावोंने आपको श्रीजानकीजीकी प्रिय सखी श्रीचन्द्रकलाजीका अवतार कहा है। इनके इनका बड़ा सुयश था। सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ४१ पृ० १८० पर श्रीहठीनारायणदासजी दिया गया है। सन्त श्रीहठीनारायणदासजीका बचपनका नाम श्रीचरणदासजी नारायण था, इन्होंने अपने गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके दर्शनके लिये हठ किया था, इसीलिये इनकी श्रीचरणदासजी महाराज बड़े ही सन्तसेवी थे। बिना किसी भेद-भावके सन्तमात्रका धूप-दीप-नैवेद्यादिसे निष्ठा देखकर श्रीगुरुदेवने इनका नाम हठीनारायणदास विधिवत् पूजन करते थे तथा सन्तोंकी सीथ-प्रसादी पाते रख दिया। श्रीहठीनारायणदासजीका जन्म माघ मासकी

श्रावास्त्र्याको सं० १६०४ वि० में ग्राम इंगरी जिला हारावा (उ०प्र०)—में हुआ था। आपके पिताका नाम पंण्डे श्री अवनारायण चतुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कन्य चुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कन्य चुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कन्य मुद्या अकार कुहरावरणका विदारण करते हुए प्रकट हो गये। अनन्य मुद्याभावसे सूरजदासजीने दर्शन किथे। कन्य चुर्वेदी आर मातान नाम हो श्री स्तारामजाके दर्शन किथे। सन्त-मण्डली भक्त और भगवान्को जय-जयकार करने फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृषासे आपका जन्म हुआ।  श्रीसूरजदासजी श्रीसुरजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपको श्रीसीतारामजीके विवाद हुव नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका विवाद हुव नियम था कि सूर्य स्वाद हुव हो गया था—एक तरफ अपने आग्नित स्वाम हि होते हैं, भक्तक योग-क्षेमका निवंहण तो उसके आराध्यको हो करना होता है, सिक्त थे। सिक्त भारति समाधिस्थ हो जाते, आपको समाम विवाद हो तो रहे। वचपनमें हो आपक अमीनितम्म-निव्ध हो तो सुरजद स्वाद है करना होता है, स्वाद हिता हो तो सुरजद स्वाद है हुव हुव हो एय हुव	छप्पय ३९ ]	के शिष्यगण * १७७
इटावा (उठप्र०) — में हुआ था। आपके पिताका नाम पं श्रीजयनारायण चतुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कहते हैं कि आपके माता—पिताको कोई संतान नहीं थी, तब उन्होंने बदिरकाश्रम जाकर कठोर तप किया, जिसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ।  श्रीसूरजदासजी श्रीस्तारामजीको से अखण्ड नीर्च्छा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका सले वात है, भादोंका महीना था; आकाशमें सकले बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें सकले बात है भादोंका महीना था; आकाशमें सकले बात वात हैं था आप उनके सामने अद्धुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम–निच्छा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सिक्क बला तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी—जैसे आराध्यको ही करना होता है, एक विश्वा तो कहीं अता–पता नहीं हैं, फिर ये किसके वाल के श्रीसीतारामजी—जैसे आराध्यको ही करना होता है, प्रजानका तो कहीं अता–पता नहीं हैं, एक ये किसके वाल के श्रीसीतारामजी—जैसे अनर्य प्रभुफक सन्तको वाल हो करा प्रजानको तो कहीं अता–पता नहीं हैं, एक ये किसके वाल के श्रीसीतारामजी—जैसे अनर्य प्रभुफक सन्तको वाल हो श्रीसीतारामजी जैसे अनर्य प्रभुफक सन्तको वाल हो श्रीसीतारामजी के एक वे स्वामी कर रहें हैं, पर उन्हें क्या प्रभुफक सन्तको नियम–निच्छाको अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् स्वामी विश्व रायस्व कर लिया। बालक टीलाको भिक्त और प्रवान देखकर माता–पिताने भी तपस्या करके भावान्का दर्शन करनेका सामर्य साक्षात् सुद्देवमें भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्वार रखकर श्रीसूरजदासजीन सामर्य साक्षात् हें कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर सामर्य साम		**************************************
अनन्य अद्भाभावसे स्रज्दासजीने उस सूर्यमण्डलके कहते हैं कि आपके माता-पिताको कोई संतान नहीं थी, तब उन्होंने बदिरिकाश्रम जाकर कठोर तप किया, जिसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे अपिका जन्म हुआ।  अिस्रजदासजी  श्रीस्रजदासजी परम बैणाव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका जन्म हुआ।  श्रीस्रजदासजी परम बैणाव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृह नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमं काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। स्रजदासजी सन्तोंको टोली लिये हुए तीथयात्रापर निकले थे। आज उनके साम-अद्धृत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वष्टण तो उसके आराध्यक्ष दर्शनक योग-क्षेमका निर्वष्टण तो उसके आराध्यक दर्शनक ते लिये कसती चिना! श्रीस्रजदासजीने भक्तिमावपूर्वक पृजनक सिया किया। लागोंको आष्ट्य वा कि स्वयं निवाह हो तो सुरावनक तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके साम निर्वष्ट ते हो तो सुरावनक तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके मानवान्त तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके मानवान्त तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके साम निरावन करके भगवान्तक दश्रम करने भगवान्तक तो करवे निरावन करने सामवान तो करने भगवान तो करने कामवान करने सामवान तो करने कामवान करने कामवान करने कामवान करने कामवान करने कामवान करने कामवान करने सामवान करने सामवान करने सामवान करने द्वात देखकर साता-पिताने भी तपस्याक अनुमित दे दी। कहते हैं हो आपको तपके लिये उचत देखकर श्रीस्तेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्रजदासजीने सामव्य सामवान स्रावन करने सामवान करने सामवान करने द्वात देखकर साता-पिताने भी तपस्याक उनमें हो सामवान करने सामवान करने सामवान करने सामवान करने सामवान करने सामवान करने द्वात देखकर साता-पिताने भी तपस्याक तरके सामवान करने सामवान कर		,
मध्यमें अपने आराध्य श्रीसीतारामजीके दशेंन किये। सन्त-मण्डली भक्त और भगवान्की जय-जयकार करने फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ। श्रीसूरजदासजी श्रीस्र्जदासजी परम बैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका विना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भारोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। स्र्जदासजी सत्तोंकी टोली लिये हुए तीथंयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्धुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग- क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजीने और आरच्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूजदासजीने भक्ति सर्वामण्डले प्रकृत करने के साचिना! श्रीसूरजदासजीने भक्ति सर्वामण्डले प्रकृतको कथा। स्वामण्डले प्रकृतको कथा। स्वामण्डले प्रकृतको कथा। स्वामण्डले प्रकृतको कथा। स्वामण्डले प्रकृतको कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक धाल तैयार किया। लोगोंको आश्रचर्य था कि सूर्य- भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् स्वर्वने भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसुरजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसुरजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसुरजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान दिक्त ग्रीस्राजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसुरजदासजीने सम्त हिता भ्रीस्वरी साम्य राम्य स्वर्य कर लिया। बालक टीलाकी भिक्त अन्त स्वर्य कर लिया। करके भ्रीस्वरीलापर तपस्या करनेक आदाक्य स्वर्य स्व	3	
त्व उन्होंने बदिरकाश्रम जाकर कटोर तप किया, जिसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ।  श्रीसूरजदासजी श्रीसूरजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीन किया नलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमं काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थगत्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी और अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं ती भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सके का बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्के योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इप्टेदेव हों तो सूरजदासजीक भर्षच्ये था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरवदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी त्याचनिक ते प्रवान किया। वालक टीलाकी भक्ति अन्य प्रभुक्त किया वालक टीलाकी भक्ति अपका निर्वहण के श्रवन किया। वालक टीलाकी भक्ति आपका वालक श्रीह किया। वालक टीलाकी भक्ति आपका वालक श्रवको कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक नियान करनेकी सामर्थ साक्षात् सुद्देवमें भी नहीं होते।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्तजदासजीन स्वाम्य सिक्त हो होते।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्तजदासजीन कृपा के पान किया वालक टीलाकी भक्ति आपका तपके लिये उद्यत देखकर माता-पिताने भी तपस्या करनेका सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेका सुझाव	श्रीजयनारायण चतुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था।	अनन्य श्रद्धाभावसे सूरजदासजीने उस सूर्यमण्डलके
फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ।  श्रीसूरजदासजी श्रीस्एजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीवा विना दर्शन किये आप अन—जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। स्रजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं संकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्के योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक स्वामी और समताने अस्तु स्वामी और समताने अस्तु का से स्वयं विकते । श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और समताने का प्रेम से संकार उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और समताने कि से आता प्राचन करने लिये सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्के योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक स्वामी और समताने कि सम्यन्त का से स्वयं स्वयं स्वयं स्वयं स्वयं स्वयं वह ते हो तो स्रज्जके दर्शनके लिये सकते किया। लोगोंको आश्चर्य था कि स्वयं मालूम कि स्रज्जदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी त्वयं कर लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि स्रज्वदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी त्वया। वालक टीलाकी भिक्त और निर्मामनित स्वयं साक्षात स्वयं साक्षात सुर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्रजदासजीने स्वयं स्वयं साक्षात स्वयं साक्षात अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात होता है, कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर माता-पिताने भी तपस्याकर के संन किया। वालक टीलाकी भिक्त वेषा सुवायो उस सिद्ध स्वयं पर लिया। वालक टीलाकी भिक्त और किया प्रवायो स्वयं साक्षात सुर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्रजदासजीन क्राच्या हो गये। भावनाके प्रवाय ह	कहते हैं कि आपके माता-पिताको कोई संतान नहीं थी,	मध्यमें अपने आराध्य श्रीसीतारामजीके दर्शन किये।
अप्रसुरजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था िक सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीवा विना दर्शन िकये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले वादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। स्रजदासजी सन्तोंकी टोली िलये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूख रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक स्वामी और सन्तकी लोये किसी चिन्ता! श्रीस्राजदासजीने भिक्तभावान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि स्रजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी तियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात स्वामि कि स्राजदिवाने भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्रजदासजीने दशा रखकर श्रीस्रजदासजीने सामर्थ्य साक्षात स्वामि कि सुर्य-पालूम कि स्रजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी तियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात स्वामि श्रीस्रववमें भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्रजदासजीन विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेका सुश्रव साम्रती यथास्थान रखकर श्रीस्रजदासजीन दशान होता है, कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर माता-पिताने भी तपस्याकर के स्वाम्य स्वाम्य साक्षात होता है। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर माता-पिताने भी तपस्याक अनुमति दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर माता-पिताने भी तपस्याक रकनेका सुश्रवि मान्य साक्षात होता है। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर माता-पिताने भी तपस्याक उत्तत देखकर माता-पिताने भी तपस्याक उत्तत देखकर साता-पिताने भी तपस्याक उत्तत	तब उन्होंने बदरिकाश्रम जाकर कठोर तप किया, जिसके	सन्त-मण्डली भक्त और भगवान्की जय-जयकार करने
श्रीसूरजदासजी श्रीस्रातारामजीमें अखण्ड और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारको बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंको टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्धुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग- क्षेमका निर्वहण ती उसके आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आरचर्य था कि सूर्य- भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाको अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने समस्त सामग्री वथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने समस्त सामग्री वथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने समस्त सामग्री ही होती। स्राह्न दिवान श्रीप्रचित श्रीभ्रुवटीलापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। स्राह्न दिवान श्रीप्रचत्न स्थापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। स्राह्न दिवान श्रीप्रचत्न स्थापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। स्राह्न दिवान श्रीप्रचत्न स्थापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। स्राह्न दिवान श्रीप्रचत्न स्थापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती।	फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे	लगी। भक्तका प्रेम और भगवान्की कृपा देख सबलोग
श्रीस्र्राजदासजी परम वेष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका व्यंद दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका विना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारको बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्धुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक्ष ही करना होता है, पक्ति विन्ता! श्रीस्र्राजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आरचर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सुर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्र्रजदासजीने स्वास्त्र श्रीस्रुवदालापर तपस्या करनेको सुर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्र्रजदासजीने स्वास्त्र श्रीस्रुवदालापर तपस्या करनेको सुर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीस्र्रजदासजीने स्वास्त्र टीलाको श्रीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	आपका जन्म हुआ।	धन्य हो गये।
अापकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका विना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भारों का महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूर्यज्ञासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्धुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निवाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक ही करना होता है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूर्जदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठा अवहेलना करनेकी सामर्थ साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती। स्तर्मस्था साम्रा यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने स्तर्मस्थ सामर सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन स्तर्मस्थ सामर सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन स्तर्मसे सामर सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन साथान स्तर्मसे सामर सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन साथुनमान्तीन भ्रीघ हि श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त स्तर्मसे सामर सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन साथुनमान्तीन भ्रीघ हि श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त साथुन स्वर्ण प्राप्त स्वर्ण प्राप्त स्तर्मसे सामर सामर सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन साथुन स्वर्ण पण्ड स्तर्म साथान स्वर्ण प्राप्त साथुन स्वर्ण साथुन साथु	श्रीसूरजदासजी	श्रीटीलाजी
सलेमाबादमें हुआ था। आपके पिता श्रीहरिरामजी विना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्धुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग- क्षेमका निवंहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर ये किसमे प्यानका तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी स्वयन ते त्या विनयन तिरान अवहेलना करनेको सामध्य सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने सक्तर स्वाम स्वयन सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेको सामध्य साक्षत विनयम-निष्ठाकी अवहेलना करनेको सामध्य साक्षत विनयम-निष्ठाकी अवहेलना करनेको सामध्य साक्षात स्वयंदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने दर्शन प्राप्त स्वया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त स्वया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	श्रीसूरजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे,	श्रीटीलाजी महाराजका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १०,
बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजक दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीस्रजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आएचर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् स्मरत सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने मुश्वरिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेका सुश्वर्वे भे नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन स्रामर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात देवान शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात देवान शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात देवान शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात ही तथा। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका	सं० १५१५ वि० को राजस्थानके किशनगढ़ राज्यान्तर्गत
बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यक ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजक दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीस्रजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आएचर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् स्मरत सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने मुश्वरिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेका सुश्वर्वे भे नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीन स्रामर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात देवान शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात देवान शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात देवान शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त व्हात ही तथा। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका	सलेमाबादमें हुआ था। आपके पिता श्रीहरिरामजी
काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षिमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या माता-पिताको बहुत समयतक कोई संतान नहीं थी, बादमें आबूराजनिवासी एक सिद्ध सन्तके आशीर्वादसे आपका जन्म हुआ था। सन्तकृपा, तीर्थक्षेत्रका प्रभाव, पूर्वजन्मके संस्कारों और माता-पिताकी भगवद्धिके आपका उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और सास्त्रानुशीलनके साथ-साथ बढ़ते ही रहे। बचपनमें ही आप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपको स्याच हिना से सुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक धूवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाकी भिक्त और माता-पिताको भगवद्धिके आपका जन्म हुआ था। सन्तकृपा, तीर्थक्षेत्रका प्रभाव, पूर्वजन्मके संस्कारों और माता-पिताकी भगवद्धिके सम्याक्त के देख संस्कार उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और सास्त्रानुशीलनके साथ-साथ बढ़ते ही रहे। बचपनमें ही आफ किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तके (वा सम्याक कोई संतान नहीं थी, जावद्वीक दिया सम्याव बढ़ते ही रहे। बचपनमें ही आफ किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते, आपको स्थाव दिया। एक बारकी बात है, आपको प्रवान करके प्रवान करके भगवान्तक देखकर माता-पिताने भी तपस्या करके भगवान्तक टीलाजी नाम रख दिया। यह सक्त है साथ प्रवान करके भगवान्तक देखकर माता-पिताने भी तपस्याक करके भगवान्य स्वत्याव करके स्वत्याव स्वत्याव सम्यव्याव सम्यव्याव सम्यव्याव स	बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते	श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित और माता श्रीमती शीलादेवी
सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आरचर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके त्या करने लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् स्मस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने स्वालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको श्री हो श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको श्रीव हो स्याप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको स्थाप स्थान स्थाप स	थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें	साधु–सन्तसेवी सद्गृहिणी थीं। कहते हैं कि आपके
सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे। सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आरचर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके त्या करने लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् स्मस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने स्वालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको शिघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको श्री हो श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको श्रीव हो स्याप्त विया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेस बालक टीलाको स्थाप स्थान स्थाप स	काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान्	माता-पिताको बहुत समयतक कोई संतान नहीं थी,
प्रामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग— क्षेमका निवंहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य— भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूर्जदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी भावप्ता करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ा देखकर माता-पिताने भी तपस्याको अनुमित दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीभ्रुवटीलापर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र हो श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र हो श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी	बादमें आबूराजनिवासी एक सिद्ध सन्तके आशीर्वादसे
प्रामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग— क्षेमका निवंहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य— भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूर्जदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी भावप्ता करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ा देखकर माता-पिताने भी तपस्याको अनुमित दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीभ्रुवटीलापर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र हो श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र हो श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके	आपका जन्म हुआ था। सन्तकृपा, तीर्थक्षेत्रका प्रभाव,
अोर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कसेती चिन्ता! श्रीसूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये वाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी न्यम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात सूर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने स्वालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ	पूर्वजन्मके संस्कारों और माता-पिताकी भगवद्धिक्तके
तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।  संवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने सामस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने सामक्त ही लिये शिव स्थानपर तपस्या करनेसे सामस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने सामक्त होता है। आप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपको स्थ दिया।  एक बारकी बात है, आपके पिताजीन आपको वालक ध्रवचा।  एक बारकी बात है, आपके पिताजीन आपको टीलाजी नाम रख दिया।  एक बारकी बात है, आपके पिताजीन आपको टीलाजी नाम रख दिया।  एक बारकी बात है, आपके पिताजीन आपको टीलाजी नाम रख दिया।  एक बारकी भाँवि समाधिस्थ हो जाते, आपको सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपको स्थ दिया।  एक बारकी वात है, आपके पिताजीन आपको टेलाजी ने सम्त श्री सुवान कर विया।  एक बारकी वात है, आपके पिताजीन अपको सेख प्रवास कर विया।  एक बारकी क्रांस प्रवास साथ सुवान स्थ दिया।  एक बारकी क्रांस सुवान हो सुवान सुवा	अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी	 सम्मिलित प्रभावसे बालक टीलाजीमें बचपनसे ही
सकते थे।  सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग- क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य- भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात सूर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने  अाप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपको इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम रख दिया।  एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक टीलाकी भिक्त और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमित दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीधुवटीलापर तपस्या करनेका सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं	भक्तिके दिव्य संस्कार उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और
सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग- क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य- भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपकी इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम रख दिया। एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक टीलाकी भिक्त और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमित दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीधुवटीलापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। इसस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं	। शास्त्रानुशीलनके साथ-साथ बढ़ते ही रहे। बचपनमें ही
स्नेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य- प्रावान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम रख दिया। एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक टीलाकी भिक्त और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमित दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीधुवटीलापर तपस्या करनेका सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	सकते थे।	आप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी
प्तिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये अवनन्य प्रभुभक्त सन्तकी तियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने खालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-	सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपकी
एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मृत्या करके भगवान्का दर्शन करनेका पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मृत्या करके भगवान्का दर्शन करनेका पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या चृत्या करके लिये। बालक टीलाको भिक्त और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमित दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीस्यान करनेका सुर्यदेवमें भी नहीं होती।  समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है,	इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम
कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भिक्तभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य- धीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती। सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे सामस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और	् रख दिया।
थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य- भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये	एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको
थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य- भगवान्का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती। समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका	बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक
पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमित दे मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त		टीलाने भी तपस्या करके भगवान्का दर्शन करनेका
पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमित दे मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त		l :
नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या	दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमति दे
नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सूर्यदेवमें भी नहीं होती। सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी	दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर
सूर्यदेवमें भी नहीं होती। सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात्	 श्रीहनुमान्जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका
समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्के दर्शन प्राप्त	सूर्यदेवमें भी नहीं होती।	
-, ·		l <sup>-</sup>
złinguism Niscord Server pitos Wascagyanarma (PWAMFZANTH TOAF RY VANDSDVZDV		· ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` `

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क \* \* समझाया और वैष्णव-मन्त्रकी दीक्षा देकर उनका नाम प्राप्त हुई, वहीं पुरुषोंके साथ-साथ स्त्रियाँ भी दीक्षित हुईं। श्रीसाकेतनिवासाचार्य रख दिया। श्रीसाकेतनिवासाचार्यजीने जैसे श्रीपद्मावतीजी श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शिष्या थीं, उसी बहुत दिनोंतक गलतागादी (जयपुर)-में रहते हुए प्रकार श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजीकी शिष्या थीं गंगादेवी। श्रीपयहारीजी महाराजकी सेवा की, फिर उनकी आज्ञा श्रीगंगादेवी परम भगवद्भक्ता थीं, भगवत्प्रसाद और चरणामृतमें लेकर भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंका परिभ्रमण एवं भगवद्भक्तिका इनकी बड़ी निष्ठा थी। प्रचार किया। श्रीरंगदासजी (श्रीरंगारामजी) श्रीगंगादेवीजी श्रीरंगदासजी महाराज श्रीपयहारीजीके प्रधान शिष्य स्वामी रामानन्दजी महाराजने कलिमलग्रसित जीवोंके थे। आपकी श्रीगुरुचरणकमलोंमें बड़ी ही निष्ठा थी। कल्याणके लिये जो सम्प्रदाय चलाया, उसमें दीक्षित होनेका यहाँतक कि आप सिंहासनपर गुरुपादुका रखकर उसका सबको अधिकार था। उनके सम्प्रदायमें वर्ण-लिंगसम्बन्धी ही पूजन करते थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और कोई भेद नहीं था। इस सम्प्रदायमें जहाँ चारों वर्णोंको दीक्षा अकिंचनवृत्तिसे रहते थे। श्रीकील्हदेवजी राम चरन चिंतवनि रहति निसि दिन लौ लागी। सर्व भूत सिर निमत सूर भजनानँद भागी॥ सांख्य जोग मत सुदृढ़ किए अनुभव हस्तामल। ब्रह्मरंध्र करि गौन गए हरि तन करनी बल॥ सुमेरदेव सुत जग बिदित भू बिस्तास्चो बिमल जस। गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस ॥ ४० ॥ जिस प्रकार गंगाजीके पुत्र श्रीभीष्म पितामहजीको आप सभी प्राणियोंमें अपने इष्टदेवको देखकर उन्हें सिर मृत्युने नष्ट नहीं किया, उसी प्रकार स्वामी श्रीकील्हदेवजी झुकाते थे। सांख्यशास्त्र तथा योगका आपको सुदृढ़ ज्ञान भी साधारण जीवोंकी तरह मृत्युके वशमें नहीं हुए, था और योगकी क्रियाओंका आपको इतना सुन्दर बल्कि उन्होंने अपनी इच्छासे प्राणोंका त्याग किया। अनुभव था कि जैसे हाथमें रखे आँवलेका होता है। कारण कि आपकी चित्तवृत्ति दिन-रात श्रीरामचन्द्रजीके ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्राणोंको निकालकर आपने शरीरका चरणारविन्दोंका ध्यान करनेमें लगी रहती थी। आप त्याग किया और अपने योगाभ्यासके बलसे भगवद्रूप मायाके षड्विकारोंपर विजय प्राप्त करनेवाले महान् पार्षदत्व प्राप्त किया। इस प्रकार श्रीसुमेरुदेवजीके सुपुत्र शूरवीर थे। सदा भगवद्भजनके आनन्दमें मग्न रहते थे। श्रीकील्हदेवजीने अपने पवित्र यशको पृथ्वीपर फैलाया, सभी प्राणी आपको देखते ही नतमस्तक हो जाते थे और आप विश्वविख्यात सन्त हुए॥४०॥ श्रीकील्हदेवजी महाराजका जीवन-चरित संक्षेपमें इस प्रकार है— श्रीनाभादासजी महाराजके नेत्र क्या, नेत्रके चिहन भी श्रीकील्हदेवजी महाराज श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी नहीं थे, श्रीकील्हदेवजीने अपने कमण्डलुके जलसे महाराजके प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीपयहारीजीके उनके नेत्र-स्थानको धुला, जिससे उनके बाह्य चक्षु परमधामगमनके बाद गलतागादी (जयपुर)-के महन्त आप ही हुए। आप दिव्यदृष्टिसम्पन्न परम वैष्णव सिद्ध प्रकट हो गये। सन्त थे। कहते हैं कि भक्तमाल ग्रन्थके रचनाकार कहते हैं कि एक बार श्रीकील्हदेवजी मथुरापुरी

छप्पय ४०, कवित्त १२१] * श्रीकिर	हदवजी * १७९
******************	*******************************
आये हुए थे और श्रीयमुनाजीमें स्नानकर एकान्तमें	बादशाह यद्यपि श्रीकील्हदेवजी महाराजसे प्रभावित
समाधिस्थ हो भगवद्ध्यान करने लगे। उसी समय	तो बहुत हुआ, परंतु मुसलमान मुल्ला–मौलवियोंके निरन्तर
बादशाहके दिल्लीसे मथुरा-आगमनकी सूचना मिली।	सम्पर्कमें रहनेसे उसने हिन्दुओंका धर्म परिवर्तनकर उन्हें
सेना तुरंत व्यवस्थामें लग गयी, रास्ता साफ किया जाने	मुसलमान बनानेका अभियान चला रखा था। अब हिन्दुओंने
लगा, सब लोग तो हट गये, परंतु ध्यानावस्थित होनेके	मिलकर श्रीकील्हजीकी शरण ली और धर्मरक्षा करनेकी
कारण श्रीकील्हदेवजी महाराजको बाह्य जगत्की कुछ	प्रार्थना की। श्रीकील्हदेवजीने सबको आश्वासन दिया
खबर ही नहीं थी; वे समाधिमें स्थिर होकर बैठे थे।	और स्वयं बादशाहके दरबारमें गये। बादशाहने
किसी सिपाहीने जाकर बादशाहको बताया कि हुजूर!	श्रीकील्हदेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया और आगेसे ऐसा
एक हिन्दू फकीर रास्तेमें बैठा है और हमारे शोर	न करनेकी शपथ ली।
मचानेपर भी नहीं उठ रहा है। उसने फौरन हुक्म दिया	श्रीकील्हदेवजी महाराज दिव्यदृष्टिसम्पन्न थे, जिस
कि उस काफिरके माथेमें लोहेकी कील ठोंक दो। हुक्म	समय आपके पिता श्रीसुमेरुदेवजीका भगवद्धामगमन हुआ,
मिलते ही दुष्ट सिपाहियोंने लोहेकी एक कील लेकर	उस समय आप श्रीमथुराजीमें विराजमान थे और आपके
कील्हजीके माथेमें ठोंकना शुरू किया। परंतु आश्चर्य!	समीप ही राजा मानसिंह बैठे थे। आपने जब आकाशमार्गसे
कील्हदेवजी तो वैसे ही शान्त, निर्विकार बने रहे, परंतु	विमानस्थ पिताजीको भगवद्धाम जाते देखा तो उठकर
उनके माथेका स्पर्श करते ही वह लोहेकी कील गलकर	प्रणाम किया और पिताने भी इन्हें आशीर्वाद दिया। इनके
पानी हो गयी! यह आश्चर्य देख सिपाही भागकर	अतिरिक्त अन्य किसीको इनके पिता नहीं दिखायी दिये,
बादशाहके पास गये। बादशाहको भी यह विचित्र घटना	इसीलिये राजा मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने
सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे लगा कि मैंने बादशाहतके	श्रीकील्हजीसे पूछा कि प्रभो! आप क्यों उठे और हाथ
नशेमें चूर होकर किसी सिद्ध सन्तका अपमान कर दिया	जोड़कर किसे प्रणाम किया ? श्रीकील्हजीने उन्हें पिताजीके
है और इसका दण्ड भी भोगना पड़ सकता है, अत:	परमधामगमनकी बात बतायी। मानसिंहको बहुत आश्चर्य
भागता हुआ जाकर श्रीकील्हदेवजी महाराजके चरणोंमें	हुआ; क्योंकि श्रीकील्हदेवजीके पिताजीका शरीर छूटा
गिर पड़ा और बार-बार क्षमा माँगने लगा। थोड़ी देर	था गुजरातमें और श्रीकील्हदेवजी थे मथुरामें—ऐसेमें
बाद जब कील्हदेवजीकी समाधि टूटी और वे अन्त:जगत्से	श्रीकील्हदेवजीको पिताका दर्शन कैसे हुआ, यह मानसिंहके
बाह्य जगत्में आये तो उन्हें इस घटनाका ज्ञान हुआ।	लिये आश्चर्यकी बात थी। उन्होंने तुरंत ही अपने दूतोंको
श्रीकील्हदेवजी महाराज तो परम सन्त थे, उनके मनमें	गुजरात भेजकर सत्यताकी जानकारी की। श्रीकील्हदेवजीकी
क्रोधके लिये कहीं स्थान ही नहीं था, उन्होंने बादशाहको	बात अक्षरश: सत्य प्रमाणित हुई, इससे राजा मानसिंहको
तुरंत क्षमा कर दिया।	इनपर बहुत ही श्रद्धा हो गयी।
इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तमें :	इस प्रकार वर्णन किया है—
श्रीसुमेर देव पिता सूबे गुजरात हुते भयो	तनुपात सो विमान चढ़ि चले हैं।
बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढिंग देखे	नभ जात उठि कही भले भले हैं॥
पूछे नृप बोले कांसों ? कैसे कै प्रकासों, कहौ	, कह्यौ हठ परे सुनि अचरज रले हैं।
मानुस पठाये सुधि ल्याए सांच आंच लागी क	ारी साष्टाङ्ग बात मानी भाग फले हैं॥ १२१॥
उनके संतत्वकी एक दूसरी घटना इस प्रकार है—	लिये पिटारीमें जैसे ही हाथ डाला, वैसे ही उसमें बैठे
एक बारकी बात है, आप अपने आराध्य प्रभु श्रीसीतारामजी	एक विषधर सर्पने आपके हाथमें काट लिया। करुणाविग्रह
महाराजकी सेवा कर रहे थे। आपने माला निकालनेके	आपने उस अपकारी सर्पपर भी दया की और उसे भूखा

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क जानकर पुनः अपना हाथ पिटारीमें डाल दिया। इस प्रकार | सत्कार किया और उसकी क्षुधापूर्ति की। श्रीरामकृपासे आपने तीन बार पिटारीमें हाथ डाला और सर्पने तीन बार | उस विषधरके विषका आपपर कोई प्रभाव भी नहीं हुआ। काटा, चौथी बार वह स्वयं पिटारीसे बाहर चला गया। सत्य है, जब भजनके प्रभावसे काल-व्यालका विष नहीं इस प्रकार आपने सर्पको भी अतिथि मानकर उसका वयापता तो लौकिक व्यालका विष क्या व्यापेगा! श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं— ऐसे प्रभु लीन निहं कालके अधीन बात सुनिये नवीन चाहैं रामसेवा कीजिये। धरी ही पिटारी फूलमाला हाथ डार्यो तहाँ व्यालकर काट्यो कह्यो फेरि काटि लीजिये॥ ऐसे ही कटायो बार तीनि हुलसायो हियो कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिये। करिकैं समाज साधु मध्य यौं विराज प्रान तजे दशैं द्वार योगी थके सुनि जीजिये॥ १२२॥ श्रीकील्हदेवजी महाराज सिद्ध सन्त थे, भविष्यकी । सन्देश भेज दिया और सन्तोंसे संकीर्तन करनेको कहा। बातें जान लेनेकी उनमें सामर्थ्य थी। जब उन्हें भगवद्धाम | संकीर्तन सुनते हुए ही आपने ब्रह्मरन्थसे अपने प्राणोंका जाना हुआ तो पहलेसे ही सन्तोंके पास इस आशयका | उत्क्रमण किया। श्रीअग्रदासजी सदाचार ज्यों संत प्रात जैसे करि आए। सेवा सुमिरन सावधान ( चरन ) राघव चित लाए॥ प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर। रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥ ( श्री ) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत मन बच क्रम करि अटल दयो। ( श्री ) अग्रदास हरि भजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो॥४१॥ आदिकी सब सेवाएँ सदा अपने हाथसे ही करते थे। श्रीस्वामी अग्रदासजीने भगवद्भजनके बिना क्षणमात्र भी समयको व्यर्थ नहीं बिताया। आपका वैष्णव सदाचार आपको जिह्वासे परम पवित्र श्रीसीताराम नामकी ध्वनि पूर्ववर्ती आचार्योंके समान ही था। आप सदा मानसी इस प्रकार होती रहती थी, मानो मधुर गर्जनके साथ सेवा एवं प्रकट विग्रहसेवामें तथा भगवन्नामस्मरणमें मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। गुरुदेव पयहारी सावधान रहते थे। सदा राघवेन्द्रसरकारके श्रीचरणोंमें श्रीकृष्णदासजीने परमकृपा करके मन-वचन-कर्मसे सम्बन्धित अचल भक्तिका भाव आपको प्रदान किया मनको लगाये रहते थे। (सीताराम-विहार) प्रसिद्ध बागमें आपकी बड़ी प्रीति थी, उसे सींचने, बुहारने था॥४१॥ श्रीनाभादासजीके गुरुमहाराज श्रीअग्रदासजीका चरित संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत है— महात्मा श्रीअग्रदासजी श्रीकृष्णदास पयहारीजी हुआ था। इनमें भक्तिके संस्कार बचपनसे ही विद्यमान थे, अत: अत्यन्त अल्पवयमें ही आपने घर छोडकर श्रीपयहारीजी महाराजके शिष्य थे, श्रीगुरुदेवके परमधामगमनके बाद अग्रदासजीने जयपुरके पास ही लगभग ३० मील दूर गोरयाँ महाराजकी शरण ग्रहण कर ली। श्रीपयहारीजीने इन्हें योग्य जानकर श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी और उपासना-स्टेशनके निकट रैवासा नामक स्थानपर गद्दी स्थापित की। श्रीअग्रदासजीका प्रादुर्भाव फाल्गुन शु० २, सं० रहस्य एवं शरणागति-माहात्म्यका उपदेश दिया। १५५३ वि० को राजस्थानके एक गाँवमें ब्राह्मणकुलमें भक्तमालके रचनाकार परमभागवत श्रीनाभादासजी

\* श्रीशंकराचार्यजी \* छप्पय ४२ ] महाराज श्रीअग्रदासजीके कृपापात्र थे और श्रीकील्हदेवजी | की। अपने रेवासा आश्रमके पास ही आपने श्रीरामबाग और श्रीसियमनरंजिनीवाटिकाका महाराजके प्रति आपका अग्रजका भाव था। भगवती । निर्माण जगज्जननी जनकलली जानकीजीकी प्रिय सखी रेवासा गाँवके लोगोंको पीनेके लिये जलकी समस्या थी, चन्द्रकलाके आप अवतार माने जाते हैं, अग्रअलीके | आपने अपना चिमटा गाडुकर पृथ्वीसे जलस्रोत प्रकट नामसे आपने मधुररसोपासना और मधुर भावकी भक्ति । कर दिया। श्रीप्रियादासजीने आपकी महिमा निम्न कवित्तमें प्रकट की है— दरशन काज महाराज मानसिंह आयो छायो बाग मांझ बैठे द्वार द्वारपाल हैं। झारि कै पतौवा गये बाहिर लै डारिबे को देखी भीर भार रहे बैठि ये रसाल हैं॥ आये देखि नाभाजू ने उठि साष्टांग करी ठाढ़े भरी जल आँखें चली अँसुवनि जाल हैं। राजा मग चाहि हारि आनिकै निहारि नैन जानी आप जानी भये दासनि दयाल हैं॥ १२३॥ एक बारकी बात है—जयपुरके राजा मानसिंह। देखकर श्रीनाभाजी स्वामीजीके निकट आये और उन्होंने स्वामी श्रीअग्रदेवजीके दर्शन करनेके लिये आये। उस उनके प्रेममग्न स्वरूपका दर्शन करके उनको साष्टांग समय स्वामीजी बागमें ही थे। बागके द्वारपर राजाके दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीनाभाजीकी आँखें तर हो द्वारपाल बैठ गये। अन्य कुछ व्यक्तियोंके साथ राजा आयीं और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। राजाने बागके भीतर गये। इसी बीच स्वामीजी बागके सूखे बागमें देरतक बाट देखी, फिर उससे न रहा गया, पत्तोंको झाडकर बाहर फेंकने गये। राजाके साथ हारकर वह भी वहीं आ गया और उसने स्वामीजीके आयी हुई भीड़भाड़को देखकर स्वामीजी लौटकर नहीं दर्शन करके यह जाना कि श्रीरामचन्द्रजीने ही दासोंपर आये। बाहर ही बैठ गये और माधुर्यरसरूप श्रीस्वामीजी दया की है, वे ही श्रीअग्रदेवजीके रूपमें सामने मधुर ध्यान-रसमें लीन हो गये। स्वामीजीको आया विराजमान हैं॥१२३॥ श्रीशंकराचार्यजी उतसृंखल अग्यान जिते अनईस्वरबादी। बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥ बिमुखनि को दियों दंड ऐंचि सन्मारग आने। सदाचार की सींव बिस्व कीरतिहि बखाने॥ र्इस्वरांस अवतार महि मरजादा माँड़ी अघट। कलिजुग धर्मपालक प्रगट आचारज संकर सुभट॥४२॥ अधर्मप्रधान कलियुगमें वैदिक धर्मके रक्षक। उन्हें बलात् खींचकर सनातन धर्मके मार्गपर ले आये। श्रीशंकराचार्यजीका अवतार हुआ। आप विधर्मियोंको आप सदाचारकी सीमा अर्थात् बड़े सदाचारी थे। सारा शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाले वाक्-वीर थे। वैदिक संसार आपकी कीर्तिका वर्णन करता है। आप भगवान मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले उद्दण्ड, ईश्वरको न शंकरके अंशावतार थे। पृथ्वीपर प्रकट होकर आपने माननेवाले बौद्ध, शास्त्रविरुद्ध तर्क करनेवाले जैनी और वेदशास्त्रकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका इस प्रकार समर्थन और पाखण्डी आदि जो लोग भगवान्से विमुख थे, उन्हें स्थापन किया कि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shasurf दण्ड दिया। भय दिखाकर शास्त्रार्थमें हराकर वह अचल हो गया॥ ४२॥

१८२ * यो मद्धक्तः	स मे प्रियः * [ भक्तमाल-अङ्क
****************	
यहाँ श्रीशंकराचार्यजीका महिमामय चरित संक्षेप	
केरल प्रदेशके पूर्णा नदीके तटवर्ती कलान्दी नामक	घरसे निकल पड़े। जाते समय माताकी इच्छाके अनुसार
गाँवमें बड़े विद्वान् और धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्रीशिवगुरुकी	यह वचन देते गये कि 'तुम्हारी मृत्युके समय मैं घरपर
धर्मपत्नी श्रीसुभद्रा माताके गर्भसे वैशाख शुक्ल पंचमीके	उपस्थित रहूँगा।'
दिन शंकरावतार भगवान् श्रीशंकराचार्यने जन्म ग्रहण	घरसे चलकर शंकर नर्मदा-तटपर आये और वहाँ
किया था। मठोंकी परम्पराके अनुसार इनका जन्मसमय	स्वामी गोविन्द भगवत्पादसे दीक्षा ली। गुरुने इनका नाम
ईसासे ४०० वर्ष पूर्वका है।	भगवत्पूज्यपादाचार्य रखा। इन्होंने गुरूपदिष्ट मार्गसे
दिव्य प्रतिभासम्पन्न आपने केवल सात वर्षकी	साधना आरम्भ कर दी और अल्पकालमें ही बहुत बड़े
अवस्थामें ही वेद, वेदान्त और वेदांगोंका पूर्ण अध्ययन	योगसिद्ध महात्मा हो गये। इनकी सिद्धिसे प्रसन्न होकर
कर लिया। आपकी असाधारण प्रतिभा देखकर गुरुजन	गुरुने इन्हें काशी जाकर वेदान्तसूत्रका भाष्य लिखनेकी
आश्चर्यचिकत रह गये।	आज्ञा दी और तदनुसार ये काशी चले गये। काशीमें
गुरुकुलनिवासकालकी बात है, बालक शंकर	वासके समय आपको भगवान् विश्वनाथने चाण्डालरूपमें
भिक्षाटन करते हुए एक निर्धन ब्राह्मणीके घर गये। उस	दर्शन दिये और अद्वैततत्त्वका बोध कराया तथा ब्रह्मसूत्रपर
बेचारीके घर अन्नका एक दाना भी नहीं था। कहींसे	भाष्य लिखनेकी प्रेरणा की। उसके पूरा होनेपर श्रीव्यासजीने
उसे एक आँवलेका फल मिला था, उसीको उसने	प्रकट होकर आपको दर्शन दिया और आपके वेदान्तभाष्यकी
ब्रह्मचारी शंकरको दिया और घरमें कुछ न होनेके	भूरि-भूरि प्रशंसा की।
कारण अन्न देनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। उस	इसके बाद आपने काशी, कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम
ब्राह्मणीकी दशा देखकर बालक शंकरका मन करुणासे	आदिकी यात्रा की, विभिन्न मतवादियोंको परास्त किया
भर गया और इन्होंने 'कनकधारास्तोत्र' का प्रणयनकर	और बहुत–से ग्रन्थ लिखे। प्रयाग आकर कुमारिलभट्टसे
उसीसे भगवती महालक्ष्मीकी स्तुति की। भगवती	उनके अन्तिम समयमें भेंट की और उनकी सलाहसे
महालक्ष्मीने प्रसन्न होकर ब्राह्मणीके घरको सोनेके	माहिष्मतीमें मण्डनमिश्रके पास जाकर शास्त्रार्थ किया।
आँवलोंसे भर दिया।	शास्त्रार्थमें मण्डनकी पत्नी भारती मध्यस्था थीं।
विद्याध्ययन समाप्तकर शंकरने संन्यास लेना	शास्त्रार्थमें शंकराचार्यजीने मिश्रजीको हरा दिया, तब
चाहा; परंतु जब उन्होंने मातासे आज्ञा माँगी, तब	भारतीने कहा मुझ अर्धांगिनीको हराये बिना आप
उन्होंने मना कर दिया। शंकर माताके बड़े भक्त थे,	विजयी नहीं हो सकते। तब आपने भारतीसे शास्त्रार्थ
उन्हें कष्ट देकर संन्यास लेना नहीं चाहते थे। एक दिन	किया। उसने रतिशास्त्र–सम्बन्धी प्रश्न किये, उनके
माताके साथ वे नदीमें स्नान करने गये। उन्हें एक	उत्तरके लिये इन्होंने छ: मासका समय माँगा और
मगरने पकड़ लिया। इस प्रकार पुत्रको संकटमें देखकर	अपने शिष्योंसे कहा कि मैं मृत राजा अमरुकके शरीरमें
माताके होश उड़ गये। वह बेचैन होकर हाहाकार	प्रवेशकर शृंगार रसका अध्ययन करूँगा। तबतक मेरे
मचाने लगी। शंकरने मातासे कहा—'मुझे संन्यास	भौतिक शरीरकी रक्षा करना। यदि वहाँसे वापस
लेनेकी आज्ञा दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा।' माताने	लौटनेमें मुझे विलम्ब हो जाय तो मेरे पास आकर मुझे
तुरंत आज्ञा दे दी और मगरने शंकरको छोड़ दिया। इस	मोहमुद्गरके श्लोक सुनाना। उस राजा अमरुकके मृत
तरह माताकी आज्ञा प्राप्तकर वे आठ वर्षकी उम्रमें ही	शरीरमें प्रवेशकर शंकराचार्यजीने रतिशास्त्रका अध्ययन

छप्पय ४२, कवित्त १२६] * श्रीशंकर	गचार्यजी∗ १८३
***************	
किया। तत्पश्चात् उनके शिष्योंने मोहमुद्गरके श्लोक	षड्यन्त्र रचा। सेवड़ोंका गुरु राजा एवं शंकराचार्यको
उन्हें सुनाये और वे राजा अमरुकका शरीर छोड़कर	लेकर एक ऊँची छतपर चढ़ गया और उसने तन्त्र
पुन: अपने शरीरमें आ गये तथा भारतीके प्रश्नोंका	बलसे ऐसी माया रची कि चारों ओर जल ही जल हो
उत्तर दे उसे निरुत्तर किया। अन्तमें मण्डनमिश्रने	गया। धीर-धीरे जल बढ़ता हुआ छततक आ गया।
शंकराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनका नाम	सेवड़ोंके गुरुने मायाकी नाव भी बना दी और राजासे
सुरेश्वराचार्य पड़ा। इससे आपकी ख्याति बहुत फैल	कहा कि इसपर चढ़ जाओ, नहीं तो जलमें डूब
गयी।	जाओगे। राजा जैसे ही नावपर चढ़ने लगे शंकराचार्यजीने
एक बारकी बात है शास्त्रार्थमें आपने सेवड़ों	उन्हें नावपर बैठनेसे मना कर दिया और पहले
(प्रतिपक्षियों)-को परास्त किया, पराजित सेवड़ा लोग	सेवड़ोंको चढ़ानेको कहा। सेवड़े जैसे ही नावपर चढ़े,
अपने राजाके पास पहुँचे। राजाने सेवड़ोंकी बात नहीं	मायाकी नाव और जल गायब हो गया और वे लोग
मानी, तब सेवड़ोंको यह भय सताने लगा कि कहीं	छतसे नीचे गिर गये। उन सेवड़ोंके शरीर भग्न हो गये।
हमारा राजा शंकराचार्यका शिष्य न बन जाय, अत:	राजा उनकी चाल और शंकराचार्यजीका प्रभाव समझ
उन्होंने राजा तथा शंकराचार्यको मार डालनेका एक	गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े।
श्रीप्रियादासजी महाराज इन घटनाओंका अपने र	कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—
बिमुख समूह लैके किये सनमुख स्याम अवि	ते अभिराम लीला जग बिसतारी है।
सेवरा प्रबल वास केबरा ज्यौं फैलि रहे, गहे	नहीं जाहिं बादी सुचि बात धारी है॥
तजिकै शरीर काहू नृपमें प्रवेश कियो, दियौ किर ग्रन्थ मोह मुद्गर सुभारी है।	
शिष्यनिसों कह्यौ कभूं देहमें आवेश जानो तब ही बखानो आप सुनि कीजै न्यारी है।। १२४।।	
जानिकै आवेश तन शिष्यने प्रवेश कियो रावलेमें देखि सो श्लोक लै उचार्यौ है।	
सुनत ही तज्यौ तन निज तन आय लियौ कियो यों प्रनाम दास पन पूरो पार्यौ है॥	
सेवरा हराये बादी आये नृप पास ऊँचे छातपर बैठि एक माया फन्द डार्यौ है।	
जल चढ़ि आयो नाव भाव लै दिखायौ कहैं चढ़ौ नहीं बूड़ौ आप कौतुक सो धार्यौ है॥ १२५॥	
आचारज कही यों चढ़ाओ इन सेवरानि राजाने चढ़ाये गिरे टूक उड़ि गये हैं।	
तब तौ प्रसन्न नृप पाँव पर्यौ भाव भर्यौ कह्यौ जोई कर्यो धर्म भागवत लये हैं॥	
भक्ति ही प्रचार पाछै मायावाद डारि दीनों की	नों प्रभु कह्यौ किते विमुख हू भये हैं।
ऐसे सो गँभीर सन्त धीर वह रीति जानें प्री	ति ही में साने हरिरूप गुन नये हैं॥१२६॥
तत्पश्चात् आचार्यने विभिन्न मठोंकी स्थापना की	मठोंके मठाधीश आज भी श्रीमद् आद्य शंकराचार्यके
और उनके द्वारा औपनिषद सिद्धान्तकी शिक्षा-दीक्षा	नामपर शंकराचार्य कहे जाते हैं।
होने लगी। आपने भारतवर्षके चारों कोनोंपर चार	यद्यपि आपका लौकिक जीवनकाल अत्यन्त अल्प
मठोंकी स्थापना की और वहाँ अपने शिष्योंको नियुक्त	मात्र ३२ वर्ष ही रहा, परंतु इतने कम समयमें ही आपने
किया। पूर्वमें श्रीजगन्नाथपुरी उड़ीसामें गोवर्धन मठ,	अनेक ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र,
दक्षिणमें शृंगेरी मठ, पश्चिममें द्वारकापुरीमें शारदामठ	उपनिषद् और गीता)-पर भाष्य ही आपके यशको अमर
और उत्तरमें ज्योतिर्मठकी आपने स्थापना की। इन	रखनेमें पर्याप्त है।

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीनामदेवजी बालदसा बीठल्ल पानि जाके पय पीयौ। मृतक गऊ जीवाय परचौ असुरन कौं दीयौ॥ सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होती। देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती॥ पँडुरनाथ कृत अनुग ज्यों छानि स्वकर छइ घास की। नाम देव प्रतिग्या निर्बही ( ज्यों ) त्रेता नरहरिदास की॥४३॥ आग्रहपर उसी तरहकी अनेक शय्याएँ निकालकर जल-थल और अग्नि आदिमें सर्वत्र अपने इष्टका ही दर्शन करूँगा—यह प्रतिज्ञा श्रीनामदेवजीकी उसी दिखा दीं। पण्ढरपुरमें पण्ढरीनाथभगवानुके मन्दिरका प्रकार निभी, जैसे कि त्रेतायुगमें नरसिंहभगवान्के दास द्वार उलटकर आपकी ओर हो गया, इस चमत्कारको श्रीप्रह्लादजीकी निभी थी। बचपनमें ही उनके हाथसे देखकर मन्दिरके पुजारी सभी श्रोत्रिय ब्राह्मणलोग विट्ठलनाथभगवान्ने दूध पिया। एक मरी हुई गायको संकुचित और लज्जित हो गये। प्रेमके प्रभावसे आपने जीवित करके असूर-यवनोंको अपने भजनबलका पण्डरनाथभगवान् आपके पीछे-पीछे चलनेवाले सेवककी परिचय दिया। फिर उस यवन राजाके द्वारा दी गयी तरह कार्य करते थे। आगसे जल जानेपर अपने हाथोंसे

#### शय्याको नदीके अथाह जलमें डाल दिया। उसके (क) नामदेवजीके जन्मकी दिव्य घटना छीपा जातिके श्रीवामदेवजी भगवान् हरिदेवजीके

#### बड़े भारी भक्त थे। उनकी एक लड़की (गौणाई) थोड़ी ही आयुमें विधवा हो गयी। जब वह बारह सालकी हो गयी, तब वामदेवजीने उससे कहा-तुम

घरमें विराजमान श्रीठाकुरजीकी सेवा सावधान मनसे अच्छी प्रकार किया करो। इससे शीघ्र ही तेरे सब मनोरथ पूर्ण होंगे। इस प्रकार पिताजीकी आज्ञा पाकर वह भगवान्की सेवा करने लगी, उसपर भगवान् शीघ्र

ही प्रसन्न हो गये और उसे प्रत्यक्ष अपना दर्शन दिया। भगवान्की सुन्दर छविका दर्शन करके वामदेवकी पुत्रीके मनमें एक भक्तपुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। भगवान्के आशीर्वादसे उसके गर्भ हो गया। उसके प्रकट हुआ।

इस कथानकका श्रीप्रियादासजी निम्नरूपसे वर्णन करते हैं—

अंगमें भगवद्भक्तिके भाव व्याप्त हो गये। अत्यन्त सुन्दर, सबको सुख देनेवाला उसका दिव्य स्वरूप

भगवान्ने आपका छप्पर छाया॥४३॥

गर्भकी चर्चा स्थान-स्थानपर चलने लगी। चलते-

चलते यह बात वामदेवजीके कानमें पड़ी। तब आपने

लड़कीसे पूछा और उसका उत्तर सुनकर यह निश्चय

किया कि भगवान्ने ही पुत्रीको अपनाया है। समय पूर्ण

होनेपर बालकका जन्म हुआ और वामदेवजीने उसका

नाम 'नामदेव' रखा। पुत्रजन्मके उत्सवमें ब्राह्मणों और निर्धनोंको जी-भरकर आपने अपनी सम्पत्ति लुटायी।

बालक नामदेव दिन-प्रतिदिन बढने लगा। उसके ऊपर

कुछ और ही अलौकिक रंग चढ़ने लगा। उसके अंग-

छीपा वामदेव हरिदेव जु को भक्त बड़ो ताकी एक बेटी पतिहीन भई जानिये। द्वादश वरष मांझ भयो तब कही पिता सेवा सावधान मन नीके करि आनिये॥

तेरे जे मनोरथ हैं पूरन करन एई जो पै दत्तचित्त है के मेरी बात मानिये।

करत टहल प्रभु बेगि ही प्रसन्न भये कीनी काम वासना सु पेखि उनमानिये॥ १२७॥

छप्पय ४३, कवित्त १२८] \* श्रीनामदेवजी \* विधवा को गर्भ ताकी बात चली ठौर ठौर दुष्ट शिरमौरिन की भई मन भाइयै। चलत चलत वामदेव जू के कान परी किर निराधार प्रभू आप अपनाइयै॥ भये जू प्रगट बाल नाम नामदेव धर्यौ कर्यौ मन भायो सब सम्पति लुटाइयै। दिन दिन बढ्यो कछू और रंग चढ्यो भक्तिभाव अंग मढ्यो कढ्यो रूप सुखदाइयै॥ १२८॥ (ख) श्रीनामदेवजीके बचपनके भक्तिमय चरित श्रीनामदेवजी बचपनमें खिलौनोंसे खेलते थे, आप भगवान्से प्रार्थना करने लगे कि प्रभो! आप दूध पीकर खेलमें ही भगवान्की सेवा-पूजा करते थे, वे किसी तृप्त हो जायँ। काष्ठ या पाषाणकी मूर्ति बना लेते और फिर उसे बड़े श्रीनामदेवजी भगवानुको दुध-भोग लगाते और प्रेमसे वस्त्र पहनाते, भोग लगाते, घण्टा बजाते तथा नेत्र यह देखते कि भगवान्ने दूध नहीं पिया है, इस प्रकार बन्द करके मनमें अच्छी तरह भगवानुका ध्यान करते। दो दिन बीत गये। स्वयं भी उन्होंने अन्न-जल आदि वे जैसे-जैसे इन कार्योंको करते थे, वैसे-वैसे वे अत्यन्त कुछ भी ग्रहण नहीं किया और इस बातको अपने मनमें ही छिपाकर रखा। माताजीको भी नहीं बताया और सुख पाते थे। प्रेमवश उनके नेत्रोंमें जल भर जाता। नामदेवजी अपने नाना वामदेवजीसे बार-बार कहते कि भूखे-प्यासे ही रातको सो गये, पर चिन्ताके कारण निद्रा भगवान्की सेवा मुझे दे दीजिये। सेवा मुझे बहुत प्यारी नहीं आयी। तीसरे दिनका सबेरा हुआ, फिर उसी प्रकार लगती है। इस प्रकार नामदेवजीने बार-बार कहा। कुछ सावधानीसे दुधको औटाया इलायची, मिश्री मिलायी समय बाद वामदेवजीने नामदेवसे कहा कि मैं एक और आज प्रभु अवश्य ही दूध पी लेंगे—इस भावसे गाँवको जाऊँगा और तीन दिनमें लौट आऊँगा, तबतक मनको मजबूत करके भगवान्के सामने दूध रखा और तुम भगवान्की सेवा करना और भगवान्को दुध पिलाना, कहा—प्रभो! (नानाजी दूध पिलानेको कह गये थे) स्वयं मत पी जाना। यदि अच्छी प्रकारसे तीन दिन सेवा आप दूधको पीजिये, तभी मैं प्रसन्न होऊँगा। इतनेपर भी करोगे तो तुम्हें ही सेवा सौंप दी जायगी। जब भगवान्ने दूध नहीं पिया, तब श्रीनामदेवजी बोले— श्रीनामदेवजीके हृदयमें सेवा प्राप्त करनेकी लालसा मैं बारम्बार आपसे दूधकी विनती करता हूँ, परंतु आप बढ़ी, वे नानाजीसे बार-बार पूछते कि अभी आप गये दूध नहीं पीते हैं। कल प्रात:काल नानाजी आ जायँगे नहीं ? एक दिन नानाजीके बाहर गाँव जानेका समय और वे हमपर रुष्ट होंगे, फिर कभी सेवा मुझे नहीं देंगे। आ गया, वे चले गये। नामदेवजीने अच्छी तरह इसलिये ऐसे जीनेसे तो मरना ही अच्छा है। ऐसा देखभालकर कड़ाहीमें दो सेर दूध डाला और मनमें कहकर छुरी निकाली और भगवान्को दिखाकर अपना निश्चय किया कि दूधको औटाकर अति उत्तम बनाऊँ, गला काटनेके लिये गलेपर छुरी चलाना ही चाहते थे जिससे प्रसन्न होकर प्रभु पी लें। श्रीनामदेवजीके हृदयमें कि भगवानुने हाथ पकड लिया और कहा कि अरे! ऐसा प्रेमकी बड़ी भारी उमंग थी, उन्हें चिन्ता भी थी कि मत करो, मैं अभी दूध पीता हूँ। यह कहकर भगवान् सेवामें कोई त्रुटि न हो जाय। दूध पीने लगे। श्रीनामदेवजीने देखा कि ये तो सब दूध बालक नामदेवजी दूध औटाकर उसे एक सुन्दर पी जायँगे, तब बोले कि थोड़ा-सा प्रसाद मेरे लिये भी कटोरेमें भरकर भगवान्के समीप ले आये। दूधमें रहने दीजियेगा: क्योंकि नानाजीके भोग लगानेपर मैं सदा इलायची और मिश्री मिलायी। दूध पिलानेकी आशासे दुध-प्रसाद पीता था। परदा कर दिया। कुछ देर प्रेमकी लम्बी श्वासें भरते रहे चौथे दिन वामदेवजी गाँवसे लौटकर आये और फिर परदा हटाकर देखा तो दूधभरा कटोरा ज्यों-का-नामदेवजीसे 'अच्छी प्रकार सेवा की या नहीं' यह त्योगिष्रीगंब्राग <del>इसंक्र इसके Sarve बोक्</del>षाक्तर्भक्षिड् इम्राक्षि विष्क्षात्रको स्थापि विष्क्षित्र क्रिया क्रिय क्रिय क्रिया क्रिया क्रिय क्रिया क्रिया क्रिया क्रिया क्रिया क्रिया क्रिया क्

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क सारा वर्णन किया। यह सुनकर वामदेवजीने कहा कि बालकके प्रेमहठसे प्रसन्न होकर भगवान्ने वामदेवजीके देखते-देखते दूध पिया और प्रसाद नामदेवको पिलाया। मेरे सामने फिर पिलाओ, तब हम जानें। तब श्रीनामदेवजीने उसी प्रकार दूध तैयार करके भगवान्के वामदेवजीने सोचा कि मैंने जीवनभर सेवा की, पर सामने रखा, पर भगवान्ने नहीं पिया, तब अड गये दर्शन नहीं हुए। आज बालकके प्रभावसे दर्शन हए। उसी प्रकार छुरी निकालकर गला काटनेको तैयार हो इस प्रसंगके द्वारा भगवान्ने यह दिखला दिया कि मैं गये कि कल पीकर आज नानाजीके सामने मुझे झुठा । भक्तके वशमें होकर उनके प्रेमके कारण अर्पित भोगको बनाना चाहते हो। आपको दुध पीना ही पड़ेगा। ग्रहण करता हूँ। श्रीप्रियादासजीने नामदेवजीके इस प्रेमभावका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है— खेलत खिलौना प्रीति रीति सब सेवा ही की पट पहिरावैं पुनि भोगको लगावहीं। घंटा लै बजावैं नीके ध्यान मन लावैं त्यों-त्यों अति सुख पावैं नैन नीर भिर आवहीं॥ बार-बार कहैं नामदेव वामदेव जू सों देवो मोहिं सेवा मांझ अति ही सुहावहीं। जाऊँ एकगाँव फिरि आऊँ दिन तीन मध्य दूधको पिवावौ मत पीवो मोहि भावहीं॥ १२९॥ कौन वह बेर जेहिं बेर दिन फेर होय फेर फेर कहैं वह बेर नहीं आइये। आई वह बेर लै कराहीं मांझ हेरि दूध डार्यो युग सेर मन नीके कै बनाइये॥ चोपनिके ढेर लागि निपट औसेर दृग आयो नीर घेरि जिनि गिरें घूंटि जाइये। माता कहै टेरि करी बड़ी तैं अबेर अब करो मित झेरि अजू चित दै औटाइये॥ १३०॥ चल्यो प्रभु पास लै कटोरा छिबरास तामें दूध सो सुबास मध्य मिसरी मिलाइयै। हिये में हुलास निज अज्ञताको त्रास ऐपै करैं जो पै दास मोहि महासुख दाइयै॥ देख्यो मृदुहांस कोटि चांदनी को भास कियो भावको प्रकास मित अति सरसाइयै। प्याइबेकी आस करि ओट कछु भर्यो स्वास देखिकै निरास कह्यो पीवोजू अघाइयै॥ १३१॥ ऐसे दिन बीते दोय राखी हिये बात गोय रह्यो निशि सोय ऐपै नींद नहीं आवहीं। भयो जू सबारो फिरि वैसे ही सुधार लियौ हियौ कियौ गाढ़ौ जाय धर्यो पियो भावहीं॥ बार बार पीवो कहं अब तुम पीवो नाहिं आवैं भोर नाना गरे छूरी दै दिखावहीं। गहि लीनो कर जिनि करें ऐसो पीवौं मैं तो पीवे कों लगेई नेकु राखो सदा पावहीं॥ १३२॥ आये वामदेव पाछै पूछैं नामदेव जू सों दूधको प्रसंग अति रंग भरि भाखियै। मोसौं न पिछानि दिनदोय हानि भई तब मानि डर प्रान तज्यो चाहौं अभिलािषयै॥ पीयौ सुख दीयो जब नेकु राखि लीयो मैं तो जीयो सुनि बातें कही प्यायो कौन साखियै। धर्यौ पै पीयैं अर्यौ प्यायौ सुख पायौ नाना यामें लै दिखायौ भक्तबस रस चाखियै॥ १३३॥ (ग) श्रीनामदेवजीकी भगवद्भक्ति और गोभक्ति एक बार मुसलमानोंके राजा सिकन्दर लोदीने | लिये दिनभर धंधा ही क्यों करते ? किसी प्रकार दिनभर श्रीनामदेवजीको बुलवाकर कहा कि आप साहबसे मिले | धंधा (सिलाई-छपाई) करनेसे जो भी कुछ मिल जाता हैं, उनका दर्शन करते रहते हैं—ऐसा मैंने सुना है तो है, उसे सन्तोंके साथ बाँटकर खाता हूँ। उन्हीं संतोंकी हमें भी साहबसे मिला दीजिये और कुछ विचित्र सेवाके प्रतापसे लोग मुझे भक्त कहते हैं और दूर-दूरतक चमत्कार दिखलाइये। श्रीनामदेवजीने कहा कि यदि मेरा नाम फैल गया है, तभी आपने भी हमें यहाँ अपने हममें कोई शक्ति या चमत्कार होता तो फिर खानेके दरबारमें बुलाया है। यह सुनकर बादशाहने कहा-आप छप्पय ४३, कवित्त १३५] \* श्रीनामदेवजी \* इस मरी हुई गायको जीवित कर दीजिये और अपने शयनका पलंग है, मैं उनका सेवक हूँ, अत: मुझे ही अपने घरको जाइये, नहीं तो कारागारमें रहना पडेगा; क्योंकि सिरपर रखकर ले जाना चाहिये। फिर भी बादशाहने कुछ तुम झुठे भगत बनकर लोगोंको ठगते हो। तब आपने रक्षक भेजे। आगे आपने विचारा कि यह मूल्यवान् वस्तु सहज स्वभावसे एक प्रार्थनाका पद गाकर गायको है, इससे अनेक संकट आ सकते हैं। भजनमें बाधा हो जीवित कर दिया और प्रभुकृपाका अनुभव करके सुखी सकती है। इस कारण मार्गमें श्रीयमुना नदीके अथाह हुए। यह देखकर बादशाह अति प्रसन्न हुआ और जलमें उस पलंगको डाल दिया। राजाको इसकी सूचना श्रीनामदेवजीके चरणोंमें पड गया। मिली तो वह चौंककर आश्चर्यमें पड़ गया। सिपाहियोंसे यह विचित्र चमत्कार देखकर बादशाहने कहा—उन्हें शीघ्र बुलाकर लाओ। श्रीनामदेवजी फिर आये और बोले कि अब क्यों बुलाया? तब बादशाहने श्रीनामदेवजीसे कहा कि आप कृपा करके कोई देश या कहा कि जो पलंग मैंने आपको दे दिया है, जरा उसे यहाँ गाँव ले लीजिये, जिससे मेरा भी कुछ नाम हो जाय। आपने उत्तर दिया कि हमें कुछ भी नहीं चाहिये। फिर लाकर कारीगरोंको दिखा दीजिये। उसी प्रकारका नया बादशाहने एक मणिजटित शय्या आपको दी। श्रीनामदेवजी दूसरा बनवाना है। श्रीनामदेवजी बादशाहको लेकर नदीपर उसे अपने सिरपर रखकर चलने लगे। तब उसने कहा कि आये और जलमें प्रवेश करके अनेक पलंग वैसे और दस-बीस आदमी मैं आपके साथ भेजता हूँ, वे इस पलंगको उससे भी मूल्यवान् निकाल-निकालकर डाल दिये और ले जायँगे और आपके निवासस्थानतक पहुँचा देंगे। आपने बादशाहसे बोले-आप अपना पलंग पहचान लो। यह बिलकुल मना कर दिया और कहा कि यह भगवान्के | देखकर उसकी सुधि-बुधि जाती रही। इस वृत्तान्तका वर्णन प्रियादासजी इन कवित्तोंमें करते हैं— नृप सो मलेच्छ बोलि कही मिले साहिब को दीजिये मिलाय करामात दिखराइयै। होय करामात तो पै काहे को कसब करें? भरें दिन एपें बांटि सन्तन सों खाइयै॥ ताहीके प्रताप आप इहां लौं बुलायो हमें दीजिये जिवाय गाय घर चलि जाइयै। दईलै जिवाय गाय सहज सुभाय ही में अति सुख पाय पांय पर्यो मन भाइयै॥ १३४॥ लेवो देश गांव जाते मेरो कछ नांव होय चाहिये न कछ दई सेज मनि मई है। धिर लई सीस देऊँ संग दस बीस नर नाहीं किर आये जल मांझ डारि दई है।। भूप सुनि चौंकि पर्यौ ल्यावो फेरि आये कहौ कही नेकु आनिके दिखावो कीजै नई है। जलतैं निकसि बहुभांति गहि डारी तट लीजिये पिछानि देखि सुधि बुधि गई है॥ १३५॥ (घ) नामदेवजीकी भक्तिका माहात्म्य कीर्तनका नित्य-नेम पूरा कर लूँ। मन्दिरपर गये तो श्रीनामदेवजीकी करामात देखकर बादशाह भयवश उनके चरणोंमें आ गिरा और प्रार्थना करने लगा कि द्वारपर बहुत भीड़-भाड़ दिखायी पड़ी। (जूतोंकी मुझे ईश्वरके दण्डसे बचा लीजिये। श्रीनामदेवजीने चोरीकी शंकासे शायद मन एकाग्र न हो, इसलिये कहा-यदि क्षमा चाहते हो तो एक बात करो कि पुन: कपड़ेमें लपेटकर) जूतोंको कमरमें बाँध लिया। हाथोंसे इस प्रकार कभी किसी साधुको दु:ख मत देना। इसे भीडुको हटाकर भीतर गये। दर्शन करके पदगान बादशाहने स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने कहा कि आरम्भ करना ही चाहते थे कि किसीने जूतोंको देख फिर अब कभी मुझे मत बुलाना। ऐसा कहकर लिया और रुष्ट होकर पाँच-सात चोटें लगायीं। फिर श्रीनामदेवजी वहाँसे चल दिये। उनकी इच्छा हुई कि धक्का देकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। परंतु पहले पण्ढरीनाथजीके मन्दिरमें चलूँ। प्रभुके नामगुण-श्रीनामदेवजीके मनमें पण्डोंके इस व्यवहारसे थोडा भी

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क क्रोध नहीं आया। गये। सम्पूर्ण मन्दिरको घुमाकर श्रीनामदेवकी ओर द्वार अब श्रीनामदेवजी मन्दिरके पिछवाडे जाकर बैठ कर दिया। यह देखकर जितने भी वेदपाठी पण्डा-पुजारी गये और भगवान्से कहने लगे कि प्रभो! आपने यह बहुत थे, सबके मुखकी कान्ति क्षीण हो गयी, सब फीके पड ही अच्छा किया जो मुझमें मार लगायी। मेरे अपराधका गये. जैसे पानी उतरनेसे मोती फीका हो जाता है। अब दण्ड तुरंत ही दे दिया। अब नित्य-नियमके अनुसार पद उनके हृदयमें श्रीनामदेवजीके प्रति बड़ी भारी श्रद्धा-भक्ति गाता हूँ, सुनो। यह कहकर नामदेवजी पद गाने लगे, उत्पन्न हो गयी। सबोंने सुख देनेवाले श्रीनामदेवजीके जिसे सुनते ही भगवान्का हृदय करुणासे भर गया। सुख देनेवाले चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की। उन्हें भक्तको विरह-व्यथित एवं दीन देखकर प्रभु व्याकुल हो । प्रसन्न देखकर सबको शान्ति प्राप्त हुई। इस घटनाका वर्णन प्रियादासजी इस प्रकार करते हैं— आनि पर्यो पांय प्रभु पास तें बचाय लीजै कीजै एक बात कभू साधु न दुखाइयै। लई यही मानि फेरि कीजिये न सुधि मेरी लीजिये गुननि गाय मन्दिर लौं जाइयै॥ देखि द्वार भीर पग दासी कटि बांधी धर कर सों उछीर किर चाहैं पद गाइयै। देखि लीनी वेई काह दीनी पांच सात चोट कीनी धका धकी रिस मनमें न आइयै॥ १३६॥ बैठे पिछवारे जाइ कीनी जू उचित यह लीनी जो लगाइ चोट मेरे मन भाइयै। कान दैकें सुनो अब चाहत न और कछु ठौर मोकों यहीं नित नेम पद गाइयै॥ सुनत ही आनि करि करुना विकल भये फेर्यो द्वार इतै गहि मन्दिर फिराइयै। जेतिक वे सोती मोती आब सी उतिर गई भई हिये प्रीति गहे पाँव सुखदाइयै॥ १३७॥ ( ङ) सर्वत्र भगवदृर्शन एक बार अकस्मात् ही सायंकालमें श्रीनामदेवजीके । भावना देखकर भगवान्ने प्रकट होकर दर्शन दिया और घरमें आग लग गयी। पर आप तो जल, थल और हँसकर बोले कि अत्यन्त कोमल मुझ श्यामसुन्दरको अग्निमें सर्वत्र अपने प्यारे प्रभुको ही देखते थे। अत: तिक्ष्ण, असह्य अग्निकी ज्वालामें भी देखते हो। अपने घरमें जो दूसरे सुन्दर पदार्थ घी, गुड़ आदि श्रीनामदेवजीने कहा—प्रभो! यह आपका भवन है, जलनेसे रह गये थे, उन्हें भी उठा-उठाकर जलती हुई आपके अतिरिक्त दूसरा कौन यहाँ आ सकता है! यह आगमें डालते हुए प्रार्थना करने लगे—हे नाथ! इन सब सुनकर प्रसन्न होकर प्रभु अन्तर्धान हो गये अग्नि वस्तुओंको भी स्वीकार कीजिये। भक्तकी ऐसी सुन्दर । शीतल हो गयी। इस घटनाके सम्बन्धमें श्रीप्रियादासजी निम्न कवित्तमें इस प्रकार कहते हैं— औचक ही घर माँझ सांझ ही अगिनि लागी बड़ो अनुरागी रहि गई सोऊ डारियै। कहैं अहो नाथ सब कीजिये जु अंगीकार हँसे सुकुमार हिर मोहीको निहारियै॥ तुम्हरो भवन और सकै कौन आइ इहाँ भये यों प्रसन्न छानि छाई आप सारियै। पूछे आनि लोग कौन छाई हो छवाइ दीजै लीजै जोई भावै तनमन प्राण वारियै॥ १३८॥ (च) श्रीनामदेवजीद्वारा तुलसीदल और रामनामकी महिमाका प्राकट्य पण्ढरपुरमें एक बहुत बड़ा धनी सेठ रहता था।। गये हैं। सेठने कहा—उन्हें बुलाकर लाओ। सेठके उसके यहाँ तुलादानका उत्सव हुआ। उसने अपनेको | नौकर, मुनीम बुलाने गये। दान ब्राह्मणोंको दो, हमें कुछ सोनेसे तौलकर नगरके सभी लोगोंको सोना दिया। सेठने | भी नहीं चाहिये, यह कहकर बड़भागी श्रीनामदेवजीने लोगोंसे पूछा कि कोई रह तो नहीं गया? तब लोगोंने | पहली और फिर दूसरी बार लोगोंको वापस लौटा दिया, कहा—श्रीनामदेवजी भगवानुके बड़े प्रेमी सन्त हैं, वे रह | जानेसे मना कर दिया। पर तीसरी बार अति आग्रह

छप्पय ४३, कवित्त १४१] \* श्रीनामदेवजी \* देखकर आप सेठके घरपर आये और सेठसे बोले—तुम पड़नेपर जाति-कुटुम्बवालोंके घरोंसे ला-लाकर बहुत-सा बडे भाग्यशाली हो। कहो-हमसे क्या कहते हो? धन रखा, परंतु वह सब तुलसीपत्रके बराबर नहीं हुआ। सेठजीने कहा-आप मेरे द्वारा दिये गये कुछ धनको श्रीरामनामलिखित तुलसीपत्रके महत्त्वको देखकर स्वीकार कीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो। नामदेवजीने घरके सभी स्त्री-पुरुषोंके समेत सेठजीको बड़ा शोक कहा—तुम्हारा कल्याण तो हो गया, अब मुझे कुछ तथा दु:ख हुआ। श्रीनामदेवजीने विचारा कि अभी इन्हें देनेकी आपकी प्रबल इच्छा है तो दीजिये। तुलसीपत्र एवं श्रीरामनामकी महिमाका पूरा अनुभव नहीं श्रीनामदेवजीका एकमात्र प्रिय सर्वस्व हुआ है, इसलिये वे बोले-आपलोगोंने जितने व्रत-दान श्रीगोविन्दचरणप्रिय श्रीतुलसी हैं, ऐसे श्रीतुलसीके पत्तेमें और तीर्थस्नान आदि पुण्यकर्म किये हों, उनका संकल्प आधा राम-नाम अर्थात् केवल 'रा' लिखकर उसे दिया करके जल डाल दीजिये। सभी लोगोंने पुण्योंका स्मरण और कहा कि इसके बराबर तौलकर दे दीजिये। सेठने कर-करके संकल्प पढकर जल डाला, पर इस उपायके करनेसे भी काम न चला। जिधर तुलसीपत्र रखा था, अभिमानपूर्वक कहा—महाराज! क्यों हँसी करते हो, इतने थोड़ेसे सोनेसे क्या होगा ? कृपा करके कुछ अधिक लीजिये। वह पलड़ा अपने पैर भूमिमें गाड़ रहा था। यह देखकर जिससे मुझ दाताकी हँसी न हो। नामदेवजीने कहा—इसके सभी लोग लिज्जत हो गये और प्रार्थना करने लगे कि बराबर सोना तौलकर देखो तो सही, फिर देखो कि क्या इतना ही ले लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा-हम इस विचित्र खेल होता है। यदि तुम इसके बराबर पूरा करके तुच्छ धनको लेकर क्या करें? हमारे पास तो रामनाम-सोना दे दोगे तो मैं तुमपर प्रसन्न होऊँगा। यह सुनकर सेठजी धन है, यह धन उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। इस एक तौलनेका काँटा ले आये और एक ओर तुलसीपत्र तथा धनसे कल्याण होना सम्भव नहीं है। नामकी और दूसरी ओर सोना चढ़ाया। उस समय बड़ा विचित्र आश्चर्य तुलसीकी महिमा देखकर आजसे इस धनको तुच्छ हुआ, सोनेका ढेला तुलसीपत्रसे बराबर नहीं हुआ। सेठजी समझो और रामनामरूपी धनसे प्रेम करो, गलेमें तुलसी उदास हो गये, जिससे पाँच-सात मन तौला जा सके—ऐसा धारण करो, रामनाम जपो। यह कहकर श्रीनामदेवजीने बड़ा तराजू मँगवाया। उसपर एक ओर तुलसीपत्र दूसरी सबके हृदयमें भक्तिका भाव भर दिया। सबकी बुद्धि ओर घरभरका सम्पूर्ण सोना-चाँदी आदि रखा। पूरा न प्रेमरसमें भीग गयी। इस भक्तिभावका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है— सुना और परचै जे आये न कवित्त मांझ बांझ भई माता क्यों न जौ न मित पागी है। हुतो एक साह तुलादान को उछाह भयो दयो पुर सबै रह्यौ नामदेव रागी है।। ल्यावो जु बुलाइ एक दोइ तौ फिराइ दिये तीसरे सों आये कहा कहो बड़भागी है। कीजिये जु कछु अङ्गीकार मेरो भलो होय भयो भलो तेरो दीजै जो पै आस लागी है॥ १३९॥ जाके तुलसी है ऐसे तुलसी के पत्र मांझ लिख्यो आधो राम नाम यासों तोल दीजियै। कहा परिहास करो ढरो है दयाल देखि होत कैसो ख्याल याकों पूरो करो रीझियै॥ ल्यायो एक कांटो लै चढ़ायो पात सोना संग भयो बड़ो रंग सम होत नाहिं छीजियै। लई सो तराजू तासों तुलै मन पांच सात जाति पांतिह को धन धर्यो पै न धीजियै॥ १४०॥ पर्यो शोच भारी दु:ख पावैं नर-नारी नामदेवजू विचारी एक और काम कीजिये। जिते व्रतदान औ स्नान किये तीरथमें करिये संकल्प यापै जल डारि दीजिये॥ करेऊ उपाइ पात पला भूमि गाड़े पांय रहे वे खिसाय कह्यौ इतनोई लीजिये। Hin<del>dhi</del>sman प्रमानिकार प्रम प्रमानिकार प्र

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क (छ) श्रीनामदेवजीकी एकादशी-व्रतके प्रति निष्ठा एक बार भगवान्के मनमें यह उमंग उठी कि बनाकर उस ब्राह्मणके मृतक-शरीरको गोदमें लेकर श्रीनामदेवजीकी एकादशीव्रत-निष्ठाका परिचय लिया उसपर बैठ गये कि हत्यारे शरीरको न रखकर जाय। यह विचारकर उन्होंने एक अत्यन्त दुर्बल प्रायश्चित्तस्वरूप उसे भस्म कर देना ही उत्तम है। उसी ब्राह्मणका रूप धारण किया। एकादशीव्रतके दिन समय भगवान् प्रकट हो गये और मुसकुराकर कहने लगे श्रीनामदेवजीके पास पहुँचकर बड़ी दीनता करके अन्न कि मैंने तो तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम्हारी एकादशीव्रतकी माँगने लगे कि मैं बहुत भूखा हूँ, कई दिनसे भोजन सच्ची निष्ठा मैंने देख ली, वह मेरे मनको बहुत ही प्राप्त नहीं हुआ है, कुछ अन्न दो। श्रीनामदेवजीने प्यारी लगी, मुझे बड़ा सुख हुआ। इस प्रकार दर्शन देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। लोगोंने जब यह लीला देखी कहा—आज तो एकादशी है, (दूध-फलाहारादि कर लीजिये) अन्न न दूँगा। प्रात:काल जितनी इच्छा हो तो श्रीनामदेवजीके चरणोंमें आकर गिरे और प्रीतिमय उतना अन्न लीजियेगा। दोनों अपनी-अपनी बातपर चरित्र देखकर सभी भक्त हो गये। बड़ा भारी हठ कर बैठे। इस बातका शोर चारों एक बार एकादशीकी रात्रिको जागरण-कीर्तन हो ओर फैल गया। लोग इकट्ठे हो गये और श्रीनामदेवजीको रहा था। भगवद्भक्तोंको बड़ी प्यास लगी। तब समझाने लगे कि इस भूखे ब्राह्मणपर क्रोध क्यों श्रीनामदेवजी जल लानेके लिये नदीपर गये, प्रेतभयसे करते हो, तुम्हीं मान जाओ, इसे कुछ अन्न दे दूसरोंको जानेका साहस न था। श्रीनामदेवजीको आया दो। श्रीनामदेवजी नहीं माने, दिनके चौथे पहरके देखकर महाविकरालरूपधारी प्रेतराज अपने साथियों-बीतनेपर उस भूखे ब्राह्मणदेवने इस प्रकार पैर फैला समेत आकर चारों ओर फेरी लगाने लगा। उसका दिये कि मानो मर गये। गाँवके लोग श्रीनामदेवजीके स्वरूप एवं उसकी माया देखकर श्रीनामदेवजी थोडा भावको नहीं जानते थे। अत: उन लोगोंने नामदेवजीके भी भयभीत न हुए, उसे अपने इष्टका ही स्वरूप माना सिर ब्राह्मण-हत्या लगा दी और उनका समाजसे और उन्होंने फेंटसे झाँझ निकालकर तत्काल एक पद गाया और प्रणाम किया। भगवान् तो बड़े ही दयालु बहिष्कार कर दिया। पर नामदेवजी बिलकुल चिन्तित हैं, प्रेतरूप न जाने कहाँ गया! शोभाधाम श्यामसुन्दर नहीं हुए। अपने नियमके अनुसार जागरण और कीर्तन करते | प्रकट हो गये, जिनका दर्शन करके श्रीनामदेवजी परम श्रीनामदेवजीने रात बितायी, प्रातःकाल चिता प्रसन्न हुए और जल लाकर भक्तोंको पिलाया। श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है— कियौ रूप ब्राह्मण को दुबरो निपट अंग भयो हिये रंग व्रत परिचैको लीजिये। भई एकादशी अन्न मांगत बहुत भूखो आजु तौ न दैहौं भोर चाहौ जितौ दीजिये॥ कर्यो हठभारी मिलि दोऊ ताको शोर पर्यो समझावै नामदेव याको कहा खीझिये। बीते जाम चिर मिर रहे यों पसारि पांव भाव पै न जानै दई हत्या नहीं छीजिये॥ १४२॥ रचिकै चिताकों विप्र गोद लैकै बैठे जाइ दियो मुसुकाइ मैं परीक्षा लीनी तेरी है। देखि सो सचाई सुखदाई मन भाई मेरे भये अन्तर्धान परे पाँय प्रीति हेरी है॥ जागरन मांझ हरि भक्तनको प्यास लगी गये लैन जल प्रेत आनि कीनी फेरी है।

फेंट ते निकासि ताल गायो पद ततकाल बड़ेई कृपाल रूप धर्यो छिबढेरी है।। १४३।।

\* श्रीजयदेवजी \* छप्पय ४४ ] श्रीजयदेवजी प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीतगोबिंद उजागर। कोक काब्य नव रस्स सरस सिंगार को सागर॥ अष्टपदी अभ्यास करैं तेहि बुद्धि बढ़ावैं। राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चै तहँ आवैं॥ संत सरोरुह षंड कों पद्मापति सुखजनक रिब। जयदेव कबी नृप चक्कवै खँडमँडलेस्वर आन कबि॥४४॥ अष्टपदियोंका जो कोई नित्य अध्ययन एवं गान करे, एक महाकवि श्रीजयदेवजी संस्कृतके कविराजोंके राजा चक्रवर्ती-सम्राट् थे। शेष दूसरे सभी कवि आपके उसकी बृद्धि पवित्र एवं प्रखर होकर दिन-प्रतिदिन सामने छोटे-बड़े राजाओंके समान थे। आपके द्वारा बढ़ेगी। जहाँ अष्टपदियोंका प्रेमपूर्वक गान होता है, वहाँ रचित 'गीतगोविन्द' महाकाव्य तीनों लोंकोंमें बहुत उन्हें सुननेके लिये भगवान् श्रीराधारमणजी अवश्य आते अधिक प्रसिद्ध एवं उत्तम सिद्ध हुआ। यह गीतगोविन्द हैं और सुनकर प्रसन्न होते हैं। श्रीपद्मावतीजीके पति श्रीजयदेवजी सन्तरूपी कमलवनको आनन्दित करनेवाले कोकशास्त्रका, साहित्यके नवरसोंका और विशेषकर उज्ज्वल एवं सरस शृंगाररसका सागर है। इसकी सूर्यके समान इस पृथ्वीपर अवतरित हुए॥ ४४॥ (क) जयदेवजी श्रीजगन्नाथजीके स्वरूप कविसम्राट् श्रीजयदेवजी बंगालप्रान्तके वीरभूमि भगवानुकी आज्ञा पाकर वह ब्राह्मण वनमें वहाँ जिलेके अन्तर्गत किन्दुबिल्व नामक ग्राममें उत्पन्न हुए थे। गया, जहाँ कविराजराज भक्त श्रीजयदेवजी बैठे थे आपका वैराग्य ऐसा प्रखर था कि एक वृक्षके नीचे एक और उनसे बोला-हे महाराज! आप मेरी इस कन्याको ही दिन निवास करते थे, दूसरे दिन दूसरे वृक्षके नीचे पत्नीरूपसे अपनी सेवामें लीजिये, जगन्नाथजीकी ऐसी आसक्तिरहित रहते थे। जीवन-निर्वाह करनेकी अनेक आज्ञा है। जयदेवजीने कहा—जगन्नाथजीकी बात जाने दीजिये, वे यदि हजारों स्त्रियाँ सेवामें रखें तो उनकी सामग्रियोंमेंसे आप केवल एक गूदरी और एक कमण्डल् ही अपने पास रखते थे और कुछ भी नहीं। सुदेव नामके शोभा है, परंतु हमको तो एक ही पहाड़के समान एक ब्राह्मणके कोई सन्तान न थी, उसने श्रीजगन्नाथजीसे भारवाली हो जायगी। अत: अब तुम कन्याके साथ प्रार्थना की कि यदि मेरे सन्तान होगी तो पहली सन्तान यहाँसे लौट जाओ। ये भगवान्की आज्ञाको भी नहीं आपको अर्पण कर दुँगा। कुछ समयके बाद उसके एक मान रहे हैं-यह देखकर ब्राह्मण खीज गया और कन्या हुई और जब द्वादश वर्षकी विवाहके योग्य हो गयी अपनी लड़कीसे बोला—मुझे तो जगन्नाथजीकी आज्ञा तो उस ब्राह्मणने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें उस कन्या शिरोधार्य है, मैं उसे कदापि टाल नहीं सकता हूँ। तुम (पद्मावती)-को लाकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं अपनी इनके ही समीप स्थिर होकर रहो। श्रीजयदेवजी अनेक प्रतिज्ञाके अनुसार आपको भेंट करनेके लिये यह कन्या प्रकारकी बातोंसे समझाकर हार गये, पर वह ब्राह्मण लाया हूँ। उसी समय श्रीजगन्नाथजीने आज्ञा दी कि नहीं माना और अप्रसन्न होकर चला गया। तब वे परमरसिक जयदेव नामके जो भक्त हैं, वे मेरे ही स्वरूप बड़े भारी सोचमें पड़ गये। फिर वे उस ब्राह्मणकी हैं, अत: इसे अभी ले जाकर उन्हें अर्पण कर दो और उनसे कन्यासे बोले-तुम अच्छी प्रकारसे मनमें विचार करो कि तुम्हारा अपना क्या कर्तव्य है? तुम्हारे योग्य कह देना कि जगन्नाथजीकी ऐसी ही आज्ञा हुई है।

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क गीतगोविन्द लिखते समय एक बार श्रीकिशोरी राधिकाजीके कैसा पति होना चाहिये? यह सुनकर उस कन्याने हाथ जोडकर कहा-मेरा वश तो कुछ भी नहीं मानका प्रसंग आया। उसमें भगवान् श्यामसुन्दरने अपनी चलता है। चाहे सुख हो या दु:ख, यह शरीर तो मैंने प्रियाके चरणकमलोंको अपने मस्तकका भूषण बताकर आपपर न्यौछावर कर दिया है। प्रार्थना की कि इसे मेरे मस्तकपर रख दीजिये। इस आशयका पद आपके हृदयमें आया, पर उसे मुखसे श्रीपद्मावतीजीका भावपूर्ण निश्चय सुनकर श्रीजयदेवजीने निर्वाहके लिये झोंपड़ी बनाकर छाया कर कहते तथा पद्मावतीद्वारा ग्रन्थमें लिखाते समय सोच-ली। अब छाया हो गयी तो उसमें भगवान् श्यामसुन्दरकी विचारमें पड़ गये कि इस गुप्त रहस्यको कैसे प्रकट एक मूर्ति सेवा करनेके लिये पधरा ली। पश्चात् मनमें किया जाय? आप स्नान करने चले गये, लौटकर आये तो देखा कि वह पद पोथीमें श्यामसुन्दरने लिख दिया आया कि परम प्रभुकी ललित लीलाएँ जिसमें वर्णित हों, ऐसा एक ग्रन्थ बनाऊँ। उनके इस निश्चयके अनुसार है। इससे जयदेवजी अति प्रसन्न हुए और संकोच अति सरस 'गीतगोविन्द' महाकाव्य प्रकट हुआ। त्यागकर माधुर्यरसकी लीलाओंका गान करने लगे। इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है— किन्दु बिल्लु ग्राम तामे भये कविराज राज भर्यो रसराज हिये मन मन चाखियै। दिन दिन प्रति रूख रूख तर जाइ रहें गहें एक गूदरी कमण्डल कों राखियै॥ कही देवै विप्र सुता जगन्नाथदेव जु कों भयो जब समै चल्यो दैन प्रभु भाखिये। रसिक जैदेव नाम मेरोई सरूप ताहि देवो ततकाल अहो मेरी कहि साखिये॥ १४४॥ चल्यो द्विज तहां जहां बैठे कविराजराज अहो महाराज मेरी सुता यह लीजियै। कीजिये विचार अधिकार विस्तार जाके ताहीको निहारि सुकुमारि यह दीजियै॥ जगन्नाथदेव जू की आज्ञा प्रतिपाल करौ ढरो मित धरो हिये ना तो दोष भीजियै। उनको हजार सोहैं हमको पहार एक ताते फिरि जावो तुम्हैं कहा कहि खीजियै॥ १४५॥ सुता सों कहत तुम बैठि रहौ याही ठौर आज्ञा सिरमौर मौपै नाहीं जाति टारी है। चल्यौ अनखाइ समझाइ हारे बातिन सों मन तुं समझ कहा कीजै सोच भारी है।। बोलि द्विज बालकी सों आपही विचार करो धरो हिये ज्ञान मोपै जाले न सँभारी है। बोली करजोरि मेरो जोर न चलत कछू चाहौ सोई होह यह वारि फेरि डारी है॥ १४६॥ जानी जब भई तिया कियो प्रभु जोर मोपै तो पै एक झोंपड़ी की छाया कर लीजिये। भई तब छाया श्याम सेवा पधारइ लई नई एक पोथी मैं बनाऊँ मन कीजिये॥ भयो जू प्रगट गीत सरस गोविन्दजू को मान में प्रसंग सीसमण्डन सो दीजिये। वही एक पद मुख निकसत सोच पर्यो धर्यो कैसे जात लाल लिख्यो मित रीझिये॥ १४७॥ (ख) गीतगोविन्दकी महिमा (8) जगन्नाथधाममें एक राजा पण्डित था। उसने भी बातको सुनकर विद्वान् ब्राह्मणोंने असली गीतगोविन्दको एक पुस्तक बनायी और उसका गीतगोविन्द नाम रखा। खोलकर दिखा दिया और मुसकराकर बोले कि यह तो उसमें भी श्रीकृष्णचरित्रोंका वर्णन था। राजाने ब्राह्मणोंको कोई नयी दूसरी पुस्तक है, गीतगोविन्द नहीं है। राजाका बुलाकर कहा कि यही गीतगोविन्द है। इसकी प्रतिलिपियाँ तथा राजभक्त विद्वानोंका आग्रह था कि यही गीतगोविन्द करके पढ़िये और देश-देशान्तरोंमें प्रचार करिये। इस है, इससे लोगोंकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। कौन-सी पुस्तक

छप्पय ४४, कवित्त १४९ ] * श्रीजय	ग्रदेवजी∗ १९३
	**************************************
असली है, यह निर्णय करनेके लिये दोनों पुस्तकें	जाऊँगा। जब राजा डूबने जा रहा था तो उस समय
श्रीजगन्नाथदेवजीके मन्दिरमें रखी गयीं। बादमें जब पट	प्रभुने दर्शन देकर आज्ञा दी कि तू समुद्रमें मत डूब।
खोले गये तो देखा गया कि जगन्नाथजीने राजाकी	श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्द-जैसा दूसरा ग्रन्थ नहीं
पुस्तकको दूर फेंक दिया है और श्रीजयदेवकविकृत	हो सकता है। इसलिये तुम्हारा शरीर त्याग करना वृथा
गीतगोविन्दको अपनी छातीसे लगा लिया है।	है। अब तुम ऐसा करो कि गीतगोविन्दके बारह सर्गोंमें
इस दृश्यको देखकर राजा अत्यन्त लिज्जत हुआ।	अपने बारह श्लोक मिलाकर लिख दो। इस प्रकार
अपनी पुस्तकका अपमान जानकर बड़े भारी शोकमें पड़	
गया और निश्चय किया कि अब मैं समुद्रमें डूबकर मर	
श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने करि	
नीलाचल धाम तामै पण्डित नृपति एक क	•
द्विजन बुलाइ कही यही है प्रसिद्ध करो लि	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
बोले मुसकाइ विप्र छिप्रसों दिखाइ दई न	
धरी दोऊ मन्दिर में जगन्नाथ देवजू के त	द्गीनी यह डारि वह हार लपटाइयै॥१४८॥
पर्यो सोच भारी नृप निपट खिसानों भयो ग	यो उठि सागर मैं बूड़ों वही बात है।
अति अपमान कियो, कियो मैं बखान सोई गोई	जात कैसे ? आंच लागी गात गात है॥
आज्ञा प्रभु दई मत बूड़ै तूं समुद्र मांझ दू	सरो न ग्रंथ ऐसो वृथा तनुपात है।
द्वादश सुश्लोक लिखि दीजै सर्ग द्वादश में ताहि	हं संग चलै जाकी ख्याति पात पात है।। १४९॥
(;	?)
एक बार एक मालीकी लड़की बैंगनके खेतमें बैंगन	रहस्य जानकर पुरीके राजाने सर्वत्र यह ढिंढोरा पिटवाया
तोड़ते समय गीतगोविन्दके पाँचवें सर्गकी <b>'धीरसमीरे</b>	कि कोई राजा हो या निर्धन प्रजा हो, सभीको उचित
<b>यमुनातीरे वसति वने वनमाली '</b> इस अष्टपदीको गा रही	है कि इस गीतगोविन्दका मधुर स्वरोंसे गान करें। उस
थी। उस मधुर गानको सुननेके लिये श्रीजगन्नाथजी जो उस	समय ऐसी भावना रखें कि प्रियाप्रियतम श्रीराधाश्यामसुन्दर
समय अपने श्रीअंगपर महीन एवं ढीली पोशाक धारण किये	समीप विराजकर श्रवण कर रहे हैं।
हुए थे, उसके पीछे-पीछे डोलने लगे। प्रेमवश बेसुध	गीतगोविन्दके महत्त्वको मुलतानके एक मुगलसरदारने
होकर लड़कीके पीछे-पीछे घूमनेसे काँटोंमें उलझकर	एक ब्राह्मणसे सुन लिया। उसने घोषित रीतिके अनुसार गान
श्रीजगन्नाथजीके वस्त्र फट गये। उस लड़कीके गान बन्द	करनेका निश्चय करके अष्टपदियोंको कण्ठस्थ कर लिया।
करनेपर आप मन्दिरमें पधारे। फटे वस्त्रोंको देखकर पुरीके	जब वह घोड़ेपर चढ़कर चलता था तो उस समय घोड़ेपर
राजाने आश्चर्यचिकत होकर पुजारियोंसे पूछा—अरे! यह	आगे भगवान् विराजे हैं ऐसा ध्यान कर लेता था, फिर गान
क्या हुआ, ठाकुरजीके वस्त्र कैसे फट गये? पुजारियोंने	करता था। एक दिन उसने घोड़ेपर प्रभुको आसन नहीं दिया
कहा कि हमें तो कुछ भी मालूम नहीं है। तब स्वयं	और गान करने लगा, फिर क्या देखा कि मार्गमें घोड़ेके
ठाकुरजीने ही सब बात बता दी। राजाने प्रभुकी रुचि	आगे-आगे मेरी ओर मुख किये हुए श्यामसुन्दर पीछेको
जानकर पालकी भेजी, उसमें बिठाकर उस लड़कीको	चलते हैं और गान सुन रहे हैं। घोड़ेसे उतरकर उसने प्रभुके
बुलाया। उसने आकर ठाकुरजीके सामने नृत्य करते हुए	चरणस्पर्श किये तथा नौकरी छोड़कर विरक्त वेश धारण
उसी अष्टपदीको गाकर सुनाया। प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।	कर लिया। गीतगोविन्दका अनन्त प्रताप है, इसकी
तबसे राजाने मन्दिरमें नित्य गीतगोविन्दगानकी व्यवस्था की । Hinduism Discord Server https://dsc.qq/dh	महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसपर स्वयं रीझकर arma  - MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं— सुता एक मालीकी जू बैंगनकी वारी मांझ तोरै वनमाली गावै कथा सर्ग पांच की। डोलैं जगन्नाथ पांछे काछें अंग मिहींझँगा आछे किह घूमैं सुधि आवै विरहांच की॥ फट्यो पट देखि नृप पूछी अहो भयो कहा? जानत न हम अब कहो बात सांच की। प्रभु ही जनाई मनभाई मेरे वही गाथा ल्याये वही बालकी कौं पालकी में नाच की॥ १५०॥ फेरी नृप डौंड़ी यह औंड़ी बात जानि महा कही राजा रंक पढ़ें नीकी ठौर जानिकें। अक्षर मधुर और मधुर स्वरिन ही सों गावै जब लाल प्यारी ढिग हिलैं आनिकें॥ सुनि यह रीति एक मुगल ने धारि लई पढ़ै चढ़ै घोड़े आगे श्यामरूप ठानि कैं। पोथी को प्रताप स्वर्ग गावत हैं देव बधू आप ही जू रीझि लिख्यो निजकर आनि कैं॥ १५१॥ (ग) श्रीजयदेवजीकी साधुता श्रीजयदेवजीको एक बार एक सेवकने अपने घर पैरोंके घाव ठीक करवाये, फिर श्रीजयदेवजीसे प्रार्थना की बुलाया। दक्षिणामें आग्रह करके कुछ मुहरें देने लगा, कि अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि कौन-सी सेवा करूँ ? आपके मना करनेपर भी उसने आपकी चद्दरमें मुहरें बाँध श्रीजयदेवजीने कहा कि राजन्! भगवान् और भक्तोंकी सेवा दीं। आप अपने आश्रमको चले, तब मार्गमें उन्हें ठग मिल कीजिये। ऐसी आज्ञा पाकर राजा साधू-सेवा करने लगा। गये। आपने उनसे पूछा कि तुमलोग कहाँ जाओगे ? ठगोंने इसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। एक दिन वे ही चारों उत्तर दिया—जहाँ तुम जा रहे हो, वहीं हम भी जायँगे। ठग सुन्दर कण्ठी-माला धारणकर राजाके यहाँ आये। उन्हें श्रीजयदेवजी समझ गये कि ये ठग हैं। आपने गाँठ खोलकर देखते ही श्रीजयदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा-सब मुहरें उन्हें दे दीं और कहा कि इनमेंसे जितनी मोहर देखो, आज तो मेरे बड़े गुरु भाई लोग आये हैं। ऐसा कहकर आप लेना चाहें ले लें। उन दुष्टोंने अपने मनमें सोच-उन्होंने सबका बड़ा ही स्वागत किया। समझकर कहा कि इन्होंने मेरे साथ चालाकी की है। अभी श्रीजयदेवजीने शीघ्र राजाको बुलवाकर कहा कि तो भयवश सब धन बिना माँगे ही हमें सौंप दिया है। परंतु इनकी प्रेमसे यथोचित सेवा करके संत-सेवाका फल प्राप्त इनके मनमें यही है कि यहाँसे तो चलने दो, आगे जब नगर कर लो। आज्ञा पाकर राजा उन्हें भीतर महलमें ले गया और आयेगा तो शीघ्र ही इन सबोंको पकड्वा दूँगा। अनेक सेवकोंको उनकी सेवामें लगा दिया, परंतु उन चारोंके यह सोचकर उन ठगोंने श्रीजयदेवजीके हाथ-पैर मन अपने पापसे व्याकुल थे, उन्हें भय था कि यह हमें काटकर बड़े गड्ढेमें डाल दिये और अपने-अपने घरोंको पहचान गया है, राजासे कहकर मरवा देगा। वे राजासे चले गये। थोड़े समय बाद ही वहाँ एक राजा (लक्ष्मणसेन) बार-बार विदा माँगते थे, पर राजा उन्हें जाने नहीं देता था। आया। उसने देखा कि श्रीजयदेवजी संकीर्तन कर रहे हैं तब श्रीजयदेवजीके कहनेपर राजाने अनेक प्रकारके वस्त्र-और गड्टेमें दिव्य प्रकाश छाया है तथा हाथ-पैर कटे होनेपर रत्न-आभूषण आदि देकर उन्हें विदा किया। सामानको भी वे परम प्रसन्न हैं। तब उन्हें गड्ढेसे बाहर निकालकर ढोनेके लिये साथमें कई मनुष्योंको भी भेजा। राजाने हाथ-पैर कटनेका प्रसंग पूछा। जयदेवजीने उत्तर राजाके सिपाही गठरियोंको लेकर उन ठग-सन्तोंको दिया कि मुझे इस प्रकारका ही शरीर प्राप्त हुआ है। पहुँचानेके लिये उनके साथ-साथ चले, कुछ दुर जानेपर श्रीजयदेवजीके दिव्य दर्शन एवं मधुर वचनामृतको राजपुरुषोंने उन सन्तोंसे पूछा कि भगवन्! राजाके यहाँ सुनकर राजाने मनमें विचारा कि मेरा बड़ा भारी सौभाग्य नित्य संत-महात्मा आते-जाते रहते हैं, परंतु स्वामीजीने है कि ऐसे सन्तके दर्शन प्राप्त हुए। राजा उन्हें पालकीमें जितना सत्कार आपका किया और राजासे करवाया है,

ऐसा किसी दूसरे साधु-सन्तका सेवा-सत्कार आजतक

बिठाकर घर ले आया। चिकित्साके द्वारा कटे हुए हाथ-

छप्पय ४४, कवित्त १५५] \* श्रीजयदेवजी \* सुनाया। हाथ-पैर पूरे हो जानेकी घटना सुनकर राजा नहीं हुआ। इसलिये हम प्रार्थना करते हैं कि आप बताइये कि स्वामीजीसे आपका क्या सम्बन्ध है ? उन्होंने कहा— अति प्रसन्न हुआ। उसी समय वह दौड़कर स्वामीजीके यह बात अत्यन्त गोपनीय है, मैं तुम्हें बताता हूँ, पर तुम समीप आया और चरणोंमें सिर रखकर पूछने लगा-किसीसे मत कहना। पहले तुम्हारे स्वामीजी और हम प्रभो! कृपा करके इन दोनों चरित्रोंका रहस्य खोलकर सब एक राजाके यहाँ नौकरी करते थे। वहाँ इन्होंने बडा कहिये कि क्यों धरती फटी और उसमें सब साधु कैसे समाये ? आपके ये हाथ-पैर कैसे निकल आये ? भारी अपराध किया। राजाने इन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी। परंतु हमने अपना प्रेमी जानकर इनको मारा नहीं। राजाने स्वामीजीसे जब अत्यन्त हठ किया। तब केवल हाथ-पैर काटकर राजाको दिखा दिया और कह उन्होंने सब बात खोलकर कह दी, फिर बोले कि देखो दिया कि हमने मार डाला। उसी उपकारके बदलेमें हमारा राजन्! यह सन्तोंका वेष अत्यन्त अमूल्य है, इसकी बड़ी सत्कार विशेषरूपसे कराया गया है। भारी महिमा है। सन्तोंके साथ कोई चाहे जैसी और चाहे जितनी बुराई करे तो भी वे उस बुराई करनेवालेका बुरा न उन कृतघ्नी साधु-वेषधारियोंके इस प्रकार झूठ बोलते ही पृथ्वी फट गयी और वे सब उसमें समा गये। सोचकर बदलेमें उसके साथ भलाई ही करते हैं। साधुताका इस दुर्घटनासे राजपुरुष लोग आश्चर्यचिकत हो गये। वे त्याग न करनेपर सन्त, महापुरुष एवं भगवान् श्रीश्यामसुन्दर सब-के-सब दौड़कर स्वामीजीके पास आये और जैसा मिल जाते हैं। राजाने श्रीजयदेवजीका नाम तो सुना था, पर हाल था, कह सुनाया। उसके सुनते ही श्रीजयदेवजी उसने कभी दर्शन नहीं किया था। आज जब उसने दु:खी होकर हाथ-पैर मलने लगे। उसी क्षण उनके श्रीजयदेवजीके नाम-गाँवको जाना तो प्रसन्न होकर कहने हाथ-पैर बड़े सुन्दर जैसे थे, वैसे ही फिर हो गये। लगा कि आप कृपाकर यहाँ विराजिये। आपके यहाँ राजपुरुषोंने दोनों आश्चर्यजनक घटनाओंको राजासे कह । विराजनेसे मेरे पूरे देशमें प्रेमभक्ति फैल गयी है। श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इन कवित्तोंमें किया है— पोथी की तो बात सब कही मैं सुहात हिये सुनो और बात जामें अति अधिकाइये। गाँठि में मुहर मग चलत में ठग मिले कहो कहाँ जात जहाँ तुम चलि जाइये॥ जानि लई बात खोलि द्रव्य पकराय दियो, लियो चाहो जोई-जोई सोइ मोकों ल्याइये। दुष्टिन समुझि कही कीनी इन विद्या अहो आवै जो नगर इन्हें बेगि पकराइये॥ १५२॥ एक कहै डारो मार भलो है विचार यही एक कहै मारौ मत धन हाथ आयो है। जो पै ले पिछान कहूँ, कीजिये निदान कहा? हाथ पाँव काटि बड़े गाढ़ पधरायो है॥ आयो तहाँ राजा एक देखिकै विवेक भयो छायो उजियारो औ प्रसन्न दरसायो है। बाहर निकासि मानो चन्द्रमा प्रकास राशि पूछ्यो इतिहास कह्यो ऐसो तनु पायो है॥ १५३॥ बड़ेई प्रभाववान सकै को बखान अहो मेरे कोऊ भूरि भाग दरशन कीजियै। पालकी बिठाय लिये किये सब ठूठ नीके जीके भाये भये कछु आज्ञा मोहिं दीजियै॥ करौ हिर साधु सेवा नाना पकवान मेवा आवैं जोई सन्त तिन्हें देखि देखि भीजियै। आये वेई ठग माला तिलक चिलक किये किलकि के कही बड़े बन्धु लिख लीजियै॥ १५४॥ नृपति बुलाय कही हिये हरि भाय भरि ढरे तेरे भाग अब सेवा फल लीजियै। गयो लै महल माँझ टहल लगाये लोग लागे होन भोग जिय शंका तन छीजियै॥ माँगें बार बार विदा राजा नहीं जान देत अति अकुलाये कही स्वामी धन दीजियै। दैकै बहु भाँति सो पठाये संग मानुष हूँ आवौ पहुँचाय तब तुम पर रीझियै॥ १५५॥

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* १९६ [ भक्तमाल-अङ्क पूछैं नृप नर कोऊ तुम्हरी न सरवर जिते आये साधु ऐसी सेवा नहीं भई है। स्वामीजू सौं नातौ कहा? कहौ हम खांइ हा हा राखियो दुराइ यह बात अति नई है॥ हुते एक ठौर नृप चाकरीमें तहा इन कियोई बिगार 'मारि डारो' आज्ञा दई है। राखे हम हितू जानि लै निदान हाथ-पाव वाही के इसान अब हम भिर लई है॥ १५६॥ फाटि गई भूमि सब ठग वे समाइ गये भये ये चिकत दौरि स्वामी जू पै आये हैं। कही जिती बात सुनि गात गात कांपि उठे हाथ-पांव मीड़ैं भये ज्योंके त्यों सुहाये हैं॥ अचरज दोऊ नृप पास जा प्रकाश किये जिये एक सुनि आये वाही ठौर धाये हैं। पूछें बार-बार सीस पांयनि पै धारि रहे कहिये उघारि कैसे मेरे मन भाये हैं॥ १५७॥ राजा अति आरि गही कही सब बात खोलि निपट अमोल यह सन्तन को वेस है। कैसो अपकार करै तऊ उपकार करै ढरें रीति आपनी ही सरस सुदेस है॥ साधुता न तजैं कभूं, जैसे दुष्ट दुष्टता न यही जानि लीजै मिले रिसक नरेस है। जान्यो जब नांव ठांव रहो इहा बलि जांव भयो मैं सनाथ प्रेम भक्ति भई देस है॥ १५८॥ (घ) जयदेवजीकी पत्नी पद्मावतीजीका पतिप्रेम श्रीजयदेवजीकी आज्ञासे राजा किन्दुबिल्व आश्रमसे। यह उचित नहीं है। जब रानीने बड़ा हठ किया, तब उनको पत्नी श्रीपद्मावतीजीको लिवा लाये। श्रीपद्मावतीजी राजाने उसकी बात मानकर वैसा ही किया, राजाके साथ स्वामीजीके बागमें चले जानेपर रानीकी सिखायी हुई रानीके निकट रनिवासमें रहने लगीं। एक दिन जब रानी पद्मावतीके निकट बैठी थी। उसी समय किसीने आकर एक दासीने आकर पद्मावतीजीको सुनाया कि स्वामीजी रानीको सूचित किया कि तुम्हारा भाई शरीर छोड़कर भगवान्के धामको चले गये। यह सुनते ही रानी और देवलोकवासी हुआ और तुम्हारी भावजोंमेंसे एक समीप बैठी हुई स्त्रियाँ दु:ख प्रकट करनेके ढोंगको रचकर धरतीपर लोटने और रोने लगीं। ध्यानद्वारा सती हो गयी। यह सुनकर रानीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि हमारी भाभी कितनी बड़ी सती साध्वी थीं। जानकर थोड़ी देर बाद भक्तवधू श्रीपद्मावतीजी बोलीं— श्रीपद्मावतीजीको इससे कुछ भी आश्चर्य न हुआ। अजी रानीजी! मेरे स्वामीजी तो बहुत अच्छी तरहसे उन्होंने रानीको समझाया कि पतिके स्वर्गवासी होनेपर हैं, तुम अचानक ही इस प्रकार क्यों धोखेमें आकर डर उनके मृत शरीरके साथ जल जाना उत्तम पातिव्रत-रही हो? सूचक है, परंतु अनन्य प्रीतिकी यह रीति है कि रानीकी मायाका श्रीपद्मावतीजीपर कुछ भी प्रभाव प्रियतमके प्राण छूट जायँ तो अपने प्राण भी उसी समय नहीं हुआ, भेद खुल गया, इससे रानीको बड़ी लज्जा हुई। जब कुछ दिन बीत गये तो फिर दूसरी रानीने उसी शरीरको छोडकर साथ चले जायँ। पद्मावतीजीने रानीकी भाभीकी प्रशंसा नहीं की. प्रकारकी तैयारी करके माया-जाल रचा। श्रीपद्मावतीजी इससे रानीने व्यंग्य करते हुए कहा कि आपने जैसी अपने मनमें समझ गयीं कि रानी परीक्षा लेना चाहती है पतिव्रता बतायी ऐसी तो केवल आप ही हो। समय तो परीक्षा दे ही देना चाहिये। इस बार जैसे ही किसी पाकर सब बात रानीने राजासे कहकर फिर यों कहा— दासीने आकर कहा अजी! स्वामीजी तो प्रभुको प्राप्त आप स्वामीजी (श्रीजयदेवजी)-को थोडी देरके लिये हो गये। वैसे ही झट पतिप्रेमसे परिपूर्ण होकर श्रीपद्मावतीजीने अपना शरीर छोड़ दिया। इनके मृतक शरीरको देखकर बागमें ले जाओ, तब मैं यह देखुँगी कि इनकी पतिमें कैसी प्रीति है। राजाने रानीका विचार सुनकर कहा कि रानीका मुख कान्तिहीन सफेद हो गया। राजा आये और छप्पय ४४, कवित्त १६२] \* श्रीजयदेवजी \* . . उन्होंने जब यह सब जाना तो कहने लगे कि इस स्त्रीके धूलमें मिला दिया। श्रीजयदेवजीने राजाको अनेक चक्करमें आकर मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी, अब इस प्रकारसे समझाया, परंतु उसके मनको कुछ भी शान्ति पापका यही प्रायश्चित्त है कि मैं भी जल मरूँ। नहीं मिली, तब आपने गीतगोविन्दकी एक अष्टपदीका गान आरम्भ किया। संगीत-विधिसे अलाप करते ही श्रीजयदेवजीको जब यह समाचार मिला तो वे दौडकर वहाँपर आये और मरी हुई पद्मावतीको तथा मरनेके लिये पद्मावतीजी जीवित हो गयीं। इतनेपर भी राजा लज्जाके तैयार राजाको देखा। राजाने कहा कि इनको मृत्यु मैंने मारे मरा जा रहा था और आत्महत्या कर लेना चाहता दी है। जयदेवजीने कहा—तो अब तुम्हारे जलनेसे ये था। वह बार-बार मनमें सोचता था कि ऐसे महापुरुषका जीवित नहीं हो सकती हैं। अत: तुम मत जलो। संग पाकर भी मेरे मनमें भक्तिका लेशमात्र भी नहीं राजाने कहा—महाराज! अब तो मुझे जल ही आया। श्रीजयदेवजीने समझा-बुझाकर राजाको शान्त जाना चाहिये; क्योंकि मैंने आपके सभी उपदेशोंको किया और किन्दुबिल्व ग्रामको चले आये। श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है— गये जा लिवाय ल्याय कविराज राजितया किया लै मिलाप आप रानी ढिग आई हैं। मर्ख्यो एकभाई वाकी भई यों भौजाई सती कोऊ अंग काटि कोऊ कृदि परी धाई हैं॥ सुनत ही नृप बधू निपट अचम्भो भयो इनकैं न भयो फिरि कही समुझाई हैं। प्रीति की न रीति यह बड़ी विपरीत अहो छुटै तन जबै प्रिया प्रान छूटि जाई हैं॥१५९॥ 'ऐसी एक आप' किह राजा सूं यूं बात कही लैके जाओ बाग स्वामी नेकु देखौं प्रीतिकों। निपट बिचारी बुरी देत मेरे गरे छुरी तिया हठ मानि करी वैसे ही प्रतीति कों॥ आनि कहैं आप पाये कही यही भांति आय बैठी ढिग तिया देखि लोटि गई रीति कों। बोलीं भक्तबध् अजू वे तो हैं बहुत नीके तुम कहा औचक ही पावित हो भीति कों॥ १६०॥ भई लाज भारी पुनि फेरि के सँवारी दिन बीति गये कोऊ जब तब वही कीनी है। जानि गई भक्त बध् चाहित परीछा लियो कही अजू पाये सुनि तजी देह भीनी है।। भयो मुखस्वेत रानी राजा आये जानी यह रची चिता जरौं मित भई मेरी हीनी है। भई सुधि आपकों सु आये बेगि दौरि इहाँ देखि मृत्यु प्राय नृप कह्यो मेरी दीनी है॥ १६१॥ बोल्यो नृप अजू मोहिं जरेई बनत अब सब उपदेश लैकै धूरिमें मिलायौ है। कह्यौ बहु भांति ऐपै आवित न शांति किहूँ गाई अष्टपदी सुर दियौ तन ज्यायौ है॥ लाजनिको मार्यो राजा चहै अपघात कियौ जियो नहिं जाति भक्ति लेसहं न आयौ है। करि समाधान निज ग्राम आये किंदुबिल्लु जैसो कछु सुन्यौ यह परचै लै गायौ है।। १६२।। (ङ) श्रीजयदेवजीकी गंगाजीके प्रति निष्ठा कहा-अब तुम स्नानार्थ इतनी दूर मत आया करो, श्रीजयदेवजीका जहाँ आश्रम था, वहाँसे गंगाजीकी केवल ध्यानमें ही स्नान कर लिया करो। धारामें जाकर धारा अठारह कोस दूर थी। परंतु आप नित्य गंगा-स्नान करनेका हठ मत करो। श्रीजयदेवजीने इस स्नान करते थे। जब आपका शरीर अत्यन्त वृद्ध हो आज्ञाको स्वीकार नहीं किया। तब फिर गंगाजीने गया, तब भी आप अपने गंगा-स्नानके नित्य-नियमको स्वप्नमें कहा-तुम नहीं मानते हो तो मैं ही तुम्हारे कभी नहीं छोडते थे। इनके बडे भारी प्रेमको देखकर 

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क कहा—मैं कैसे विश्वास करूँगा कि आप आ गयी हैं। एसा ही हुआ, खिले हुए कमलोंको देखकर श्रीजयदेवजीने गंगाजीने कहा—जब आश्रमके समीप जलाशयमें कमल वहीं स्नान करना आरम्भ कर दिया। आपने अन्तकालमें खिले देखना, तब विश्वास करना कि गंगाजी आ गयीं। । श्रीवृन्दावनधामको प्राप्त किया। श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— देवधुनी सोत हो अठारै कोस आश्रम तैं सदाई स्नान करैं धरें जोग्यताई कौं। भयो तन वृद्ध तऊँ छोड़ें नहीं नित्य नेम प्रेम देखि भारी निशि कही सुखदाई कौं॥ आवौ जिनि ध्यान करौ, करौ मत हठ ऐसो मानी नहीं आऊँ मैं ही जानौं कैसे आई कौं। फुले देखौ कंज तब कीजियो प्रतीति मेरी भई वही भांति सेवैं अबलौं सुहाई कौं॥ १६३॥ श्रीश्रीधर स्वामीजी तीनि कांड एकत्व सानि कोउ अग्य बखानत। कर्मठ ग्यानी ऐंचि अर्थ कौ अनरथ बानत।। परमहंस संहिता बिदित टीका बिसतार्खो। षट सास्त्रनि अबिरुद्ध बेद संमतिह बिचार्यो॥ परमानंद प्रसाद तें माधौ सुकर सुधार दियो। श्रीधर श्रीभागवत में परम धरम निरनय कियो॥४५॥ श्रीश्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतमें परमधर्मका निर्णय विश्वविख्यात 'परमहंससंहिता' की विद्वानोंमें प्रसिद्ध किया। श्रीभागवतधर्मके रहस्योंको ठीक प्रकारसे न टीका 'भावार्थ-दीपिका' की रचना स्वामी श्रीधराचार्यजीने जाननेके कारण कुछ विद्वानोंने तीनों (कर्म, ज्ञान, की। उसमें षट्शास्त्र एवं षड्-दर्शनोंके सर्वथा अनुकूल उपासना) काण्डोंको एकमें मिश्रित करके श्रीमद्भागवतकी तथा वेदोपनिषद्-सम्मत सिद्धान्तका समर्थन किया। व्याख्या की। कर्मकाण्डी और शुष्क ज्ञानी लोग खींचातानी श्रीधरस्वामीके गुरुदेव श्रीपरमानन्द-सरस्वतीपादजीकी एवं कठिन कल्पनाएँ करके अर्थका विपरीत अर्थ कृपासे भगवान् विन्द्माधवने श्रीधरकृतटीकाको अपने हस्तकमलसे सुधार दिया, हस्ताक्षरित करके सर्वोत्तम (अनर्थ) करते थे। जिज्ञास् भक्तगण शंकित हो जाते थे, वास्तविक तात्पर्य ओझल हो जाता था। ऐसी स्थितिमें सिद्ध किया॥ ४५॥ यहाँ श्रीश्रीधर स्वामीजीके विषयमें संक्षेपमें कुछ विवरण प्रस्तुत है— दक्षिण भारतके किसी नगरमें वहाँके राजा और ब्राह्मणका बालक है। उसके माता-पिता उसे बचपनमें ही छोड़कर परलोक चले गये थे। परीक्षाके लिये मन्त्रीमें मार्ग चलते समय भगवान्की कृपा तथा प्रभावके सम्बन्धमें बात हो रही थी। मन्त्री कह रहे थे-नृसिंहमन्त्रकी दीक्षा दिलाकर उसे आराधनामें लगा दिया 'भगवान्की उपासनासे उनकी कृपा प्राप्त करके मूर्ख भी गया। बालक भी सब प्रकारसे भगवान्के भजनमें लग विद्वान् हो जाता है।' संयोगकी बात या दयामय गया। उस अनाथ बालककी भक्ति देखकर नृसिंहरूपमें भगवानुकी इच्छा-राजाने देखा कि एक बालक फूटे दर्शन देकर भगवान्ने बालकको वरदान दिया—'तुम्हें पात्रमें तेल लिये जा रहा है। राजाने मन्त्रीसे पूछा—'क्या वेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र आदिका सम्पूर्ण ज्ञान होगा और यह बालक भी बुद्धिमान् हो सकता है?' मन्त्रीने बड़े मेरी भक्ति तुम्हारे हृदयमें निवास करेगी।' बालक और विश्वासके साथ कहा—'भगवान्की कृपासे अवश्य हो कोई नहीं श्रीधर स्वामी ही थे। सकता है।' बालक बुलाया गया। पता लगा कि वह अब इस बालककी विद्वत्ताका क्या पूछना! भगवानुकी

छप्पय ४५, कवित्त १६४]		
***************		
दी हुई विद्याकी लोकमें भला, कौन बराबरी कर सकता था!	माधव! माधव! कहकर उसे बुलाने लगे। भक्तवत्सल	
बड़े-बड़े विद्वान् इनका सम्मान करने लगे। राजा इन्हें आदर	भगवान्ने अपने भक्तको पुकार सुनकर विद्यार्थी माधवका	
देने लगे। धनका अभाव नहीं रहा। विवाह हुआ और पत्नी	रूप बनाया और आ गये सेवा करने। अब विद्यार्थी बने	
आयी। परंतु गृहस्थ होकर भी इनका चित्त घरमें लगता नहीं	भगवान् बिन्दुमाधव श्रीधर स्वामीकी समस्त परिचर्या करते।	
था। सब कुछ छोड़कर केवल प्रभुका भजन किया जाय,	इस प्रकार कई दिन बीत गये। श्रीस्वामीजी स्वस्थ हो गये,	
इसके लिये इनके प्राण तड़पते रहते थे। इनकी स्त्री गर्भवती	उधर विद्यार्थी माधवके पिता भी स्वस्थ हो गये थे, अत:	
हुई, प्रथम सन्तानको जन्म देकर वह परलोक चली गयी।	वह गुरुजीके पास लौट आया। उसे आया देख भगवान्	
स्त्रीकी मृत्युसे इन्हें दु:ख नहीं हुआ। इन्होंने इसे प्रभुकी	अन्तर्धान हो गये। आनेपर माधवने देखा कि चूल्हा जल	
कृपा ही माना। परंतु अब नवजात बालकके पालन-	रहा है और उसपर खिचड़ी बन रही है, पर कोई बनानेवाला	
पोषणमें ही व्यस्त रहना इन्हें अखरने लगा। एक दिन	न दिखायी दिया। श्रीस्वामीजी विश्राम कर रहे थे। बालक	
लीलामय प्रभुकी लीलासे इनके सामने घरकी छतसे एक	माधवने गुरुजीको अपने पिताके स्वस्थ हो जानेकी सूचना	
पक्षीका अण्डा भूमिपर गिर पड़ा और फूट गया। अण्डा	दी और पूछा—गुरुदेव! यह खिचड़ी कौन पका रहा है ?	
पक चुका था। उससे लाल-लाल बच्चा निकलकर अपना	श्रीस्वामीजी आश्चर्यचिकत हो बोले—बेटा माधव! अभी-	
मुख हिलाने लगा। इनको ऐसा लगा कि इस बच्चेको भूख	अभी तूने ही तो चूल्हा जलाकर खिचड़ी चढ़ायी है, फिर	
लगी है; यदि अभी कुछ न मिला तो यह मर जायगा। उसी	मुझसे क्यों पूछ रहा है ? माधवने कहा—गुरुजी! मैं तो	
समय एक छोटा कीड़ा उड़कर फूटे अण्डेके रसपर आ बैठा	आपकी आज्ञासे ही अपने अस्वस्थ पिताकी सेवामें गाँव	
और उसमें चिपक गया। पक्षीके बच्चेने उसे खा लिया।	गया था, फिर मैंने कैसे आपकी सेवा की ? अब श्रीश्रीधर	
भगवान्की यह लीला देखकर श्रीधर स्वामीके हृदयमें बल	स्वामीजीके समक्ष सारी बात स्पष्ट हो गयी कि मेरे 'माधव-	
आ गया। यह सोचकर कि सबका भरण-पोषण भगवान्	माधव' पुकारनेपर आकर मेरी सेवा करनेवाले स्वयं भक्तवत्सल	
स्वयं करते हैं। ये वहाँसे काशी चले आये। विश्वनाथपुरीमें	भगवान् बिन्दुमाधवजी ही थे। कुछ कालतक काशीवास	
आकर ये भगवान्के भजनमें तल्लीन हो गये।	करनेके बाद आप श्रीधाम श्रीवृन्दावन चले आये।	
श्रीश्रीधर स्वामीजी श्रीबिन्दुमाधवजीके बड़े ही भक्त	गीता, भागवत, विष्णुपुराणपर श्रीधर स्वामीकी टीकाएँ	
थे। काशीवास करते समय एक विद्यार्थी आपकी सेवामें	मिलती हैं। इनकी टीकाओंमें भक्ति तथा प्रेमका अखण्ड	
रहा करता था, संयोगसे उसका भी नाम माधव ही था। एक	प्रवाह है। एकमात्र श्रीधर स्वामी ही ऐसे हैं कि जिनकी	
बारकी बात है, आप बीमार पड़ गये, उस समय माधव	टीकाका सभी सम्प्रदायके लोग आदर करते हैं। कुछ	
आपको सेवामें था। उसी बीच माधवके पिताजी भी बीमार	लोगोंने इनकी भागवतकी टीकापर आपत्ति की, उस समय	
पड़ गये। परदु:खकातर श्रीस्वामीजीने स्वयं अस्वस्थ रहते	इन्होंने वेणीमाधवजीके मन्दिरमें भगवान्के पास ग्रन्थ रख	
हुए भी माधवको उसके पिताकी सेवामें आग्रहपूर्वक भेज	दिया। कहते हैं कि स्वयं भगवान्ने अनेक साधु–महात्माओंके	
दिया। माधव गुरुकी आज्ञा मानकर चला गया, इधर	सम्मुख वह ग्रन्थ उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्के	
स्वामीजी ज्वरकी अधिकतासे अचेतावस्थामें हो गये और	ऐसे लाड़ले भक्त ही पृथ्वीको पवित्र करते हैं।	
इस घटनाका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—		
पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते भागवत टीका करि आपसमें रीझिये।		
भयो जू विचार काशीपुरी अविनाशी मांझ स	भा अनुसार जोई सोई लिखि दीजिये॥	
ताको तो प्रमान भगवान बिन्दुमाधौजी हैं साधौ यही बात धरि मन्दिर में लीजिये।		
धरे सब जाय प्रभु सुकर बनाय दियो कियो सर्व ऊपर लै चल्यो मित धीजिये॥१६४॥		

भगवान् श्रीकृष्णके परम कृपापात्र श्रीबिल्वमंगलजी इस संसारमें प्रत्यक्ष मंगल-कल्याणके स्वरूप थे। विश्वका मंगल ही बिल्वमंगलके रूपमें प्रकट हुआ। आपने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' नामक सुन्दर काव्यका निर्माण किया, जिसकी उक्तियाँ सर्वथा नयी हैं, दूसरे कवियोंकी जूठी नहीं हैं। प्रेमाभिक्तसे प्रकट सहज एवं दिव्य उद्गार हैं। श्रीकृष्णकर्णामृत रिसकभक्तोंका जीवन-प्राण है, उन्होंने इसे कई लिड़ियोंके हारके समान अपने

हृदयमें धारण किया है। एक बार भगवान् श्यामसुन्दरने |
(क) भक्त बिल्वमंगल
दक्षिण प्रदेशमें कृष्णवेणा नदीके तटपर एक।
ग्राममें रामदास नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मण निवास
करते थे। उन्हींके पुत्रका नाम था बिल्वमंगल। पिताने
यथासाध्य पुत्रको धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। परंतु
पिता-माताके देहावसानके बाद संगदोषसे बिल्वमंगलके

अन्त:करणमें अनेक दोषोंने अपना घर कर लिया। यहाँतक कि वह चिन्तामणि नामक एक वेश्याके रूपपर आसक्त हो गया। आज बिल्वमंगलके पिताका श्राद्ध है, विद्वान

कुलपुरोहित बिल्वमंगलसे श्राद्धके मन्त्रोंकी आवृत्ति करवा रहे हैं, परंतु उसका मन 'चिन्तामणि' की चिन्तामें निमग्न है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किसी प्रकार श्राद्ध समाप्तकर जैसे-तैसे ब्राह्मणोंको झटपट भोजन करवाकर बिल्वमंगल चिन्तामणिके घर जानेको

प्रकट सहज एवं दिव्य पाकर व्रजगोपियोंके साथ हुई श्रीकृष्णकी लीलाओंका रिसकभक्तोंका जीवन- अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। उसके द्वारा सभी योंके हारके समान अपने भक्तोंका मंगल हुआ, अतः आप मंगलकी मूर्ति ही बार भगवान् श्यामसुन्दरने थे॥ ४६॥
(क) भक्त बिल्वमंगलका प्रारम्भिक जीवन
णा नदीके तटपर एक। 'भाई! आज तुम्हारे पिताका श्राद्ध है, वेश्याके घर नहीं

हाथ पकड़ाया और फिर उसे छुड़ा लिया। उस समय आपने उनसे कहा—हाथ छुड़ाकर चले जानेसे क्या

हुआ, मैं तुम्हें वीर पुरुष तब समझूँ, जब मेरे हृदयके

बन्धनसे छूटकर चले जाओ। आपने चिन्तामणिका संग

जाना चाहिये।' परंतु कौन सुनता था। उसका हृदय तो कभीका धर्म-कर्मसे शून्य हो चुका था। बिल्वमंगल दौड़कर नदीके किनारे पहुँचा। अकस्मात् प्रबल वेगसे तूफान आया और उसीके साथ मूसलधार वर्षा होने लगी, रात-दिन नदीमें रहनेवाले केवटोंने भी नावोंको किनारे बाँधकर वृक्षोंका आश्रय लिया, परंतु बिल्वमंगलपर

पार ले चलनेको कहा, उतराईका भी गहरा लालच दिया; परंतु मृत्युका सामना करनेको कौन तैयार होता। अन्तमें वह अधीर हो उठा और कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर तैरकर पार जानेके लिये सहसा नदीमें कूद पड़ा। संयोगवश नदीमें एक मुर्दा बहा जा रहा था।

इन सबका कोई असर नहीं पड़ा। उसने केवटोंसे उस

भोजन करवाकर बिल्वमंगल चिन्तामणिके घर जानेको बिल्वमंगल तो बेहोश था, उसने उसे काठ समझा और तैयार हुआ। सन्ध्या हो चुकी थी, लोगोंने समझाया कि उसीके सहारे नदीके उस पार चला गया। कुछ ही दूरपर छप्पय ४६, कवित्त १६८] \* श्रीबिल्वमंगलजी **\*** करके कहा—'तू ब्राह्मण है? अरे, आज तेरे पिताका चिन्तामणिका घर था। श्राद्धके कारण आज बिल्वमंगलके आनेकी बात नहीं थी, अतएव चिन्तामणि घरके सब श्राद्ध था, परंतु एक हाड्-मांसकी पुतलीपर तू इतना आसक्त हो गया कि अपने सारे धर्म-कर्मको तिलांजलि दरवाजोंको बन्द करके निश्चिन्त होकर सो चुकी थी। बिल्वमंगलने बाहरसे बहुत पुकारा; परंतु तूफानके कारण देकर इस डरावनी रातमें मुर्दे और साँपकी सहायतासे अन्दर कुछ भी नहीं सुनायी पड़ा। बिल्वमंगलने इधर-यहाँ दौड़ा आया! तू आज जिसे परम सुन्दर समझकर इस तरह पागल हो रहा है, उसका भी एक दिन तो वही उधर ताकते हुए बिजलीके प्रकाशमें दीवालपर एक रस्सा-सा लटकता देखा, तुरंत उसने उसे पकड़ा और परिणाम होनेवाला है, जो इस सड़े मुर्देका है! अरे! यदि उसीके सहारे दीवाल फॉॅंदकर अन्दर चला गया। तू इसी प्रकार उस मनमोहन श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये चिन्तामणिको जगाया। वह तो इसे देखते ही स्तम्भित-यों छटपटाकर दौडता तो अबतक उनको पाकर तू सी रह गयी! नंगा बदन, सारा शरीर पानीसे भीगा हुआ, अवश्य ही कृतार्थ हो चुका होता!' भयानक दुर्गन्ध आ रही है। उसने कहा—'तुम इस वेश्याकी वाणीने बड़ा काम किया! बाल्यकालकी भयावनी रातमें नदी पार करके बन्द घरमें कैसे आये?' स्मृति उसके मनमें जाग उठी। पिताजीकी भक्ति और उनकी बिल्वमंगलने काठपर चढ़कर नदी पार होने और रस्सेकी धर्मप्राणताके दृश्य उसकी आँखोंके सामने मूर्तिमान् होकर सहायतासे दीवालपर चढ़नेकी कथा सुनायी! वृष्टि थम नाचने लगे। बिल्वमंगलने चिन्तामणिके चरण पकड़ लिये चुकी थी। चिन्ता दीपक हाथमें लेकर बाहर आयी, और कहा—'माता! तूने आज मुझको दिव्यदृष्टि देकर देखती है तो दीवालपर भयानक काला नाग लटक रहा कृतार्थ कर दिया। 'मन-ही-मन चिन्तामणिको गुरु मानकर है और नदीके तीर सड़ा मुर्दा पड़ा है। बिल्वमंगलने भी प्रणाम किया और उसी क्षण बिल्वमंगलके जीवन-देखा और देखते ही काँप उठा। चिन्तामणिने भर्त्सना । नाटककी यवनिकाका परिवर्तन हो गया। इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने इस प्रकार किया है— कृष्ण वेना तीर एक द्विज मितधीर रहै है गयो अधीर संग चिन्तामिन पाइकै। तजी लोकलाज हिये वाहीको जु राज भयौ निशि दिन काज वहै रहै घर जाइकै॥ पिताको सराध नेकु रह्यौ मन साधि दिन शेषमें आवेश चल्यौ अति अकुलाइकै। नदी चढ़ी रही भारी पैये न अवारी नाव भाव भरयो हियौ जियौ जात न धिजाइकै॥ १६५॥ करत विचार वारिधार में न रहै प्राण ताते भली धार मित्र सनमुख जाइयै। परे कुदि नीर कछ सुधि न शरीर की है वही एक पीर कब दरसन पाइयै॥ पैयत न पार तन हारि भयो बूड़िबे कों मृतक निहारि मानी नाव मन भाइयै। लगेई किनारे जाय चले पग धाय चाय आये पट लागे निशि आधी सो विहाइये॥ १६६॥ अजगर घूमि झूमि भूमिको परस कियो लियोई सहारो चढ्यो छात पर जायकै। ऊपर किवार लगे पत्थो कूदि आंगन में गित्थो यों गरत रागी जागी सोर पायकै॥ दीपक बराइ जो पै देखै विल्वमंगल है बड़ोई अमंगल तूं कियो कहा आय कै। जल अन्हवाय सुखे पट पहराय हाय! कैसें किर आयो जल पार द्वार धाय कै॥ १६७॥ नौका पठवाई द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई मैं तो तबैं लई जानि कै। चलो देखों अहो, यह कहा धौं प्रलाप करै देख्यो विषधर महा खीजी अपमानि कै॥ जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो तैसो स्याम सों लगावो तौ पै जानिये सयानिकै। Hinब्रीपांक्षणन्त्रिः द्वारिपाक्षण्याः क्षिर्वार्थः विद्यार्थः विद्यार्यः विद्यार्थः विद्यार्थः विद्यार्थः विद्यार्थः विद्यार्थः विद्यार्थः विद्यार्थः वि

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क (ख) सात्त्विक परिवर्तन दोनोंने उस पूरी रात भगवानुका भजन किया और दो।' युवती उसी गृहस्थकी धर्मपत्नी थी, अतिथिवत्सल प्रात: होते ही चिन्तामणिने हरिद्वारकी और बिल्वमंगलने गृहस्थ अपनी पत्नीको बुलानेके लिये अन्दर गया। इधर बिल्वमंगलको अपनी अवस्थाका यथार्थ ज्ञान हुआ, सन्त श्रीसोमगिरिजी महाराजके आश्रमकी राह ली। हृदय शोकसे भर गया और न मालूम क्या सोचकर उसने वहाँ गुरुदेवसे दीक्षा लेकर एक वर्षतक आश्रममें ही रहकर भजन-पूजन किया, फिर वृन्दावन धामके लिये पासके बेलके पेडसे दो काँटे तोड लिये। इतनेमें ही गृहस्थकी धर्मपत्नी वहाँ आ पहुँची, बिल्वमंगलने उसे चल पड़ा। एक दिन अकस्मात् उसे रास्तेमें एक परम रूपवती युवती दीख पडी, पूर्व-संस्कार अभी सर्वथा फिर देखा और मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देकर नहीं मिटे थे। युवतीका सुन्दर रूप देखते ही नेत्र चंचल कहने लगा कि 'अभागी आँखें! यदि तुम न होतीं तो हो उठे। आज मेरा इतना पतन क्यों होता?' इतना कहकर

बिल्वमंगलको फिर मोह हुआ। वह युवतीके पीछे-पीछे उसके मकानतक गया। युवती अपने घरके

अन्दर चली गयी, बिल्वमंगल उदास होकर घरके दरवाजेपर बैठ गया। घरके मालिकने बाहर आकर देखा

कि एक मिलनमुख अतिथि ब्राह्मण बाहर बैठा है। उसने

कारण पुछा। बिल्वमंगलने कपट छोडकर सारी घटना

सुना दी और कहा कि 'मैं एक बार फिर उस युवतीको प्राण भरकर देख लेना चाहता हूँ, तुम उसे यहाँ बुलवा | पट-परिवर्तन हुआ।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें किया है—

खुलि गईं आँखें अभिलाषें रूप माध्री कों चाखें रसरंग औ उमंग अंग न्यारियै।

बीन लै बजाई गाई विपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुख पुंज जापै कोटि विषै वारियै॥ बीति गई राति प्रात चले आप आप कों जू हिये वही जाप दूग नीरि भरि डारियै। सोमगिरि नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारियै॥ १६९॥

रहे सो बरस रस सागर मगन भये नये नये चोजके श्लोक पढ़ि जीजिये।

चले वृन्दावन मन कहै कब देखौं जाय आय मग मांझ एक ठौर मित भीजिये॥

आयो वाको पति द्वार देखै भागवत ठाढ़े बड़े भागवत पूछी वधू सों जनाइयें। कही जु पधारौ पाँव धारो गृह पावनकों पांवन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें॥ चले भौन मांझ मन आरित मिटायबेकौं गायवेकौं जोई रीति सोई कें बताइयें।

पत्र्यो बड़ो सोर दुगकोर के न चाहैं काहू तहां सर तिया न्हाति देखि आंखें रीझिये। लगे वाके पाछे कांछे कांछकी न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तन छीजिये॥ १७०॥

नारिसे कहाौ है तू सिंगार करि सेवा कीजै लीजैयौं सुहाग जामें बेगि प्रभु पाइयें॥ १७१॥

चलीये सिंगार किर थार मैं प्रसाद लैके ऊँची चित्रसारी जहाँ बैठै अनुरागी हैं। झनक मनक जाइ जोरि कर ठाढी रही गही मित देखि-देखि नून वृत्ति भागी हैं॥

बिल्वमंगलने उन दोनों काँटोंको दोनों आँखोंमें भोंक

लिया! आँखोंसे रुधिरकी अजस्र धारा बहने लगी!

गृहस्थ और उसकी पत्नीको बड़ा दु:ख हुआ, परंतु वे

बेचारे निरुपाय थे। बिल्वमंगलका बचा-खुचा चित्त-मल भी आज सारा नष्ट हो गया और अब तो वह उस

अनाथके नाथको अतिशीघ्र पानेके लिये बडा ही

व्याकुल हो उठा। उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा

कही युगसूई ल्यावो, ल्याई, दई, लई, हाथ, फोरि डारी आंखें अहो बड़ी ये अभागी हैं। गई पति स्वास भरत न बोलि आवै बोली दुखपाय आय पांय परे रागी हैं॥१७२॥ छप्पय ४६, कवित्त १७३] \* श्रीबिल्वमंगलजी \* कियो अपराध हम साधु कौं दुखायौं अहो बड़े तुम साधु हम नाम साधु धर्यो है। रही अजू सेवा करों करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ मेरी मन भर्यो है।। चले सुख पाय दूगभूतसे छुटाइ दिये हिये ही की आंखिन सों अबै काम पत्यो है। बैठे बन मध्य जाइ भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ चलौ छाया दिन ढर्खा है॥ १७३॥ (ग) बिल्वमंगलपर भगवानुकी कृपा परम प्रियतम श्रीकृष्णके वियोगकी दारुण व्यथासे असमर्थता प्रकट करता हुआ बोला—'भैया! मैं अन्धा वृन्दावन कैसे जाऊँ?' बालकने कहा—'यह लो मेरी उसकी फूटी आँखोंने चौबीसों घण्टे आँसुओंकी झड़ी लगा दी। न भूखका पता है न प्यासका, न सोनेका ज्ञान लाठी, मैं इसे पकड़े-पकड़े तुम्हारे साथ चलता हूँ!' है और न जगनेका। 'कृष्ण-कृष्ण' की पुकारसे दिशाओंको बिल्वमंगलका मुख खिल उठा, लाठी पकड़कर भगवान् गुँजाता हुआ बिल्वमंगल जंगल-जंगल और गाँव-गाँवमें भक्तके आगे-आगे चलने लगे। थोडी-सी दुर जाकर घुम रहा है! ऐसी दशामें प्रेममय श्रीकृष्ण कैसे निश्चिन्त बालकने कहा, 'लो! वृन्दावन आ गया, अब मैं जाता रह सकते हैं। एक छोटे-से गोप-बालकके वेषमें हैं।' बिल्वमंगलने बालकका हाथ पकड लिया, हाथका भगवान् बिल्वमंगलके पास आकर अपनी मुनि-मनमोहिनी स्पर्श होते ही सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी, मधुर वाणीसे बोले,—'सूरदासजी! आपको बड़ी भूख सात्त्विक प्रकाशसे सारे द्वार प्रकाशित हो उठे, बिल्वमंगलने लगी होगी, मैं कुछ मिठाई लाया हूँ, जल भी लाया हूँ; दिव्य दृष्टि पायी और उसने देखा कि बालकके रूपमें आप इसे ग्रहण कीजिये।' बिल्वमंगलके प्राण तो साक्षात् मेरे श्यामसुन्दर ही हैं। बिल्वमंगलका शरीर रोमांचित हो गया, आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी अनवरत धारा बालकके उस मधुर स्वरसे ही मोहे जा चुके थे, उसके हाथका दुर्लभ प्रसाद पाकर तो उसका हृदय हर्षके बहने लगी भगवानुका हाथ उसने और भी जोरसे पकड़ लिया और कहा—'अब पहचान लिया है, बहुत दिनोंके हिलोरोंसे उछल उठा! बिल्वमंगलने बालकसे पूछा, 'भैया! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारा नाम क्या है? तुम बाद पकड़ सका हूँ। प्रभु! अब नहीं छोड़नेका!' भगवान्ने कहा, 'छोड़ते हो कि नहीं?' बिल्वमंगलने क्या करते हो?' बालकने कहा, 'मेरा घर पास ही है, मेरा कोई कहा, 'नहीं, कभी नहीं, त्रिकालमें भी नहीं।' खास नाम नहीं; जो मुझे जिस नामसे पुकारता है, भगवान्ने जोरसे झटका देकर हाथ छुड़ा लिया। में उसीसे बोलता हूँ, गौएँ चराया करता हूँ। मुझसे हाथ छुड़ाते ही बिल्वमंगलने कहा—जाते हो? पर जो प्रेम करते हैं, मैं भी उनसे प्रेम करता हूँ।' स्मरण रखो-बिल्वमंगल बालककी वीणा-विनिन्दित वाणी सुनकर हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि। विमुग्ध हो गया! बालक जाते-जाते कह गया कि 'मैं हिरदै तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥ रोज आकर आपको भोजन करवा जाया करूँगा।' भगवान्ने बिल्वमंगलकी आँखोंपर अपना कोमल बिल्वमंगलने कहा, 'बड़ी अच्छी बात है; तुम रोज करकमल फिराया, उसकी आँखें खुल गयीं। नेत्रोंसे आया करो।' प्रत्यक्ष भगवानुको देखकर—उनकी भुवनमोहिनी अनूप रूपराशिके दर्शन पाकर बिल्वमंगल अपने एक दिन बालकबने उन नटवरनागरने अपनी दीवाना बना देनेवाली वाणीमें कहा, 'बाबाजी! चुपचाप आपको सँभाल नहीं सका। वह चरणोंमें गिर पडा क्या सोचते हो? वृन्दावन चलोगे?' वृन्दावनका नाम और प्रेमाश्रुओंसे प्रभुके पावन चरणकमलोंको धोने सुनते ही बिल्वमंगलका हृदय हरा हो गया, परंतु अपनी लगा।

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क इस भावको प्रियादासजी इस प्रकार कहते हैं— चले लै गहाइ कर छाया घन तरुतर चाहत छुड़ायो हाथ छोड़ैं कैसे? नीको है। ज्यों ज्यों बल करें त्यों त्यों तजत न एऊ अरे लियोई छुटाइ गह्यो गाढ़ो रूपहीको है।। ऐसे ही करत वृन्दावन घन आइ लियो पियो चाहैं रस सब जग लाग्यो फीको है। भई उतकण्ठा भारी आये श्रीबिहारीलाल मुरली बजाइकै सुकियो भायो जीको है।। १७४॥ (घ) बिल्वमंगल और चिन्तामणिका सौभाग्य भगवान्ने उठाकर उसे अपनी छातीसे लगा लिया। । अपना दिव्य दर्शन और दूध-भातका प्रसाद देकर कृतार्थ भक्त और भगवानुके मधुर मिलनसे समस्त जगतुमें | किया। धन्य बिल्वमंगल! धन्य चिन्तामणि! बिल्वमंगलने मधुरता छा गयी। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। सन्त— | चिन्तामणिको अपना गुरु ही माना और अपने ग्रन्थ 'कृष्ण– भक्तोंके दल नाचने लगे। हरिनामकी पवित्र ध्वनिसे कर्णामृत' का मंगलाचरण 'चिन्तामणिर्जयति'से किया। बिल्वमंगल जीवनभर भक्तिका प्रचार करके

आकाश परिपूर्ण हो गया। भक्त और भगवान् दोनों धन्य हुए। वेश्या चिन्तामणि, गृहस्थ और उनकी पत्नी भी । भगवानुकी महिमा बढ़ाते रहे और अन्तमें गोलोकधाम वहाँ आ गयीं, भक्तके प्रभावसे भगवानने उन सबको | पधारे।

इस वृत्तान्तका प्रियादासजीने अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

खुलि गये नैंन ज्यौं कमल रिव उदै भये देखि रूपराशि बाढ़ी कोटि गुनी प्यास है।

लियौ कैसे जाय तुम्हें भायसों दियो जो प्रभु लैहों नाथ हाथसों जो देहें सनमानिकै। बैठे दोऊ जन कोऊ पावैं नहीं एक कन रीझे श्याम घन दीनो दूसरो हू आनिकै॥ १७६॥

श्रीविष्णुपुरीजी भगवत धर्म उतंग आन धर्म आन न देखा। पीतर पटतर बिगत निकष ज्यों कुंदन रेखा॥

कृष्न कृपा किह बेलि फलित सतसंग दिखायो।

कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह बिरचन में गायो॥ महा समुद्र भागवत तें भक्ति रतन राजी रची। कलि जीव जँजाली कारने बिष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥४७॥

मुरली मधुरसुर राख्यो मदभिर मनो ढिर आयो कानन मैं आनन मैं भास है॥ मानिकै प्रताप चिन्तामनि मन मांझ भई 'चिन्तामनि जैति' आदि बोले रसरास है। 'करनामृत' ग्रन्थ हृदय ग्रन्थिको विदारि डारै बांधै रस ग्रन्थ पन्थ युगल प्रकास है॥ १७५॥ चिन्तामिन सुनी वनमांझ रूप देख्यौ लाल है गई निहाल आई नेह नातो जानिकै। उठि बहु मान कियौ दियौ दुध भात दोना दै पठावैं नित हरि हितू जन मानिकै॥

श्रीविष्णुपुरीजीने कलियुगके प्रपंची जीवोंके कल्याणके । सोनेकी रेखाके सामने पीतलकी रेखा चमकती ही नहीं लिये बडे भारी खजानेको (भक्तिको) इकट्ठा किया। है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी बृद्धिकी कसौटीपर

उन्होंने वैष्णवधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ माना। अन्य अवैदिक विष्णवधर्मको कसकर सच्चा-खरा पाया और अन्य धर्मींकी ओर देखा भी नहीं। जिस प्रकार कसौटीपर धर्मींको तुच्छ देखा। आपने संतसंगको श्रीकृष्णकी

\* श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण \* छप्पय ४८ ] कृपारूपी लताका फल बताया। करोड़ों ग्रन्थोंका तात्पर्य । श्रीमद्भागवतरूपी महासमुद्रसे रत्नरूपी श्लोकोंको निकालकर (भक्ति) केवल तेरह विरचनों (अध्यायों)-में गाया। 'भक्तिरत्नावली' की रचना की॥ ४७॥ श्रीविष्णुपुरी ( स्वामी )-जीका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है— श्रीविष्णुप्रीजी परमहंसकोटिके संन्यासी थे और । विष्णुप्रीको यह कहला भेजा कि 'आप हमारे लिये एक तिरहुतके रहनेवाले थे। ये बड़े ही प्रेमी भक्त तथा विद्वान् सुन्दर रत्नावली भेजिये।' थे। इन्होंने भगवद्भक्तिरत्नावली, भागवतामृत, हरिभक्ति-श्रीचैतन्य महाप्रभु-जैसे महान् त्यागीके मुँहसे इस कल्पलता और वाक्यविवरण—ये चार ग्रन्थ लिखे थे। प्रकारके शब्द सुनकर उनके साथियोंको बड़ा आश्चर्य कहा जाता है कि महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव और हुआ, परंतु उन्हें डरके मारे कुछ कहनेका साहस नहीं विष्णुपुरीजी एक बार काशीमें मिले थे। जब चैतन्य हुआ। कुछ दिन बीत जानेपर विष्णुपुरीका वही शिष्य फिर जगन्नाथपुरी आया और महाप्रभुके हाथमें एक महाप्रभु वृन्दावनसे पुरीको जा रहे थे, उस समय दोनों पुस्तक देकर बोला कि 'गुरुदेवने आपके आदेशानुसार ही एक-दुसरेके प्रति बडे आकर्षित हुए। एक बार विष्णुपुरीके एक शिष्य काशीसे जगन्नाथपुरी गये और यह रत्नावली आपकी सेवामें भेजी है।' यह सुनकर वहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुसे मिलकर पूछा कि 'आपको महाप्रभुके साथियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने विष्णुपुरीके लिये कोई सन्देशा भेजना हो अथवा उनसे महाप्रभुके आशयको न समझ सकनेपर बडा पश्चात्ताप कोई प्रार्थना करनी हो तो कृपाकर बताइये।' तब किया। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने उस रत्नावलीको भगवान् श्रीचैतन्यदेवने सभी वैष्णवोंके सामने उस शिष्यके द्वारा । श्रीनीलाचलनाथके चरणोंमें रख दिया। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं— जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभुज वै चहुँ ओर भक्त भूप भीर अति छाई है। बोले विष्णुपुरी पुरीकाशी मध्य रहें जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है।। लिखी प्रभु चीठी 'आपु मणिगण माला' एक दीजिये पठाइ मोहिं लागती सुहाई है। जानि लई बात निधि भागवत रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है।। १७७॥ श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण नाम तिलोचन सिष्य सूर सिस सदूस उजागर। गिरा गंग उनहारि काब्य रचना प्रेमाकर॥ आचारज हरिदास अतुल बल आनँद दायन। तेहिं मारग बल्लभ्भ बिदित पृथु पधित परायन॥ नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़ मन बच क्रम हरि चरन रति। बिष्णुस्वामि सँप्रदाइ दृढ़ ग्यानदेव गंभीर मति॥४८॥ श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी सुदृढ़ विचार | थी। उनकी काव्यरचना (गीताकी टीका ज्ञानेश्वरी एवं एवं गम्भीर मितवाले श्रीज्ञानदेवजी हुए। श्रीनामदेवजी अभंगादि) तो मानो भगवत्प्रेमकी खानि और श्रीत्रिलोचनजी उनके शिष्य थे, जो सूर्य और आचार्यों तथा हरिभक्तोंका आपमें अपार बल था। आप चन्द्रके समान भक्तजगत्को प्रकाशित करनेवाले सभीको आनन्दित करनेवाले थे। श्रीपृथुजीकी अर्चन-ᢀᡰᡰin<del>glyisฅaᢒiss</del>or<del>d।SeryerIshtt</del>ps:<del>//dis</del>c.gp/dharrgets MAARE WUTH-HOXEEBY Aviveash/Sb:

२०६ * यो मद्भक्तः	स मे प्रियः * [ भक्तमाल-अङ्क
	***********
_	मन, वाणी और कर्मसे भगवान्के चरणोंमें प्रीति
प्रधान मानकर सुदृढ़ भावसे भगवत्सेवा करते थे। उन्हें	થી ॥ ૪૮ ॥
श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन उ	चरित इस प्रकार है—
श्रीज्ञान	ादेवजी
श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी अति ही	मुझसे संन्यास लिया है। स्त्रीने कहा कि प्रभो! आप
गम्भीर बुद्धिवाले श्रीज्ञानदेवजी नामक सन्त थे। इनके	इनका हाथ पकड़कर मेरे साथ कर दीजिये। इस प्रकार
पिताजीने गृहस्थाश्रमको त्यागकर संन्यास ले लिया	वह उन्हें घर ले आयी। इससे कुटुम्बी लोग अत्यन्त
और श्रीगुरुदेवसे झूठ बोल दिया कि मेरे स्त्री नहीं है,	रुष्ट हुए और इन्हें उन लोगोंने जाति-पॉॅंतिसे बाहर
मैं गुरु करना चाहता हूँ। बादमें स्त्रीने संन्यासी होनेकी	निकाल दिया। अब ये समाजसे अलग रहने लगे, परंतु
बात सुनी, तब वह आयी और उसने उनके गुरुसे सब	इनके मनमें किसी प्रकारका दु:ख नहीं था; क्योंकि
बात कही। तब गुरुजीने जाना कि इसने मिथ्या बोलकर	इन्होंने गुरुकी आज्ञासे पुन: गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया था।
श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीज्ञानदेवजीके माता-पि	पेताका परिचय देते हुए एक कवित्तमें कहते हैं—
विष्णु स्वामि सम्प्रदाई बड़ोई गम्भीर मति ज्ञा	नदेव नाम ताकी बात सुनि लीजियै।
पिता गृह त्यागि आइ ग्रहण संन्यास कियो दिव	यो बोलि झूठ तिया नहीं गुरु कीजियै॥
आई सुनि बधू पांछें कह्यो जान्यो मिथ्यावाद	भुजनि पकरि मेरे संग करि दीजियै।
• • •	न प्रंक्ति मैं ते डारि रहैं दूरि नहीं छीजियै॥ १७८॥
संन्यास–आश्रम त्यागकर घरमें रहनेपर उनके तीन	। वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। यह सुनकर ज्ञानदेवजीने
पुत्र हुए, जिनमें बड़े ज्ञानदेवजी थे। इनकी श्रीकृष्ण	समीपके एक भैंसेको देखकर कहा कि वेद तो यह भैंसा
भगवान्में सच्ची प्रीति थी। जब वे पढ़नेके लिये	भी बिना किसीके पढ़ाये पढ़ सकता है। ज्ञानदेवजीने
गुरुकुलमें गये तो उनको किसीने वेद नहीं पढ़ाया। सब	आज्ञा दी और भैंसा वेदपाठ करने लगा। ज्ञानदेवजीने
यही कहने लगे कि तुम संन्यासीके पुत्र हो, तुम्हारी जाति	यह भक्तिका प्रताप दिखाया, जिससे उन पण्डितोंमें भी
नष्ट हो गयी। फिर ब्राह्मण विद्वानोंकी एक सभा हुई।	भक्ति प्राप्त करनेकी रुचि जाग गयी। उनका अहंकार
उसमें ज्ञानदेवजीने प्रश्न किया कि आपके मनमें क्या	दूर हो गया। उन्होंने आकर श्रीज्ञानदेवजीके चरण पकड़
विचार है, मैं वेद पढ़ सकता हूँ या नहीं? पण्डितोंने	लिये। भक्तोंका-सा सरल-स्वभाव अपनाकर उन्होंने
कहा—तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है। अत: तुम्हें	दीनता ग्रहण की।
श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार	करते हैं—
भये पुत्र तीन तामें मुख्य बड़ो ज्ञानदेव जार्क	
वेद न पढ़ावे कोऊ कहैं सब जाति गई लई	•
बिनस्यो ब्रह्मत्व कही श्रुति अधिकार नाहिं बोल	
देखि भक्ति भाव चाव भयो आनि गहैं पांव	•
	ोचनजी
भक्तवर श्रीत्रिलोचनजी वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए। ये	। था। उनके मनमें एक यह बड़ी अभिलाषा थी कि कोई
बड़े ही वैष्णव भक्त थे, परंतु वे जैसी सेवा करना चाहते	·
थे, वैसी बन नहीं पाती थी; क्योंकि उनकी पत्नीके	_
अतिरिक्त घरमें और कोई सेवामें सहयोग देनेवाला न	

छप्पय ४८, कवित्त १८३]      * श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण *		
<u></u>		
स्वयं भगवान्ने ही नौकरका रूप धारण किया और	करता हूँ। उनमें किसीसे सहायता भी नहीं लेना चाहता हूँ।	
श्रीत्रिलोचनजीके द्वारपर आये। श्रीत्रिलोचनजीने घरसे निकलते	रही भक्तोंकी सेवा-टहल—उसे तो करते-करते मेरा सब	
ही उन्हें देखा और इनसे पूछा—अजी! आप कहाँसे पधारे	जीवन ही बीता है। 'अन्तर्यामी' मेरा नाम है। मैं तो अब	
हैं, मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि आपके घरमें माता-पिता	आपका दास हो गया। भक्त त्रिलोचनने कहा—इच्छानुसार	
आदि कोई भी नहीं हैं। नौकररूपधारी भगवान्ने कहा—	खूब भर-पेट खाओ, किसी प्रकारका संकोच मत करो।	
आप सच कहते हैं मेरे पिता-माता आदि कोई भी नहीं है।	इसके बाद भक्त त्रिलोचनजीने अपनी स्त्रीसे कहा—	
त्रिलोचनजीने कहा—क्या नौकरी करोगे, मुझे सन्तोंकी	तुम इस अन्तर्यामीको भोजन देते समय थोड़ी-सी भी	
सेवाके लिये एक नौकर चाहिये। तब आपने कहा कि यदि	खिन्नता मनमें मत लाना। नहीं तो यह कहीं भाग जायगा।	
मेरे स्वभावसे स्वामीका स्वभाव मिल जाय तो मैं सेवा-	फिर ऐसा नौकर कभी न मिलेगा। जो कुछ यह खाये, वही	
टहल कर सकता हूँ। श्रीत्रिलोचनजीने पूछा—आपके स्वभावसे	इसे खिलाओ। यह नित्यप्रति सन्तसेवा करेगा।	
औरोंका मेल क्यों नहीं हो पाता है ? तब आपने कहा कि	श्रीत्रिलोचनजीके यहाँ अनेक साधु-सन्त नित्यप्रति आते ही	
मैं पाँच सात सेर अन्न नित्य खाता हूँ, इसीसे लोग नाराज	रहते थे। सन्तसेवा अन्तर्यामीको हृदयसे प्रिय थी। सन्तोंकी	
हो जाते हैं और मुझे रख नहीं पाते हैं।	इच्छाके अनुसार रुचिपूर्वक अन्तर्यामी उनके पैर दबाते और	
उस नौकरने फिर कहा—चार वर्णोंकी रीतियोंका	सब प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते तेरह	
मुझे ज्ञान है। सभी कार्योंको मैं अच्छी तरहसे मन लगाकर		
भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज श्र	गित्रिलोचनजीकी सन्त-सेवाके प्रति इस अनन्य निष्ठाका	
वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—		
भये उभै शिष्य नामदेव श्रीतिलोचन जू सूर		
नामा की तो बात किह आये सुनो दूसरे की सुनेई बनत भक्त कथा रसरास है॥		
उपजे बनिक कुल सेवैं कुल अच्युत कों ऐपैं निहं बनै एक तिया रहै पास है।		
टहलू न कोई साधु मनही की जानि लेत ये ही अभिलाष सदा दासनिको दास है॥१८०॥		
आये प्रभु टहलुवा रूपधरि द्वारपर फटी एक कामरी पन्हैंया टूटी पांय है।		
निकसत पूछे अहो! कहां ते पधारे आप, बाप महतारी और देखिये न गाय है॥		
बाप महतारी मेरे कोऊ नाहिं सांची कहों, गहों मैं टहल जो पै मिलत सुभाय हैं।		
अनमिल बात कौन? दीजियै जनाय बहू, पाऊँ पांच सात सेर उठत रिसाय हैं॥१८१॥		
चारि हू बरन की जु रीति सब मेरे हाथ साथ हू न चाहौं करौं नीके मन लाइ कै।		
भक्तनकी सेवा सो तो करत जनम गयो नयौ कछु नाहिं डारे बरस बिताइ कै॥		
अंत्रजामी नाम मेरो चेरो भयो तेरो हौं तो बोल्यो भक्त भावै खावो निशंक अघाइ कै।		
कामरी पन्हैयां सब नई करि दई और मीड़ि कै न्हवायो तन मैल कौं छुटाइ कै॥ १८२॥		
बोल्यो घर दासी सों तू रहै याकी दासी होइ देखियो उदासी देत ऐसो नहीं पावनौ।		
खाय सो खवावो सुखपावो नित नित कियै जियै जग माहिं जौलौं मिलि गुन गावनौ॥		
आवत अनेक साधु भावत टहल हिये लिये चाव दाबैं पांव सबनि लड़ावनौ।		
ऐसे ही करत मास तेरह बितीत भये गये	उठि आपु नेकु बात कौ चलावनौ॥१८३॥	
	क्यों हो गयी हो ? भक्तजीकी स्त्रीने उत्तर दिया कि क्या	
गयी, तब उसने पूछा कि तुम इतनी कमजोर एवं उदास	कहूँ ? मेरे पतिदेव कहींसे एक नौकर लिवाकर लाये हैं,	

२०८	* यो मद्भक्तः	स मे प्रियः *	[ भक्तमाल-अङ्क
************		\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$\$	*******************
वह ऐसा खोटा है कि बहुत-सा भे			गे। तब आकाशवाणी हुई कि तुम
उसका पेट नहीं भरता है। इसलिये प	_		र जल पियो। सन्तोंके प्रति जो
पीसना पड़ता है, उसीसे मेरा शरीर अ	ाति दुर्बल हो गया	-	वह मुझे अति प्रिय लगी; इसीसे
है। देखो, बहन! मैंने जो यह बात तु		तुम्हारा सेवक बनकर	सन्तसेवा की। मैं तुम्हारे अधीन
तुम किसी दूसरेसे मत कहना। इसे	अपने मनमें ही	तुम्हारा दास हूँ और स	गदा तुम्हारे घरमें ही लीन रहता
रखना। यदि कहीं उसने सुन लिया	तो सबेरे ही चला	हूँ। यदि तुम कहो तो	पहलेकी तरह मैं तुम्हारे यहाँ
जायगा। वे तो अन्तर्यामी थे, उन्होंने सु	न लिया और तुरंत	आकर रहूँ और सदा	सेवा करूँ।
उठकर चले गये।		आकाशवाणी सुन	कर श्रीत्रिलोचनजीने जब रहस्य
अन्तर्यामीके चले जानेके बाद	तीन दिन बीत	जाना तो उन्हें और आ	धक कष्ट हुआ, मैंने भगवान्को
जानेपर भी श्रीत्रिलोचनजीने अन्न-ज	ल नहीं लिया। वे	अपना दास करके मान	। प्रभु मेरे घरमें आये, इतने दिन
दु:खी होकर स्त्रीसे कहने लगे—हाय	! अब ऐसा चतुर	रहे, पर मैं ऐसा मूढ़	था कि उनको नहीं जान सका।
सेवक मुझे कहाँ मिलेगा ? तू तो बड़ी	अभागिनी है, ऐसी	अब वे किसी प्रकार अ	। जायँ तो मैं दौड़कर उनके पैरोंमें
बात क्यों कही ? वह सन्त-सेवाका ब	ड़ा प्रेमी था। किस	लिपट जाऊँ। इस प्र	कार त्रिलोचनजी अन्तर्यामीके
उपायसे अब उसे लाऊँ ? जब श्रीत्रिलं	चिनजी इस प्रकार	ध्यानमें सदा मग्न रहने	। लगे।
श्रीप्रियादासजीने इस वृत्तान्तका	वर्णन निम्न कवि	तोंमें किया है—	
एक दिन गई ही परोसिनवे	<sub>ह</sub> भक्तबधू पूछि	लई बात अहो काहे	को मलीन है।
बोली मुसुकाय वे टहलुवा वि	लवाय ल्याये क्य	ोंहू न अघाय खोट र्प	सि तनछीन है॥
काहू सौं न कहो यह गही मन मांझ एरी तेरी सौं सुनैगो जोपै जात रहे भीन है।			
सुनि लई यही नेकु गये उठि हुती टेक दुखहूं अनेक जैसे जल बिन मीन है॥१८४॥			
बीते दिन तीन अन्नजल करि हीन भये ऐसो सो प्रवीन अहो फेरि कहाँ पाइये।			
बड़ी तू अभागी बात काहे को कहन लागी रागी साधु सेवा मैं जु कैसे करि ल्याइये॥			
भई नभबानी तुम खावो पीवो पानी यह मैं ही मित ठानी मोकौं प्रीति रीति भाइये।			
मैं तौ हौं अधीन तेरे घर ही में रहौं लीन जो पै कहौ सदा सेवा करिबे को आइये॥ १८५॥			
कीने हरिदास मैं तो दास हू न भयौं नेकु बड़ो उपहास मुख जग में दिखाइयै।			
कहैं जन भक्त कहा भक्ति हम करी कहौ, अहो अज्ञताई रीति मन में न आइयै॥			
उनकी तो बात बनि आवै सब उनही सों गुन ही कौं लेत मेरे औगुन छिपाइयै।			
आये घर मांझ तऊ मूढ़ मैं न	ा जानि सक्यों अ	ावैं अब क्यों हूं धाय	पांय लपटाइयै॥ १८६॥
	श्रीमद्वल्ल	भाचार्यजी	
लगभग पाँच सौ साल पहलेकी ब	ात है, संवत् १५३५	पड़े। रास्तेमें चम्पारण्य	। नामक वनमें इल्लम्माने पुत्र-
वि० में दक्षिण भारतसे एक तैलंग व	ब्राह्मण लक्ष्मणभट्ट	रत्नको जन्म दिया। वैः	शाख कृष्ण एकादशी थी, माताने
तीर्थयात्राके लिये उत्तर भारतका भ्रमण	कर रहे थे। वैशाख	महानदीके निर्जन तटप	र नवजात बालकको छोड़ दिया।
मास था, वे उस समय अपनी पत्नी इल	लम्मागारुके सहित	पर माताकी ममताने क	रवट ली। लक्ष्मण और इल्लम्मा
काशीमें थे। अचानक सुना गया कि	काशीपर यवनोंका	बालकको लेकर काशी	लौट आये, हनुमानघाटपर रहने
आक्रमण होनेवाला है; अत: वे दि	क्षणकी ओर चल	लगे। बालक अद्भुत प्रवि	तभा और सौन्दर्यसे सम्पन्न होनेके

छप्पय ४८, कवित्त १८७] * श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण * २०९		
	*****************	
कारण सबका प्रियपात्र था। बाल्यावस्थामें लोगोंने उसे	धीरे-धीरे उनकी कीर्ति फैलने लगी, लोग उनकी	
'बालसरस्वती वाक्पति' कहना आरम्भ किया। विष्णुचित्,	भगवद्भक्तिको सराहना करने लगे। श्रीवल्लभाचार्यके चरित्र-	
तिरुम्मल और माधव यतीन्द्रकी शिक्षासे बाल्यावस्थामें	विकासपर विष्णुस्वामी-सम्प्रदायके भक्ति-सिद्धान्तोंका	
ही वल्लभ समस्त वैष्णव-शास्त्रोंमें पारंगत हो गये, उनमें	अधिक मात्रामें प्रभाव पड़ा था। उन्होंने पुष्टिमार्गकी संस्थापना	
भगवद्धक्तिका उदय होने लगा; तुलसीमाला, एकादशी,	की तथा प्रेमलक्षणा भक्तिपर विशेष जोर दिया। पुष्टि	
विष्णुव्रत और भगवदाराधनमें उनका समय बीतने लगा;	भगवदनुग्रह या कृपाका प्रतीक है। उन्होंने वात्सल्यरससे	
तेरह सालकी ही अवस्थामें वे वेद, वेदांग, पुराण, धर्मशास्त्र	ओतप्रोत भक्ति-पद्धतिकी सीख दी। भगवान्के यश-लीला-	
आदिमें पूर्ण निष्णात हो गये।	गानको वे अपने पुष्टिमार्गका श्रेय मानते थे।	
श्रीप्रियादासजी महाराज इस पुष्टिमार्गका वर्णन	अपने एक कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—	
हिये में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे उ	और जीवनि की जीवनि को दीजिये।	
सोई लै प्रकास घर-घर में विलास कियो अवि	ते ही हुलास फल नैननि को लीजिये॥	
चातुरी अवधि नेकु आतुरी न होत किहूँ चहूँ	दिसि नाना राग भोग सुख कीजिये।	
बल्लभजू नाम लियो पृथु अभिराम रीति गो	कुल में धाम जानि सुन मन रीझिये॥ १८७॥	
श्रीवल्लभके जीवनका अधिकांश समय व्रजमें	चिन्तित एवं उदास देखकर आचार्यने कहा कि वहीं	
बीता, वे अड़ैलसे व्रज आये। अड़ैलसे व्रज आते समय	जाकर देखिये। सन्तने आकर देखा तो छोंकरके पेड़पर	
उन्होंने गऊघाटपर महाकवि सूरदासको दीक्षित किया,	अनेकों बटुवे लटके हैं। उनका होश-हवास उड़ गया,	
दो या तीन दिनों बाद उसी यात्रामें विश्रामघाटपर	फिर आचार्यके पास आकर बोले—प्रभो! वहाँ तो अनेक	
कृष्णदास अधिकारीको पुष्टिमार्गमें सम्मिलितकर ब्रह्म-	बटुवे हैं। इन्होंने कहा—आप अपना बटुवा पहचान लीजिये,	
सम्बन्ध दिया। कुम्भनदास भी उनके शिष्य हुए।	आप तो नित्य सेवा-पूजा करते हैं, फिर भी अपने ठाकुरजीको	
गोवर्धनमें एक मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीनाथजीकी	नहीं पहचान सकते हैं।	
मूर्ति प्रतिष्ठित की। उनके चौरासी शिष्योंमें प्रमुख सूर,	इस घटनासे वे सन्त समझ गये कि यह सब	
कुम्भन, कृष्णदास और परमानन्द श्रीनाथजीकी विधिवत्	श्रीवल्लभाचार्यजीका ही प्रभाव है, उनकी आँखें खुल	
सेवा और कीर्तन आदि करने लगे। उन्होंने वैष्णवोंको	गयीं। अपने ठाकुरको पहचाननेकी अभिलाषा करने	
गुरुतत्त्व सुनाया, लीला-भेद बताया।	लगे। उन्होंने आचार्यसे प्रार्थना की कि मुझे वह उपाय	
एक बार एक सीधे–साधे सन्त दर्शन करनेके लिये	बता दीजिये, जिससे मैं अपने सेव्य प्रभुके रूपको प्राप्त	
गोकुलको गये। वहाँ जाकर गोष्ठमें गायोंके झुण्डका,	कर सकूँ। आचार्यने कहा कि हृदयसे प्रेम करो, भाव-	
गोपालका तथा मन्दिरोंमें बालकृष्णकी सेवा-पूजा और	भक्तिपूर्वक सेवा किया करो; क्योंकि यह प्रेममार्ग	
उत्सवोंका दर्शन करके प्रेममें मग्न हो गये। फिर उन	अतिविचित्र और सुन्दर है। आप वहीं छोंकरके वृक्षपर	
सन्तने एक छोंकरके पेड़पर अपना ठाकुर-बटुवा लटका	जाकर देखो। इस बार आकर उन्होंने देखा तो केवल	
दिया और जाकर श्रीवल्लभाचार्यजीके दर्शन किये जिससे	अपने ही ठाकुरजी दिखायी पड़े, तब तो ये अति	
उन्हें बड़ा भारी सुख हुआ। फिर आकर देखा तो ठाकुर-	आनन्दित हुए। उन्होंने ठाकुरजीको हृदयसे लगा लिया।	
बटुवा नहीं था। तब वे सन्त फिर श्रीवल्लभाचार्यजीके Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dh निकट गर्य और बटुवा न मिलनका बात सुनाया। सन्तका	उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। आचार्यकी कृपासे arma   MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha उन्होंने   भौकिक स्वरूपको जान लिया।	

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें करते हुए कहते हैं— गोकुलके देखिबे कौं गयौ एक साधु सूधो गोकुल मगन भयो रीति कछु न्यारिये। छोंकरके वृक्षपर बटुवा झुलाय दियो कियो जाय दरशन सुख भयो भारिये॥ देखै आइ नाहीं प्रभु फेरि आप पास आयो चिंता सो मलीन देखि कही जा निहारिये। वैसेई सरूप कई गई सुधि बोल्यो आनि लीजिये पिछानि कह्यो सेवा नित धारिये॥ १८८॥ खुलि गईं आंखें अभिलाखें पहिचानि कीजै दीजै जू बताइ मोहिं पाउँ निजरूप है। कही जावो वाही ठौर देखो प्रेम लेखौ हिये लिये भाव सेवा करौ मारग अनूप है।। देखिकै मगन भयो लयो उर धारि हरि नैन भरि आये जान्यो भक्तिको स्वरूप है। निसि दिन लग्यौ पग्यौ जग्यौ भाग पूरन हो पूरन चमत्कार कृपा अनुरूप है॥ १८९॥ श्रीवल्लभाचार्य महान् भक्त होनेके साथ ही | एक दिन हनुमानघाटपर गंगास्नान करने गये। जहाँपर दर्शनशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रपर खड़े होकर आप स्नान कर रहे थे, वहाँसे एक बड़ा सुन्दर 'अणुभाष्य' लिखा है और श्रीभागवतके । उज्ज्वल ज्योति-शिखा उठी और आप सदेह ऊपर दशम स्कन्ध तथा कुछ अन्य स्कन्धोंपर सुबोधिनी | उठने लगे और लोगोंके देखते-ही-देखते आकाशमें टीका लिखी है। श्रीमद्भागवतको वे प्रस्थानत्रयीके लिन हो गये। इस प्रकार वि० सं० १५८७ आषाढ् अन्तर्गत मानते थे। उनके परमधाम पधारनेके विषयमें | शुक्ला ३ को ५२ वर्षकी अवस्थामें आपने अलौकिक एक घटना प्रसिद्ध है। ये अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें रीतिसे इहलीला संवरण करके गोलोकको प्रयाण अडैलसे लौटकर प्रयाग होते हुए काशी आ गये थे। किया। कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट करनेवाले भक्त भक्तदास इक भूप श्रवन सीता हर कीनो। मार मार करि खड़ग बाजि सागर मैं दीनो॥ नरसिंह को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्खा। वहै भयो दसरत्थ राम बिछुरत तन छार्यो॥ कृष्नदास बाँधे सुने तिहि छन दीयो प्रान। संत साखि जानैं सबै प्रगट प्रेम कलिजुग प्रधान॥४९॥ भक्तने नृसिंहलीलाके अनुकरणमें नृसिंह बनकर सभी लोग जानते हैं और सन्तजन इस बातके हिरण्यकशिपु बने हुए व्यक्तिको सचमुच मार डाला। साक्षी हैं कि कलियुगमें केवल प्रेमसे ही भगवान् प्रकट होते हैं, अत: प्रेम ही प्रधान है। भक्तोंका दास पुन: रामलीलामें उसी भक्तने दशरथ बनकर श्रीरामजीके कुलशेखर नामका एक राजा था। उसने रामायणकी वियोगमें अपने शरीरका त्याग कर दिया। श्रीरतिवन्तीबाईने कथामें रावणद्वारा श्रीसीताजीका हरण सुना। सुनते ही श्रीभागवतकी कथामें सुना कि माता यशोदाने रस्सीसे

श्रीकृष्णको बाँध दिया। सुनते ही अपने प्राण त्याग

दिये। इन भक्तिचरित्रोंसे कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता

प्रकट एवं सिद्ध हुई॥४९॥

उसे आवेश आ गया और वह तुरन्त हाथमें तलवार

लेकर घोड़ेपर चढ़कर 'मारो-मारो' चिल्लाता हुआ

दौडा और घोडेको समुद्रमें कुदा दिया। दुसरे एक प्रेमी

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \*

[ भक्तमाल-अङ्क

छप्पय ४९, कवित्त १९१]      * किलयुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट करनेवाले भक्त *		
<u> </u>	**************************************	
इन भगवत्प्रेमी भक्तोंका पावन चरित्र संक्षेपमें इ		
श्रीकुलः	शेखरजी	
श्रीकुलशेखरजी कोल्लिनगर (केरल)-के राजा	अर्थात् धर्मात्मा श्रीराम अकेले चौदह हजार राक्षसोंसे	
थे। ये भगवान्की कौस्तुभमणिके अवतार माने जाते हैं।	युद्ध करने जा रहे हैं, इस युद्धका परिणाम क्या होगा?	
राजा होनेपर भी उनको विषयोंमें तनिक भी प्रीति नहीं	कुलशेखरजी कथा सुननेमें इतने तन्मय हो रहे थे	
थी। वे सदा भगवद्भावमें लीन रहने लगे। उनका सारा	कि उन्हें यह बात भूल गयी कि यहाँ रामायणकी	
समय सत्संग, कीर्तन, भजन, ध्यान और भगवान्के	कथा हो रही है। उन्होंने समझा कि 'भगवान्	
अलौकिक चरित्रोंके श्रवणमें ही व्यतीत होता। उनके	वास्तवमें खर-दूषणकी सेनाके साथ अकेले युद्ध करने	
इष्टदेव श्रीराम थे और वे दास्यभावसे उनकी उपासना	जा रहे हैं।' यह बात उन्हें कैसे सह्य होती, वे तुरंत	
करते थे।	कथामेंसे उठ खड़े हुए। उन्होंने उसी समय शंख	
एक दिन वे बड़े प्रेमके साथ श्रीरामायणकी कथा	बजाकर अपनी सारी सेना एकत्र कर ली और सेनानायकको	
सुन रहे थे। प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीराम सीताजीकी	आज्ञा दी कि 'चलो, हमलोग श्रीरामकी सहायताके लिये	
रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्तकर स्वयं अकेले खर-	राक्षसोंसे युद्ध करने चलें।' ज्यों ही वे वहाँसे जानेके	
दूषणकी विपुल सेनासे युद्ध करनेके लिये उनके सामने	लिये तैयार हुए, उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुना कि	
जा रहे हैं। पण्डितजी कह रहे थे—	'श्रीरामने अकेले ही खर-दूषणसहित सारी राक्षससेनाका	
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।	संहार कर दिया।' तब कुलशेखरको शान्ति मिली और	
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धो भविष्यति॥	उन्होंने सेनाको लौट जानेका आदेश दिया।	
श्रीप्रियादासजी कुलशेखरके इस भक्तिभावका उ	अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—	
सन्त साखि जानै कलिकाल में प्रगट प्रेम बड़	<b>ग़ेई असन्त जाके भक्ति में अभाव है</b> ।	
हुतो एक भूप राम रूप ततपर महा राम ही की लीला गुन सुनै करि भाव है॥		
विप्र सो सुनावै सीता चोरी को न गावै हियो	खरो भरि आवै वह जानत सुभाव है।	
-	नै न सुनायौ भरमायौ कियो घाव है॥१९०॥	
मार-मार करि खऽग निकासि लियौ दियौ		
मारौं याहि काल दुष्ट रावन बिहाल करौं पांव		
जानकी रवन दोऊ दरशन दियो आनि बोले	-	
	। को निहारि नयो फेरिकै जिवायो है॥ १९१॥	
	। भरे हुए पदोंकी रचना की। इन्होंने मथुरा, वृन्दावन,	
_	अयोध्या आदि कई उत्तरके तीर्थोंकी भी यात्रा की थी	
	और श्रीकृष्ण तथा श्रीरामकी लीलाओंपर भी अनेक पद	
रहने लगे और वहाँ रहकर इन्होंने बड़े सुन्दर भक्तिरससे	•	
. •	एवं श्रीरतिवन्तीजी	
3	ें   कहने लगे कि इसने द्वेषवश मारकर बदला चुकाया है	
•	तो कुछ लोग कहते थे कि इसने आवेशमें आकर मारा	
	है। अन्तमें परीक्षा करनेके लिये लोगोंने कहा कि इन्हें	
•	रामलीलामें दशरथ बनाओ, तब पता लग जायगा।	

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* िभक्तमाल-अङ् रामलीलाकी तैयारी हुई। इन्हें दशरथ बनाया गया। कथा सुनकर आनेपर पुत्रसे पूछा कि आज कौन-सी श्रीरामजीके वन चले जानेपर उनके वियोगमें व्याकुल कथा हुई? पुत्रने कहा—आज तो माता यशोदाने बालकृष्णकी कमरमें रस्सी बाँधकर उसे ऊखलसे बाँध होकर विलाप करते-करते इन्होंने अपना शरीर त्यागकर दिया, यह कथा हुई है। नवनीतसे भी कोमल कलेवरमें भावको पूरा कर दिया। श्रीरितवन्ती नामकी एक बाई थी। वह बड़ी भक्ता कड़ी रस्सी अति कष्टदायक हुई होगी, अत: बन्धन-थी। उसने बालकृष्णके स्वरूपमें अपनी बृद्धि लगा दी। प्रसंग सुनते ही बाईजीकी और ही दशा हो गयी। बालकृष्णके कष्टका अनुभव करके उन्होंने अपनी नित्यप्रति वात्सल्यभावसे उपासना करती और कथा प्रीतिको सच्ची करके दिखा दिया और अपने शरीरको श्रवण करती थी। किसी कारणवश एक दिन वह कथामें नहीं गयी। अपने पुत्रको कथा सुननेके लिये भेज दिया। मानो न्यौछावर कर दिया। श्रीप्रियादासजीने श्रीरतिवन्तीजीके इस भगवत्प्रेमका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— नीलाचन धाम तहाँ लीला अनुकर्न भयो नरसिंह रूप धरि साँचे मारि डार्र्यो है। कोऊ कहैं द्वेष कोउ कहत आवेस तो पै करो दशरथ कियो भाव पूरो पार्घो है।। हती एक बाई कृष्णरूप सों लगाई मित कथा में न आई सुत सुनी कह्यो धार्यो है। बाँधे जसुमित सुनि और भई गित करि दई साँची रित तन तज्यो मन वार्खा है॥ १९२॥ भक्तिसे भगवान्को वशमें करनेवाले भक्त हों कहा कहों बनाइ बात सबही जग जानै। करतें दौना भयो स्याम सौरभ मन मानै॥ छपन भोग तैं पहिल खीच करमा कौ भावै। सिलपिल्ले के कहत कुँअरि पै हरि चलि आवै॥ भक्तन हित सुत बिष दियो भूपनारि प्रभु राखि पति। परसाद अवग्या जानि के पानि तज्यो एकै नृपति॥५०॥ श्रीनाभाजी कहते हैं कि जगन्नाथपुरीके एक। श्रीजगन्नाथजीको छप्पन राजभोगसे पहले श्रीकर्माबाईकी राजाने अपने दाहिने हाथसे प्रसादका अपमान हुआ खिचड़ी अति ही स्वादिष्ट लगती है, अत: अबतक जानकर उसे त्याग दिया अर्थात् कटवा डाला। इस नित्य उसका भोग लगता है। 'हे सिलपिल्ले प्रभो!'— ऐसा कहते ही दोनों कन्याओंके पास भगवान् चले बातको मैं अपनी ओरसे बनाकर क्या कहँ ? इसे तो सारा संसार जानता है कि उस भक्त राजाके कटे हुए हाथसे आये। दो राजरानियोंने भक्तोंके लिये अपने-अपने पुत्रोंको दौनाका वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसके पुष्प एवं पत्रोंकी विष दिया। प्रभुने उन रानियोंकी लज्जा रखी, उनके सुगन्ध श्यामसुन्दरको अत्यन्त प्रिय लगती है। पुत्रोंको जीवित किया॥५०॥ इन भगविनाष्ठ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है— भगवत्प्रसादनिष्ठ राजा श्रीजगन्नाथपुरीके राजाकी भगवत्प्रसादमें बड़ी ही। प्रसादको छूकर उसे स्वीकार किया। इस प्रकार प्रसादका निष्ठा थी, परंतु एक दिन राजा चौपड़ खेल रहा था, अपमान जानकर पण्डाजी रुष्ट हो गये। प्रसादको इसी बीच श्रीजगन्नाथजीके पण्डाजी प्रसाद लेकर आये। राजमहलमें न पहुँचाकर उसे वापस ले गये। चौपड़ राजाके दाहिने हाथमें पासा था। अत: उसने बायें हाथसे | खेलकर राजा उठे और अपने महलमें गये। वहाँ उन्होंने

छप्पय ५०, कवित्त १९५ ] * भक्तिसे भगवान्को वशमें करनेवाले भक्त * २१३		
	**************************************	
नयी बात सुनी कि मेरे अपराधके कारण अब मेरे पास	पहरा देते समय राजाने अपने पलँगसे उठकर झरोखेमें हाथ	
प्रसाद कभी नहीं आयेगा। राजाने अपना अपराध	डालकर शोर मचाया। मन्त्रीने उसे प्रेतका हाथ जानकर	
स्वीकारकर अन्न-जल त्याग दिया। उसने मनमें विचारा	तलवारसे काट डाला।	
कि जिस दाहिने हाथने प्रसादका अपमान किया है, उसे	राजाका हाथ कटा देखकर मन्त्रीजी अति लिज्जित	
मैं अभी काट डालूँगा, यह मेरी सच्ची प्रतिज्ञा है।	हुए और पछताते हुए कहने लगे कि मैं बड़ा मूर्ख हूँ,	
ब्राह्मणोंकी सम्मति लेना उचित समझकर राजाने उन्हें	मैंने यह क्या कर डाला? राजाने कहा—तुम निर्दोष	
बुलाकर पूछा कि यदि कोई भगवान्के प्रसादका अपमान करे	हो, मैं ही प्रेत था; क्योंकि मैंने प्रभुसे बिगाड़ किया	
तो चाहे वह कोई अपना प्रिय अंग ही क्यों न हो, उसका	था। राजाकी ऐसी प्रसादनिष्ठा देखकर अपने पण्डोंसे	
त्याग करना उचित है या नहीं। ब्राह्मणोंने उत्तर दिया कि	श्रीजगन्नाथजीने कहा कि अभी-अभी मेरा प्रसाद ले	
राजन्! अपराधीका तो सर्वथा त्याग ही उचित है।	जाकर राजाको दो और उसके कटे हुए हाथको मेरे	
राजाने अपने मनमें हाथ कटाना निश्चित कर लिया,	बागमें लगा दो। भगवान्के आज्ञानुसार पण्डे लोग	
परंतु मेरे हाथको अब कौन काटे ? यह सोचकर मौन और	प्रसादको लेकर दौड़े, उन्हें आते देखकर राजा आगे	
अत्यन्त खिन्न हो गया। राजाको उदास देखकर मन्त्रीने	आकर मिले। दोनों हाथोंको फैलाकर प्रसाद लेते	
उदासीका कारण पूछा। राजाने कहा—नित्य रातके समय	समय राजाका कटा हुआ हाथ पूरा निकल आया।	
एक प्रेत आता है और वह मुझे दिखायी भी देता है।	जैसा था, वैसा ही हो गया। राजाने प्रसादको मस्तक	
कमरेकी खिड़कीमें हाथ डालकर वह बड़ा शोर करता है।	और हृदयसे लगाया। भगवत्कृपाका अनुभव करके	
उसीके भयसे मैं दु:खी हूँ। मन्त्रीने कहा—आज मैं आपके	बड़ा भारी सुख हुआ। पण्डे लोग राजाका कटा हुआ	
पलँगके पास सोऊँगा और आप अपनेको दूसरी जगह	वह हाथ ले आये। उसे बागमें लगा दिया गया।	
छिपाकर रखिये, जब वह प्रेत झरोखेमें हाथ डालकर शोर	उससे दौनाके वृक्ष हो गये। उसके पत्र-पुष्प नित्य ही	
मचायेगा, तभी मैं उसका हाथ काट दूँगा। सुनकर राजाने	जगन्नाथजीके श्रीअंगपर चढ़ते हैं। उनकी सुगन्ध	
कहा—बहुत अच्छा! ऐसा ही करो। रात होनेपर मन्त्रीजीके	भगवान्को बहुत प्रिय लगती है।	
श्रीप्रियादासजी पुरीनरेशकी इस प्रसादनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—		
प्रसादकी अवज्ञा तै तज्यो नृप कर एक करिकै विवेक सुनौं जैसे बात भई है।		
खेलै भूप चौपरि कौं आयौ प्रभु भुक्त शेष दाहिने मैं पासे बाएँ छुयौ मित गई है।।		
लै गये रिसायकैं फिराय महा दुखपाय उठ्यो नरदेव गृह गयो सुनी नई है।		
लियो अनसन हाथ तजौं याही छन तब सांच	गौ मेरो पन बोलि विप्र पूछि लई है॥१९३॥	
काटै हाथ कौन मेरो ? रह्यो गहि मौन यातैं पूछत सचिव कथा विथा सो विचारियै।		
आवै एक प्रेत मो दिखाई नित देत निशि डारिकैं झरोखा कर शोर करै भारियै॥		
सोऊँ ढिग आइ रहौं आपुकौं छिपाइ जब डारै पानि आनि तबही सुकाटि डारियै।		
कही नृप भलै चौकी देत मैं घुमायो भूप डार्ह्यो उठि आइ छेद न्यारो कियो वारियै॥ १९४॥		
देखिकें लजानौ कहा कियौं मैं अजानौ नृप कही प्रेत मानौं यही हिर सों बिगारियै।		
कही जगन्नाथदेव लै प्रसाद जावौं उहाँ ल्यावो हाथ बोवो बाग सोई उर धारियै॥		
चले तहाँ धाइ भूप आगे मिल्यो आइ हाथ निकस्यो लगाइ हियैं भयो सुख भारियै।		
Hinduisma Discord तिक्का पद्मिक । (वीड्न : अव / वीड्न मित्र ) चिक्न प्राची में हिर प्रवास्थि । Ayina sh / Sha		

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* 288 [ भक्तमाल-अङ्क श्रीकर्माबाई प्रभ् जुँठे मुँह ही वहाँ चले गये। श्रीकर्माजी नामकी एक भगवद्भक्त देवी श्रीपुरुषोत्तमपुरीमें रहती थीं। इन्हें वात्सल्यभक्ति अत्यन्त पुजारी चिकत हो गया। उसने देखा उस दिन प्रिय थी। ये प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रात:काल स्नानादि भगवानुके मुखारविन्दमें खिचडी लगी है। पुजारी भी किये बिना ही खिचडी तैयार करतीं और भगवानुको भक्त था। उसका हृदय क्रन्दन करने लगा। उसने अत्यन्त अर्पित करतीं। प्रेमके वशमें रहनेवाले श्रीजगन्नाथजी भी कातर होकर प्रभुसे असली बात जाननेकी प्रार्थना की। प्रतिदिन सुघर-सलोने बालकके वेशमें आकर श्रीकर्माजीकी भगवानुने कहा, 'नित्यप्रति प्रात:काल मैं कर्माबाईके पास गोदमें बैठकर खिचडी खा जाते। श्रीकर्माजी सदैव खिचडी खाने जाता हूँ। उनकी खिचडी मुझे बडी मधुर चिन्तित रहा करती थीं कि बच्चेके भोजनमें कभी भी और प्रिय लगती है। पर आज एक साधुने जाकर उन्हें स्नानादिकी विधियाँ बता दीं; इसलिये खिचडी बननेमें विलम्ब न हो जाय। इसी कारण वे किसी भी विधि-विधानके पचडेमें न पडकर अत्यन्त प्रेमसे सबेरे ही देर हो गयी, जिससे मुझे क्षुधाका कष्ट तो हुआ ही, खिचडी तैयार कर लेतीं। शीघ्रतामें जुँठे मुँह आ जाना पडा।' एक दिनकी बात है। श्रीकर्माजीके पास एक साध भगवान्के आज्ञानुसार पुजारीने उस साधुको प्रभुकी आये। उन्होंने अपवित्रताके साथ खिचडी तैयार करके सारी बातें सुना दीं। साधु घबराया हुआ श्रीकर्माजीके पास जाकर बोला—'आप पूर्वकी ही तरह प्रतिदिन सबेरे भगवानुको अर्पण करते देखा। घबराकर उन्होंने श्रीकर्माजीको पवित्रताके लिये स्नानादिकी विधियाँ बता ही खिचड़ी बनाकर प्रभुको निवेदन कर दिया करें। दीं। भक्तिमती श्रीकर्माजीने दूसरे दिन वैसा ही किया। आपके लिये किसी नियमकी आवश्यकता नहीं है।' पर इस प्रकार खिचडी तैयार करते उन्हें देर हो गयी। श्रीकर्माजी पुन: उसी तरह प्रतिदिन सबेरे भगवानुको उस समय उनका हृदय रो उठा कि मेरा प्यारा खिचडी खिलाने लगीं। श्यामसुन्दर भूखसे छटपटा रहा होगा। श्रीकर्माजी परमात्माके पवित्र और आनन्दमय श्रीकर्माजीने दु:खी मनसे श्यामसुन्दरको खिचड़ी धाममें चली गयीं, पर उनके प्रेमकी गाथा आज भी खिलायी। इसी समय मन्दिरमें अनेकानेक घृतमय पक्वान विद्यमान है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें आज भी प्रतिदिन निवेदित करनेके लिये पुजारीने प्रभुका आवाहन किया। प्रात:काल खिचड़ीका भोग लगाया जाता है। श्रीप्रियादासजी श्रीकर्माबाईकी इस प्रेममयी भक्तिका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं— हती एक बाई ताको 'करमा' सुनाम जानि बिना रीति भाँति भोग खिचरी लगावहीं। जगन्नाथ देव आपु भोजन करत नीकें जिते लगै भोग तामैं यह अति भावहीं॥ गयो तहाँ साधु मानि बड़ो अपराध करै भरै बहु स्वांस सदाचार लै सिखावहीं। भई यों अबार देखें खोलि कें किवार जोपै जूठन लगी है मुख धोये बिनु आवहीं॥ १९६॥ पूछी प्रभु भयो कहा किहये प्रगट खोलि बोलिह न आवै हमें देखि नयी रीति है। करमा सुनाम एक खिचरी खवावै मोहिं मैं हूँ नित पाऊँ जाइ जानि साँची प्रीति है।। गयौ मेरो सन्त रीति भाँतिसों सिखाइ आयो मत मो अनन्त बिनु जाने यों अनीति है। कही वही साध्सों जु साधि आवौ वही बात जाइकै सिखाई हिय आई बड़ी भीति है॥ १९७॥

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क भवसागरसे पार करानेवाले भगवद्धक्त

सोझा सींव अधार धीर हरिनाम त्रिलोचन।

आसाधर द्योराजनीर सधना दुखमोचन॥

कासीस्वर अवधूत कृष्न किंकर कटहरिया। सोभू ऊदाराम, नाम डूँगर ब्रतधरिया॥

पदम पदारथ रामदास बिमलानंद अमृत भव प्रबाह निस्तार हित अवलंबन ये जन भए॥९६॥ आवागमनरूप संसारके प्रवाहमें पड़े हुए जीवोंके।

उद्धारके लिये ये भगवद्भक्त अवलम्बस्वरूप हुए। श्रीसोझाजी, श्रीसींवाजी, धैर्यवान् श्रीअधारजी, श्रीहरिनाभजी, श्रीत्रिलोचनजी, श्रीआसाधरजी, श्रीद्यौराजनीरजी, श्रीसदनजी —ये सब भक्तजीवोंको संसार-दु:खसे छुड़ानेवाले हुए। इनमेंसे कतिपय भक्तोंके विषयमें विवरण इस प्रकार है—

प्राचीन समयमें सदन नामक कसाई जातिके एक भक्त हो गये हैं। यद्यपि ये जातिसे कसाई थे, फिर भी इनका हृदय दयासे पूर्ण था। आजीविकाके लिये और कोई उपाय न होनेसे दूसरोंके यहाँसे मांस लाकर बेचा करते थे, स्वयं अपने हाथसे पशु-वध नहीं करते थे। इस काममें भी इनका

सदन कसाई

मन लगता नहीं था, पर मन मारकर जाति-व्यवसाय होनेसे करते थे। सदनका मन तो श्रीहरिके चरणोंमें रम गया था। रात-दिन वे केवल 'हरि-हरि' करते रहते थे। भगवान् अपने भक्तसे दूर नहीं रहा करते। सदनके

घरमें वे शालग्रामरूपसे विराजमान थे। सदनको इसका पता नहीं था। वे तो शालग्रामको पत्थरका एक बाट समझते थे और उनसे मांस तौला करते थे। एक दिन एक साधु सदनकी

दुकानके सामनेसे जा रहे थे। दृष्टि पड़ते ही वे शालग्रामजीको पहचान गये। मांस-विक्रेता कसाईके यहाँ अपवित्र स्थलमें

शालग्रामजीको देखकर साधुको बड़ा क्लेश हुआ। सदनसे | श्रीजगन्नाथपुरीको चल पड़े। श्रीप्रियादासजीने सदनके प्रति भगवान्की इस भक्तवत्सलताका इस प्रकार वर्णन किया है—

हो गयी। वे शालग्रामजीको लेकर पुरुषोत्तमक्षेत्र

सदना कसाई ताकी नीकी कस आई जैसे बारा बानी सोनेकी कसौटी कस आई है।

अवधृत काशीश्वरजी, श्रीकृष्णकिंकरजी, श्रीकटहरियाजी,

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी, श्रीऊदारामजी, श्रीड्रॅंगरजी—

ये श्रीहरिनामका व्रत धारण करनेवाले हुए। श्रीपद्मजी,

श्रीपदारथजी, श्रीरामदासजी, श्रीविमलानन्दजी-ये भक्त

मॉॅंगकर वे शालग्रामको ले गये। सदनने भी प्रसन्नतापूर्वक

शालग्रामजीकी पूजा की; परंतु भगवानुको उससे प्रसन्नता

न हुई। रातमें उन साधुको स्वप्नमें भगवान्ने कहा—'तुम

मुझे यहाँ क्यों ले आये ? मुझे तो अपने भक्त सदनके घरमें

ही बड़ा सुख मिलता था। जब वह मांस तौलनेके लिये मुझे

उठाता था, तब उसके शीतल स्पर्शसे मुझे अत्यन्त आनन्द

मिलता था। मुझे सदनके बिना एक क्षण कल नहीं पड़ती।'

और सदनके घर जाकर उसे दे आये। साथ ही उसको

भगवत्कुपाका महत्त्व भी बता आये। सदनको जब पता

लगा कि उनका यह बटखरा तो भगवान् शालग्राम हैं,

तब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अपने व्यवसायसे घृणा

साधु महाराज जगे। उन्होंने शालग्रामजीको उठाया

साधु बाबा कुटियापर पहुँचे। उन्होंने विधिपूर्वक

श्रीहरिभक्तिरसामृतकी वर्षा करनेवाले हुए॥ ९६॥

साधुको अपना वह चमकीला बाट दे दिया।

जीवको न बध करें ऐपै कुलाचार ढरें बेंचें मांस लाय प्रीति हरिसों लगाई है।। गंडकीकौ सुत बिन जाने तासों तोल्यो करें भरे दूग साधु आनि पूजे पै न भाई है।

कही निसि सुपने मैं वाही ठौर मोकों देवौ सुनौ गुनगान रीझौं हियेकी सचाई है॥ ३९४॥

छप्पय ९६, कवित्त ३९७] *भवसागरसे पार क	रानेवाले भगवद्धक्तः ३१९	
***************************************		
लै के आयो साधु मैं तो बड़ो अपराध कियौ कियौ अभिषेक सेवा करी पै न भाई है।		
ये तौ प्रभु रीझे तोपै जोई चाहौ सोई करौ ग	•	
वेई हरि उर धारि डारि दियो कुलाचार च		
मिल्यौ एक संग संग जात वे सुगात सब त		
मार्गमें सन्ध्या-समय सदनजी एक गाँवमें एक	बलात्कार करना चाहता था।' लोगोंने सदनको खूब	
गृहस्थके घर ठहरे। उस घरमें स्त्री-पुरुष दो ही	भला–बुरा कहा, कुछने मारा भी; पर सदनने कोई सफाई	
व्यक्ति थे। स्त्रीका आचरण अच्छा नहीं था। वह	नहीं दी। मामला न्यायाधीशके पास गया। सदन तो	
अपने घर ठहरे हुए इस स्वस्थ, सुन्दर, सबल पुरुषपर	अपने प्रभुकी लीला देख रहे थे, अत: अपराध न करनेपर	
मोहित हो गयी। आधी रातके समय सदनजीके पास	भी अपराध स्वीकार कर लिया। न्यायाधीशकी आज्ञासे	
आकर वह अनेक प्रकारकी अशिष्ट चेष्टाएँ करने	उनके दोनों हाथ काट लिये गये।	
लगी। यह देख वे हाथ जोड़कर बोले—'तुम तो मेरी	सदनके हाथ कट गये, रुधिरकी धारा चलने	
माता हो! अपने बच्चेकी परीक्षा मत लो, मा! मुझे	लगी; उन्होंने इसे अपने प्रभुकी कृपा ही माना। उनके	
तुम आशीर्वाद दो।'	मनमें भगवान्के प्रति तनिक भी रोष नहीं आया।	
उस स्त्रीने समझा कि मेरे पतिके भयसे ही यह मेरी	भगवान्के सच्चे भक्त इस प्रकार निरपराध कष्ट पानेपर	
बात नहीं मानता। वह गयी और तलवार लेकर सोते हुए	भी अपने स्वामीकी दया ही मानते हैं। भगवन्नामका	
अपने पतिका सिर उसने काट दिया और कहने लगी—	कीर्तन करते हुए सदन जगन्नाथपुरीको चल पड़े। उधर	
'प्यारे! अब डरो मत। मैंने अपने पतिका सिर काट डाला	पुरीमें प्रभुने पुजारीको स्वप्नमें आदेश दिया—'मेरा भक्त	
है। अब तुम मुझे स्वीकार करो।'	सदन मेरे पास आ रहा है। उसके हाथ कट गये हैं।	
सदन भयसे काँप उठे। स्त्रीने अनुनय-विनय करके	पालकी लेकर जाओ और उसे आदरपूर्वक ले आओ।'	
जब देख लिया कि उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हो	पुजारी पालकी लिवाकर गये और आग्रहपूर्वक सदनको	
सकती, तब द्वारपर आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी।	उसमें बैठाकर ले आये। सदनने जैसे ही श्रीजगन्नाथजीको	
लोग उसका रुदन सुनकर एकत्र हो गये। उसने कहा—	दण्डवत् करके कीर्तनके लिये भुजाएँ उठायीं, उनके	
'इस यात्रीने मेरे पतिको मार डाला है और यह मेरे साथ	दोनों हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये।	
श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने दो कवि	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	
आयौ मग गाँव भिक्षा लेन इक ठांव गयौ नये	ो रूप देखि कोऊ तिया रीझि परी है।	
बैठो याही ठौर करो भोजन निहोरि कह्यौ रह्यौ निसि सोय आई मेरी मित हरी है।।		
लेवो मोको संग करौ काटौ तौ न होय रंग बूझी और काटी पति ग्रीव पै न डरी है।		
कही अब पागो मोसों नातो कौन तोसों मोसों सोर किर उठी इन मार्यो भीर करी है।। ३९६।।		
हाकिम पकरि पूछै कहैं हँसि मार्ख्यो हम, डार्ख्य		
कट्यो कर चले हरिरंग मांझ झिले मानी ज	nनी कछु चूक मेरी यहै उर धारियै॥	
जगन्नाथदेव आगे पालकी पठाई लेन, सधन	॥सो भक्त कहां? चढ़ैं न विचारियै।	
चढ़ि आये प्रभु पास सुपनोसो मिट्यौ त्रास बो	ले दै कसौटी हूँ पै भक्ति विसतारियै॥ ३९७॥	
प्रभुकी कृपासे हाथ ठीक तो हुए, पर मनमें शंका	कसाईके घेरेसे भागी जा रही थी। उसने तुम्हें पुकारा।	
बनी ही रही कि वे क्यों काटे गये? रातमें स्वप्नमें	तुमने कसाईको जानते हुए भी गायके गलेमें दोनों हाथ	
भगवान्ने सदनजीको बताया—'तुम पूर्वजन्ममें काशीमें	डालकर उसे भागनेसे रोक लिया। वही गाय वह स्त्री	
सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय	थी और कसाई उसका पति था। पूर्वजन्मका बदला	

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क लेनेके लिये उसने उसका गला काटा। तुमने भयातुरा धाम पधारे। श्रीगुसाईं काशीश्वरजी गायको दोनों हाथोंसे पकडकर कसाईको सौंपा था, इस पापसे तुम्हारे हाथ काटे गये। इस दण्डसे तुम्हारे पापका गुसाईं श्रीकाशीश्वरजी अवधूत संन्यासी थे। आपको नाश हो गया।' श्रीनीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी)-का वास अच्छा लगा, सदनने भगवान्की असीम कृपाका परिचय पाया। अतः अनुरागपूर्वक वहीं बस गये। कालान्तरमें महाप्रभु वे भगवत्प्रेममें विह्वल हो गये। बहुत कालतक नाम-श्रीकृष्णचैतन्यजीके आदेशानुसार आप श्रीवृन्दावन चले आये। श्रीवृन्दावनका दर्शन करके आपके हृदयकी कीर्तन, गुण-गान तथा भगवान्के ध्यानमें तल्लीन रहते हुए उन्होंने पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास किया और अभिलाषा पूरी हो गयी। यहाँ आपको रसिकेन्द्रचुडामणि अन्तमें श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें देह त्यागकर वे परम- | श्रीराधा गोविन्दचन्द्रजीकी सेवाका अधिकार प्राप्त हुआ। श्रीप्रियादासजीने गुसाईं काशीश्वरजीकी भाव-दशाका वर्णन इस प्रकार किया है— श्रीगुसाईं काशीश्वर आगे अवधूत बर किर प्रीति नीलाचल रहे लाग्यो नीको है। महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजूकी आज्ञा पाय आये वृन्दावन देखि भायौ भयौ हीको है।। सेवा अधिकार पायौ रिसक गोविन्दचन्द चाहत मुखारविन्द जीविन जो जीको है। नित ही लड़ावें भाव सागर बढ़ावें कौन पारावार पावें सुनै लागै जग फीको है॥ ३९८॥ श्रीसोझाजी करेगा?' आपने पृथ्वीपर रेंगते हुए जीव-जन्तुओंको श्रीसोझाजी-दम्पती भगवद्भक्त गृहस्थ थे। धीरे-दिखाकर कहा—'जो इनका पालन करता है, वही इस धीरे जगतुकी असारता, सांसारिक सुखोंकी असत्यता बालकका भी पालन करेगा।' आपकी आजाका पालन और श्रीहरिभजनकी सत्यताका सम्यक् बोध हो जानेपर करते हुए आपकी पत्नीने बालकको वहीं छोड दिया आपके मनमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। आपने और दोनों लोग श्रीद्वारकापुरीकी यात्रापर चल दिये। अपनी धर्मपत्नीके समक्ष अपने गृहत्यागका प्रस्ताव बारह वर्ष बाद अचानक एक दिन आपकी रखा तो उस साध्वीने न केवल सहर्ष प्रस्तावका समर्थन पत्नीको अपने उस दुधमुँहे शिशुकी याद आयी, जिसे वे किया, बल्कि स्वयं भी साथ चलनेको तैयार हो गयीं। आपके कहनेपर रास्तेमें ही छोडकर चली आयी थीं। इसपर आपने कहा कि यदि तुम्हारे हृदयसे समस्त उन्होंने इस बातको आपसे कहा। प्रभुकृपासे आप तो सांसारिक आसक्तियाँ समाप्त हो गयी हों तो तुम भी सब जानते ही थे, फिर भी पत्नीको भगवत्कृपाके दर्शन अवश्य चल सकती हो। अर्धरात्रिके समय ये दोनों घर करानेके लिये उन्हें लेकर अपने देश वापस लौटे। वहाँ वे एक बागमें रुके और मालीसे पूछा—'यहाँका राजा छोडकर चल दिये। आपकी तो प्रभुकुपापर अनन्य कौन है ?' मालीने बताया—'यहाँके राजाको कोई संतान निष्ठा थी, इसलिये साथ कुछ नहीं लिया, परंतु आपकी नहीं थी; अत: उन्होंने भक्त सोझाजीके पुत्रको गोद ले पत्नी अपने दस माहके शिशुके प्रति वात्सल्यभावको न त्याग सकी और उसको भी अपनी गोदमें लेते आयी। लिया था, जिसे उसके माता-पिता जंगलमें छोड गये थे, रातभर पैदल चलनेके उपरान्त प्रात:कालके उजालेमें अब वही लडका यहाँका राजा है।' सोझाजीकी पत्नी आपने जब पत्नीकी गोदमें शिशुको देखा तो बहुत इस भगवत्कृपासे गद्गद हो गयीं, उन्हें विश्वास हो गया नाराज हुए और बोले—'अभी तुम्हारे मनमें संसारके कि जो अनन्य भावसे प्रभुकी शरणमें जाते हैं, उनके योग-क्षेमका वहन स्वयं श्रीभगवान् करते हैं। प्रति बहुत राग है, यदि तुम मेरे साथ चलना चाहती हो तो इस शिशुको यहीं छोड़ दो।' पत्नीने बड़े ही करुण श्रीसींवाजी स्मिमि duisim निंडरं orde server https://desaggdharma श्री स्मिनि स्मिनिस्सि Oस्हाहरू Avinash(Sh

छप्पय ९६ ]	
	*********************************
सन्तसेवामें बड़ी निष्ठा थी, इससे समाजमें आपका सम्मान	सौदा आ सकता। ऐसेमें आपने अपनी विवाहयोग्य
भी बहुत था। आपकी यह प्रतिष्ठा अनेक लोगोंकी	कन्याको एक सगोत्री ब्राह्मणके यहाँ गिरवी रख दिया
ईर्ष्याका कारण बनी। उन लोगोंने राजासे आपकी	कि पैसेकी व्यवस्था होनेपर छुड़ा लेंगे। इस प्रकार
शिकायत कर दी। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार	पैसोंकी व्यवस्था करके आप सीधा-सामान लाये और
किये आपको कारागारमें डाल दिया। आपकी सन्त प्रकृति	सन्त-सेवा की। कुछ समय बाद जब आपके पास पैसे
थी, अतः आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान सब	इकट्ठे हो गये तो आपने ब्राह्मणके पैसे लौटा दिये, परंतु
समान ही थे; परंतु आपको इस बातका विशेष क्लेश था	फिर भी वह कन्याको वापस करनेमें आनाकानी करता
कि अब मेरी सन्तसेवा छूट गयी है। एक दिन एक	रहा। आपकी सन्त-सेवाके प्रति निष्ठा और ब्राह्मणकी
सन्तमण्डली आपके घरपर आयी, जब आपको इस	कुटिलताने सन्तोंके परम आराध्य भगवान् श्रीहरिको
बातका पता चला तो आपको सन्तसेवा न कर पानेका	उद्वेलित कर दिया। वे स्वयं चुपचाप कन्याको आपके
बहुत दु:ख हुआ। सर्वसमर्थ प्रभुसे अपने भक्तकी सच्ची	यहाँ पहुँचा आये। अब वह ब्राह्मण आपसे झगड़ा-
तड़पन और उसकी मानसिक पीड़ा देखी न गयी। उसी	तकरार करने लगा। इसपर भगवान्ने रात्रिमें स्वप्नमें
समय चमत्कार हुआ और आपकी हथकड़ी-बेड़ी टूटकर	उससे कहा कि कन्याको मैंने उसके पिताके घर पहुँचाया
जमीनपर गिर पड़ी, जेलके फाटक भी अपने-आप खुल	है, यदि तुम इसके लिये तकरार करोगे तो मैं तुम्हारा
गये। आप सन्तोंके पास पहुँच गये और भावपूर्वक उनकी	सर्वनाश कर दूँगा। अब ब्राह्मणको अपनी गलती और
सेवा की। राजाको जब यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह	आपपर भगवत्कृपाका बोध हुआ। वह दूसरे दिन
नंगे पैर भागकर आया और आपके चरणोंमें गिरकर	प्रात:काल ही आकर आपके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना
क्षमा-प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें कोई विकार भाव	करने लगा। आपके मनमें उसके प्रति तनिक भी क्रोध
तो था ही नहीं, अत: तुरंत ही क्षमा कर दिया। इस प्रकार	नहीं था, अत: उसे क्षमा तो कर ही दिया, साथ ही उसे
श्रीसींवाजी गृहस्थमें रहते हुए भी आदर्श सन्त थे।	भी सन्त-सेवी बना दिया।
श्रीअधारजी	श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी
श्रीअधारजी बड़े उच्च कोटिके सन्त थे। भगवान्	श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी महाराजका जन्म ब्राह्मण-
श्रीहरिके नाममें आपकी बड़ी निष्ठा थी। आपने श्रीहरि	कुलमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीकृष्णदत्त और
नामको ही अपना आधार बना लिया और उसीके बलपर	माताका नाम श्रीराधादेवी था। श्रीकृष्णदत्त एवं राधादेवीको
असंख्य जनोंको भवसागरसे पार किया। श्रीहरि नामको	जब दीर्घकालतक संतानकी प्राप्ति नहीं हुई तो एक
आधार बना लेनेके कारण आपका नाम श्रीअधारजी	सन्तकी प्रेरणासे दोनों निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिदेव
पड़ गया।	व्यासजीके पास गये। उन्होंने आपलोगोंको गो-सेवा
श्रीहरिनाभजी	करनेकी आज्ञा दी। अब आपलोग गायोंको चराते,
श्रीहरिनाभजी भगवत्कृपाप्राप्त सन्त थे। आपका	उनकी सार–सँभाल करते और हर प्रकारकी सेवा करते।
जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था और आपकी सन्त-सेवामें	इस प्रकार सेवा करते-करते गोपाष्टमीका दिन आया।
बड़ी ही निष्ठा थी। एक बार संन्यासियोंकी एक बड़ी	आप दोनों लोग गोशालामें गये, वहाँ देखा तो चारों ओर
मण्डली आपके गाँवमें आयी, गाँववालोंने उन्हें आपके	प्रकाश फैला था और उस प्रकाशपुंजके मध्यमें एक
यहाँ भेज दिया। संयोगसे उस दिन आपके यहाँ तनिक	सुन्दर शिशु लेटा था। उसे देखते ही दम्पतीका वात्सल्य
भी सीधा (कच्चा अन्न) नहीं था और न ही घरमें	भाव जाग्रत् हो गया और राधादेवीने उसे अपनी गोदमें
रुपया-पैसा या आभूषण ही था, जिसे देकर दूकानसे	उठा लिया। इस प्रकार स्वयं प्रकट होनेके कारण

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क शिशुका नाम स्वभूराम पड़ा। आठ वर्षकी अवस्थामें बहुत धन है, परंतु यह राज्यकर नहीं देता। अविवेकी बालक स्वभूरामको उनके माता-पिता श्रीहरिदेव व्यासजीके राजाने भी बिना कोई विचार किये सिपाहियोंको पास ले गये और उनका यज्ञोपवीत कराकर वैष्णव दीक्षा श्रीऊदारामजीको गिरफ्तारकर लानेके लिये भेज दिया, परंतु सिपाही जब आपके घरके पास पहुँचे तो सबके दिलायी, तत्पश्चात् सब लोग पुनः घर आ गये। सब अन्धे हो गये। यह समाचार जब राजाको पता चला श्रीस्वभूरामजी घर आ तो गये, पर उनका मन घरमें न तो उसे अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने तत्काल आकर लगता। एक दिन उन्होंने अपने माता-पितासे संन्यास आपके चरणोंमें प्रणिपात किया और आपके उपदेशोंसे लेनेकी बात कही और उनसे आज्ञा एवं आशीर्वाद माँगा। इसपर आपके माता-पिता वात्सल्यस्नेहवश बिलखने प्रभावित होकर भगवद्भजन और साधु-सेवाका व्रत ले लगे और रोते हुए बोले—'बेटा! हम वृद्धोंके तुम्हीं लिया। इसी प्रकार आपके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अनेक एकमात्र प्राणाधार हो, यदि तुम भी वैराग्य-धारण कर भगवद्विमुख जन वैष्णव बन गये। लोगे तो हम लोग किसके आधारपर जीवन धारण श्रीडूँगरजी करेंगे?' माता-पिताकी इस परेशानीको देखकर आपने भक्त श्रीड्रॅंगरजी जातिसे पटेल क्षत्रिय थे। कहा कि यदि मेरे दो भाई और हो जायँ तो क्या आप सन्तसेवामें आपकी बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु आपके लोग मुझे विरक्त हो जानेकी आज्ञा दे देंगे? यह सुनकर पिताको यह सब व्यर्थ लगता था। अत: आप पितासे छिपाकर सन्तोंको खिलाने-पिलानेमें धन खर्च कर माता-पिता हँस पड़े; क्योंकि तबतक उनकी पर्याप्त अवस्था हो चुकी थी। परंतु आपकी वाणी सत्य सिद्ध दिया करते थे। इस प्रकार आपने जब बहुत-सा धन हुई। कुछ दिनों बाद भगवत्कृपासे सन्तदास और व्यय कर दिया तो यह बात आपके पिताजीको भी माधवदास नामक दो भाइयोंका जन्म हुआ। उनके कुछ मालूम हुई और क़ुद्ध होकर उन्होंने आपको घरसे बड़े हो जानेपर आपने पुन: माता-पितासे संन्यासकी निकाल दिया। यद्यपि अब आपके पास अर्थाभाव हो गया था, फिर भी आपकी सन्तसेवा बदस्तूर जारी अनुमित माँगी और मौन स्वीकृति प्राप्तकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी शरणमें चले गये। आपने रही। यहाँतक कि आपने अपनी पत्नीके आभूषणतक श्रीगुरुदेवजीसे विरक्त दीक्षा ली और भजन-साधन करने बेंचकर उससे सन्तोंकी सेवा की। श्रीपदारथजी लगे। आपने अनेक अलौकिक कार्य किये और वैष्णव धर्मको ध्वजा फहरायी। श्रीपदारथजी महाराज बडे ही उच्चकोटि के श्रीऊदारामजी गृहस्थ सन्त थे। सन्तोंमें ही नहीं, अपितु सन्तवेषमें भी श्रीऊदारामजीका जन्म वैश्यकुलमें हुआ था। आप आपको बड़ी निष्ठा थी। एक बार एक ठग किसी परम भगवद्धक्त और सन्तसेवी थे। आपकी पत्नी भी सन्तसेवी विणक्के यहाँ सन्तवेषमें रहने लगा, थोड़े ही परम भागवती और पतिपरायणा थीं। एक पुत्रके जन्मके दिनमें वह वणिक्-परिवारका विश्वासपात्र बन गया। बाद आप दम्पतीने निश्चय किया कि अब पितृ-ऋणसे एक दिन मौका पाकर वह विणक्का सारा माल-मत्ता उऋण होनेके लिये सन्तान हो गयी है, अत: शेष समय लेकर चम्पत हो गया। वणिक्-पत्नीने जब देखा कि भगवद्भजन और सन्तसेवामें ही बिताना चाहिये। यह तिजोरी खुली है और सारी धन-सम्पत्ति गायब है, तो निश्चयकर पति-पत्नी भगवद्भजन और साधु-सेवामें रत वह चीख-चीखकर रोने-चिल्लाने लगी। उसका रोना-हो गये। आपकी सन्तसेवामें निष्ठा और ख्यातिसे जाति-चिल्लाना सुनकर राजकर्मचारियोंने ठगका पीछा किया। बिरादरीके लोग आपसे ईर्ष्या करने लगे। उन लोगोंने जब ठगको अपने बचनेका कोई उपाय न सूझा तो वह राजाके पास झूठी शिकायत कर दी कि ऊदारामके पास आपके ही घरमें घुस आया। उसे राजकर्मचारियोंके

छप्पय ९७] * सच्चे	ॱसन्त∗ ३२३	
**************************************		
भयसे भयभीत देखकर आपको कुछ दालमें तो काला	बुद्धि शुद्ध हो गयी। इसी प्रकार आपने अनेक	
लगा, पर सन्तवेषके प्रति निष्ठा होनेके कारण उसे अपने	कुमार्गगामियोंको भगवद्भक्ति-पथका पथिक बना दिया।	
घरमें छिपा लिया और राजकर्मचारियोंके वापस चले	श्रीविमलानन्दजी	
जानेके बाद उससे सारी घटना सच-सच बतानेको	•	
कहा। समस्त वस्तुस्थितिसे अवगत होनेपर आपने	थे। नामके अनुरूप ही आपका हृदय बड़ा ही निर्मल था	
विणक्का सारा धन उसके घर भिजवा दिया और ठगको	और आपके सम्पर्कमें आनेवाले प्राणी भी मनकी	
भगवान्का चरणामृत एवं प्रसाद दिया, जिससे उसकी	दुर्वासनाओंसे मुक्त हो जाया करते थे।	
सच्चे	सन्त	
जतीराम रावल्य स्याम	खोजी सँतसीहा।	
दल्हा पद्म मनोरत्थ राँव		
जाड़ा चाचा गुरू स	•	
पुरुषोत्तम सों साच चतुर कीता मन कौ जिहि मेट्यो आपा।।		
मति सुंदर धीधांगश्रम स		
करुना छाया भक्ति फल ए		
•		
श्रीभगवान्ने इन भक्तोंको वृक्षरूप रचा। इन सन्तरूपी	श्रीजाड़ाजी, श्रीचाचा गुरुजी, श्रीसवाईजी, श्रीचाँदाजी,	
वृक्षोंमें इनकी करुणा ही छाया है और इनकी भक्ति ही	श्रीनापाजी, भगवान् पुरुषोत्तमके सच्चे भक्त श्रीपुरुषोत्तमजी,	
फल है। इनके ये नाम हैं—श्रीजतीरामजी, श्रीरावल्यजी,	श्रीचतुरजी, श्रीकीताजी, जिन्होंने अपने मनका अहं	
श्रीस्यामजी, श्रीखोजीजी, सन्त श्रीसीहाजी, श्रीदल्हाजी,	सर्वथा मिटा डाला था—इन सभी भक्तोंकी बुद्धि बड़ी	
श्रीपद्मजी, श्रीमनोरथजी, श्रीराँका-बाँकाजी, श्रीद्यौगूजी,	सुन्दर थी। ये संसाररूपी रंगमंचपर श्रमरूपी ध्रीङ्-ध्राङ्	
जो जिह्वासे निरन्तर भगवन्नाम जप किया करते थे।	<u> </u>	
इनमेंसे कतिपय भक्तोंके पावन चरित्र इस प्रका		
श्रीखोजीजी	अस्थिकलशको गंगाजीमें प्रवाहित कर आओ, जिससे	
श्रीखोजीजी मारवाड़-राज्यान्तर्गत पालड़ी गाँवके	तुम भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाओ। इसपर आपने	
निवासी थे। आप जन्मजात वैराग्यवान् और भगवदनुरागी	कहा—वैष्णवजन भगवन्नामका जहाँ उच्चारण करते हैं,	
होनेके कारण बचपनसे ही गृहकार्यमें उदासीन और	वहाँ गंगाजीसहित सारे तीर्थ स्वयं प्रकट हो जाते हैं।	
भगवद्भजन तथा साधुसंगमें रमे रहते थे। इससे आपके	जब भाइयोंने जबरदस्ती भेजा तो आपने सन्तोंको साथ	
भाइयोंकी आपसे नहीं पटती थी और वे लोग आपको	लिया और भगवन्नामकीर्तन करते हुए अस्थिकलश	
निकम्मा ही मानते थे। एक बार आपके गाँवमें एक	लेकर गंगाजीको चल दिये। मार्गमें आपको स्वर्णकलश	
सन्तमण्डली आयी हुई थी, आप रात-दिन सन्तों की	लिये कुछ दिव्य नारियाँ दिखायी दीं। जब आप उनके	
सिन्निधमें रहकर कथावार्ता और सत्संगमें लगे रहते थे।	समीपसे गुजरने लगे तो वे पूछने लगीं—'भक्तवर! आप	
इसी बीच दुर्भाग्यसे एक दिन अचानक आपके पिताका	कहाँ जा रहे हैं?' आपने कहा—'मैं पिताजीके	
स्वर्गवास हो गया। जब सारे और्ध्वदैहिक कार्य सम्पन्न	अस्थिकलशको श्रीगंगाजीमें प्रवाहित करने जा रहा हूँ।'	
हो गये तो भाइयोंने आपसे कहा कि पिताजीके	उन दिव्य नारियोंने कहा—'हम गंगा–यमुना आदि	

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क नदियाँ ही हैं, आप अपने पिताजीके अस्थिकलशका बादमें आये जब इनको समस्त वृत्तान्त विदित हुआ तो यहीं विसर्जन कर दीजिये और स्वयं स्नानकर घर चले जहाँ श्रीगुरुजीने लेटकर शरीर छोडा था, श्रीखोजीजीने जाइये।' आपने ऐसा ही किया और भाइयोंकी प्रतीतिके भी वहीं पौढ़कर ऊपर देखा तो इन्हें एक पका हुआ लिये एक कलश जल भी लेते गये। आम दिखायी पड़ा। इन्होंने उस आमको तोड़कर उसके श्रीखोजीजीके श्रीगुरुदेव भगवच्चिन्तनमें परम प्रवीण दो टुकड़े कर दिये। उसमेंसे एक छोटा-सा जन्तु थे। उन्होंने अपने शरीरका अन्तिम समय जानकर अपनी (कीड़ा) निकला और वह जन्तु सबके देखते-देखते मुक्तिके प्रमाणके लिये एक घण्टा बाँध दिया और सभी अदृश्य हो गया, घण्टा अपने-आप बज उठा। शिष्य-सेवकोंसे कह दिया कि हम जब श्रीप्रभुकी प्राप्ति हुआ यूँ कि श्रीखोजीजीके गुरुदेव तो प्रथम ही प्रभुको कर लेंगे तो यह घण्टा अपने-आप बज उठेगा। यही प्राप्त कर चुके थे, यह सर्व प्रसिद्ध है। परंतु बादमें शरीर-मेरी मुक्तिका प्रमाण जानना। परंतु आश्चर्य यह हुआ कि त्यागके समय अच्छा पका हुआ फल देखकर, भगवान्के भोग योग्य विचारकर उनके मनमें यह नवीन अभिलाषा उन्होंने शरीरका त्याग तो कर दिया, परन्तु घण्टा नहीं बजा। तब शिष्य-सेवकोंको बड़ी चिन्ता हुई। श्रीगुरुदेवजीके उत्पन्न हुई कि इसका तो भगवानुको भोग लगना चाहिये। शरीर-त्यागके समय श्रीखोजीजी स्थानपर नहीं थे। ये । भक्तकी उस इच्छाको भक्तवश्य भगवान्ने सफल किया। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं— खोजीजू के गुरु हरि भावना प्रवीन महा देह अन्त समैं बांधि घण्टासो प्रमानियै। पावैं प्रभु जब तब बाजि उठै जानौ यही पाये पै न बाजो बड़ी चिन्ता मन आनियै॥ तन त्याग बेर नहीं हुते फेरि पाछे आये वाही ठौर पौढ़ि देख्यौ आँब पक्यौ मानियै। तोरि ताके टूक किये छोटौ एक जन्तु मध्य गयौ सो बिलाय बाजि उठो जग जानियै॥ ३९९॥ शिष्यकी तौ योग्यताई नीके मन आई अजू गुरुकी प्रबल ऐपै नेकु घट क्यों भई। सुनौ याकी बात मन बात वित गित कही सही लै दिखाई और कथा अति रसमई॥ ये तौ प्रभु पाय चुके प्रथम प्रसिद्ध पाछे आछो फल देखि हरि जोग उपजी नई। इच्छा सो सफल श्याम भक्तवश करी वही रही पूर पच्छ सब बिथा उरकी गई॥४००॥ श्रीराँका-बाँकाजी भरी थैली डाल दी और स्वयं तथा श्रीनामदेवजी दोनों भक्त श्रीराँकाजी पति थे और भक्तिमती श्रीबाँकाजी जंगलमें छिप गये। उनकी पत्नी थीं। ये दोनों भागवत पति-पत्नी पंढरपुरमें इतनेमें श्रीराँका-बाँकाजी दोनों उसी मार्गसे आये। निवास करते थे। इन दोनोंके हृदयमें सिवा भगवान्के आगे-आगे पति श्रीराँकाजी थे और पीछे-पीछे उनकी और कुछ भी चाह नहीं थी। इनकी रीति-रहनी कुछ पत्नी श्रीबाँकाजी थीं। एकाएक श्रीराँकाजीने मार्गमें पड़ी हुई मुहरोंसे भरी हुई थैली देखी। देखकर विचार किया विलक्षण ही थी। जंगलसे लकड़ियाँ बीनकर लाते और उन्हींको बेचकर अपनी नित्य नवीन जीविका कि मेरी पत्नी स्त्री जाति है, वैसे यद्यपि निष्काम है फिर भी कभी-कभी दृष्टिपथमें आनेपर लौकिक वस्तुओंमें भी करते थे। एक बार भक्तवर श्रीनामदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की कि भक्त राँका-बाँकाका गरीबीका मन चलायमान हो जाता है। अत: उन्होंने शीघ्रतापूर्वक दु:ख दूर कर दीजिये। भगवान्ने कहा—'मैंने बहुत उस थैलीपर धूल डाल दी। श्रीबाँकाजीने पतिसे पूछा— उपायोंसे इन्हें देना चाहा, परंतु ये लेते ही नहीं, यदि 'अजी, आपने यहाँ पृथ्वीपर झुककर क्या किया है?' नहीं मानो तो मेरे संग चलो, मैं इनकी निष्कामता तब श्रीराँकाजीने सत्य बात बता दी। तब श्रीबाँकाजीने <del>[cddpdd]</del>ipntplisecuplasexvprinttes://dseqpoldharreal/MADsqdVITH非包升岳BYAAVinaseh&Six

छप्पय ९७, कवित्त ४०३] * सच्चे	`सन्त* ३२५
**************************************	
यह सुनकर श्रीराँकाजी बोले—'लोग मुझे राँका और	•
तुमको बाँका कहते हैं, सो सत्य ही मैं राँका अर्थात् रंक	· ·
ही हूँ और तुम बाँका अर्थात् श्रेष्ठ मुझसे बढ़कर हो।	
श्रीप्रियादासजीने राँका-बाँका-दम्पतीकी निस्पृहता	·
राँका पति बाँका तिया बसै पुर पंढरमें उर	
लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करैं धरैं	
विनती करत नामदेव कृष्णदेव जू सों कीजै	3 °
चलो लै दिखाऊँ तब तेरे मन भाऊँ रहे बन	•
आये दोऊ तिया पति पाछे बधू आगे स्वामी अ	·
जानी यों जुबति जाति कभूँ मन चिल जात य	σ,
पूछी अजू कहा कियौ भूमिमें निहुरि तुम क	<u>.</u>
कहैं मोसों रांका ऐपै बांका आज देखी तुही स्	गुनि प्रभु बोले बात सांची है हमारियै॥ ४०२॥
भगवान्की जीत हुई, श्रीनामदेवजी हार गये। फिर	भगवान्के संग श्रीनामदेवजीको देखकर श्रीराँकाजीने
भगवान्ने एक और बात कही कि 'यदि तुम्हारे मनमें विशेष	झुँझलाकर कहा—'अरे मूड़फोरा! श्रीप्रभुको इस प्रकार
परिताप है कि श्रीराँका-बाँकाजीकी सहायता करनी ही	वन-वन भटकाया जाता है ?' भगवान्ने राँकाजीसे कुछ
चाहिये तो चलो इनके लिये लकड़ी बटोरें।' फिर	माँगनेका अनुरोध किया। तब वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने
श्रीभगवान् और श्रीनामदेवजीने लकड़ियाँ बटोरीं। तदुपरान्त	लगे कि 'मुझे आपकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं
श्रीराँका और बाँकाजी लकड़ी बीनने आये तो जहाँ-तहाँ	चाहिये।' तब श्रीनामदेवजीने हाथ-जोड़कर इनसे कहा
लकड़ियोंका ढेर देखा तो विचार किया कि हमसे पहले ही	कि 'अच्छा और कुछ नहीं तो प्रभुका रुख रखते हुए प्रभुका
कोई बटोर गया है। फिर तो इनका मन ऐसा भयभीत हुआ	एक प्रसादी वस्त्र ही शरीरपर धारण कर लीजिये।' यद्यपि
कि दो लकड़ियाँ भी एक जगह होतीं तो उन्हें हाथसे नहीं	इतनेसे भी श्रीराँका-बाँकाजीको लगा कि मेरे सिरपर भारी
छूते। तब तो भगवान् श्यामसुन्दरने प्रकट होकर दर्शन	बोझ पड़ गया, परंतु उन्होंने भक्त और भगवान्की रुचि
ू दिया। श्रीराँका-बाँकाजी श्रीठाकुरजीको घर लिवा लाये।	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
श्रीप्रियादासजी इस घटनाका एक कवित्तमें इस प्रव	
नामदेव हारे हरिदेव कही और बात जो पै	
आयै दोऊ बीनिबेको देखी इक ठौरी ढेरी द्वै	
तब तौ प्रगट श्याम ल्याये यों लिवाय घर देरि	•
विनती करत करजोरि अंग पट धारौ भारौ	बोझ पर्स्यौ लियौ चीरमात्र हेरियै॥ ४०३॥
श्रीयतीरामजी ।	एक बारकी बात है, किसी बादशाहकी सवारी
श्रीयतीरामजी महाराज श्रीरामानन्दी वैष्णव सम्प्रदायके	कहीं जा रही थी; साथमें बड़ा लाव-लश्कर भी था। उन
प्रवर्तक श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान	लोगोंको किसी एक ऐसे आदमीकी आवश्यकता थी, जो
शिष्योंमेंसे एक श्रीसुखानन्दाचार्यजीके शिष्य थे। आप	सामानके एक बड़े गट्टरको सिरपर लादकर चले। आप
श्रीभगवान्के नाम-गुणगानमें मग्न रहा करते थे, सदा	अपनी मस्तीमें घूमते हुए उधर जा निकले। फिर क्या
भाव-जगत्में रहनेके कारण सामान्यजनोंको आप उन्मत्तकी	था, बादशाहके यवन सिपाहियोंने इन्हें ही पकड़कर
तरह प्रतीत होते थे।	इनके सिरपर गट्टर रखवा दिया। कुछ तो इनकी

३२६ * यो मद्भक्तः	स मे प्रियः * [ भक्तमाल-अङ्क
****************	
भावावस्था और कुछ गट्ठर भी भारी था, अतः एक	पर्याप्त संख्यामें आ जाया करते थे। एक बार ऐसा
जगह आप लड़खड़ा गये और गट्ठर गिर पड़ा। अब तो	संयोग बना कि तीन दिनतक आपके पास बाँटनेके लिये
वे दुष्ट सिपाही इन्हें मारने लगे। आप तो क्रोध-शोक	प्रसाद ही न रहा। इससे आपको बड़ी चिन्ता हुई, साथ
आदि विकारोंसे मुक्त थे, परंतु अपने भक्तकी ऐसी	ही दु:ख भी हुआ। आपको इस प्रकार चिन्तित देख
अवमानना और सिपाहियोंकी दुष्टता सर्वशक्तिमान् भगवान्से	चौथे दिन भगवान् स्वयं बालक बनकर आये और
न सही गयी। अचानक असंख्य गिरगिट वहाँ प्रकट हो	सबको उनकी इच्छाके अनुसार इच्छाभर लड्डू वितरित
गये और यवन सिपाहियोंको काटने लगे। वे जिधर भी	किये और फिर रात्रिमें आपसे स्वप्नमें कहा कि अब
भागते उधर ही गिरगिट प्रकट होकर उन्हें काटने लगते।	आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रसाद न
सिपाहियोंकी यह दुर्दशा देखकर बादशाह समझ गया	रहनेपर मैं स्वयं वेश बदलकर प्रसाद बाँटा करूँगा, आप
कि यह हिन्दू फकीर सिद्ध महापुरुष है। फिर तो वह	बस कीर्तन कराइये। अब भगवान् प्रतिदिन वेश बदलकर
रथसे उतरकर तुरंत आपके चरणोंमें गिर पड़ा और क्षमा	आपके कीर्तनमें सम्मिलित होने लगे।
माँगने लगा। इसपर आपने कहा—भाई! मैं आपसे	श्रीदलहासिंहजी
नाराज ही कहाँ हूँ, जो क्षमा कर दूँ! जो आपपर नाराज	राजस्थानमें एक ग्राम है, खीचीबाड़ा।
है और दण्ड दे रहा है, उससे क्षमा माँगो।	श्रीदलहासिंहजी वहींके निवासी थे। जातिसे यद्यपि आप
श्रीरामरावलजी	क्षत्रिय थे, फिर भी आपकी वृत्ति अहिंसक थी और
श्रीरामरावलजी महाराज भगवान् श्रीरामके अनन्य	आपने सन्तसेवाका व्रत ले लिया था। सन्त-सेवामें
भक्त थे। आप सदा एकान्त स्थानमें बैठे भगवच्चिन्तनमें	आपके घरकी स्थिति ऐसी हो गयी कि पेट पालना भी
मग्न रहा करते थे। आपका समाजमें सम्मान भी बहुत	मुश्किल हो गया। इसी बीच एक रिश्तेदारीसे भात
था। यह देखकर एक ऐंद्रजालिक (जादूगर)-को	भरनेका निमन्त्रण आ गया। अब तो आपका दिनका चैन
आपसे ईर्ष्या हो गयी, वह आपको भगानेके लिये नाना	और रातकी नींद गायब हो गयी। आपकी ऐसी स्थिति
प्रकारके उपद्रव करने लगा। परंतु भला माया जिसकी	देखकर नरसीका भात भरनेवाले भक्तवत्सल भगवान्को
दासी है, उसके भक्तको क्षुद्र बाजीगरकी ये कपट चालें	बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने स्वप्नमें आपसे कहा कि
क्या भयभीत कर पातीं! अन्तमें उसे इस बातका भान	तुम्हारे घरके पासमें ही एक टीला है, उसमें अथाह
हो गया कि ये पहुँचे सन्त और सिद्ध महापुरुष हैं, अत:	सम्पत्ति भरी पड़ी है, उसे खोद लो और खूब सन्त-सेवा
इनके शरणागत होकर शिष्य हो गया। इसी प्रकार आपने	करो तथा भात भरो। फिर तो भगवान्का संकेत समझकर
भगवत्पथसे भटके अनेक प्राणियोंको अपने आचरणसे	आपने वैसा ही किया। टीलेमेंसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई,
सही राह दिखायी।	जिससे आपने जीवनभर सन्तसेवा की।
श्रीसीहाजी	श्रीपद्मजी
भक्त श्रीसीहाजी बड़े ही नामनिष्ठ सन्त थे और	श्रीपद्मजी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। आपके
सदा नाम-संकीर्तन करते रहते थे। आपका संकीर्तन	पास भगवान् विष्णुको एक सुवर्ण-प्रतिमा थी, जिसकी
इतना रसमय होता था कि स्वयं भगवान् भी विभिन्न वेश	वे आराधना करते थे। एक बारकी बात है, आप सुवर्ण-
बनाकर उसमें आनन्द लेने पहुँच जाया करते थे। आप	प्रतिमाको एकान्तमें रख उसकी सेवा-पूजा कर रहे थे;
स्वयं तो कीर्तन करते ही थे, गाँवके बालकोंको भी	सहसा एक चोरकी कुदृष्टि उसपर पड़ गयी। उसने
बुलाकर कीर्तन कराते थे। बालकोंको कीर्तनके अन्तमें	सुनसान एकान्त स्थान देखकर वह सुवर्ण-प्रतिमा और
आप प्रसाद दिया करते थे, अतः वे भी खुशी-खुशी	उसपर चढ़े आभूषण भी छीन लिये और भाग चला।

छप्पय ९७] \* सच्चे सन्त \* \* \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* अब तो आपके प्राण विकल हो उठे, अत्यन्त आर्त सन्तसेवाके लिये विविध प्रकारके उद्योग करके बडे होकर आप भगवानुको पुकारने लगे। भक्तवत्सल भगवानुसे परिश्रमसे धनोपार्जन करते थे, अतः लोग आपको भक्तका यह दु:ख देखा न गया। उन्होंने कुछ ऐसी उद्योगीजी कहते थे। जनसाधारणमें वही नाम बिगड़कर लीला की कि उस चोरका जूता उसके पैरसे निकलकर द्यौगूजी हो गया। आप बड़े ही सरल स्वभावके व्यक्ति उसके सिरपर पड़ने लगा। इस संकटसे बचनेके लिये वह थे। गृहस्थ होते हुए भी सांसारिकतासे दूर, केवल भगवद्भजन और सन्तसेवासे ही प्रयोजन रखते थे। इधर-उधर बहुत दौडा पर जिधर जाता, उधर ही उसपर जूता पड़ता। अन्तमें वह गिरता-पड़ता आपके पास श्रीचाचागुरु आया और प्रतिमा तथा सभी आभूषण वापसकर चरणोंमें श्रीचाचागुरुका वास्तविक नाम 'क्षेमदास' था। पड़कर क्षमा माँगी। मूर्ति पाते ही आप ऐसे प्रसन्न हो आप सभी सन्तोंको चाचागुरु कहते थे, अतः आपका गये, मानो मृतशरीरमें पुन: प्राण प्रविष्ट हो जायँ। आपने नाम श्रीचाचागुरु हो गया। आप बड़े ही सन्तसेवी उस दुष्ट चोरको तुरंत ही क्षमा कर दिया। आपके क्षमा सद्गृहस्थ थे। आपके भक्तिभाव और सरल स्वभावके कारण आपके गाँववासियोंकी आपपर बडी श्रद्धा थी। करते ही चोरपर जूते पड़ने अपने-आप बन्द हो गये। ऐसे परम कारुणिक और सन्तहृदय भक्त थे श्रीपद्मजी! जब आपके यहाँ सन्त लोग आते तो आपके गाँववाले श्रीमनोरथजी भी उनके लिये यथाशक्ति सीधा-सामान दे जाते थे और श्रीमनोरथजी जातिके ब्राह्मण थे और बड़े ही सम्यक् रूपसे सन्तसेवा होती थी। इस प्रकार यह क्रम सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आपके एक कन्या थी। सयानी बहुत दिनोंतक चलता रहा, परंतु जब आपके यहाँ रोज होनेपर आपने उसका विवाह एक भक्त ब्राह्मणसे तय किया, ही सन्तमण्डली आने लगी तो गाँववाले भी परेशान परंतु उसके गरीब होनेसे कन्याकी माता और उसका मामा होकर कहने लगे कि अब तो आपके यहाँ रोज ही वहाँ विवाह नहीं करना चाहते थे। वे दोनों उसका एक धनी सन्तमण्डली आती है, हम बाल-बच्चेवाले लोग हैं, कहाँतक सहयोग करें। गाँववालोंकी इस प्रकारकी बात ब्राह्मणसे विवाह करना चाहते थे, परंतु वह अभक्त था, सुनकर आपको बड़ी निराशा हुई; क्योंकि आपके भी इसलिये आपको पसन्द नहीं था। उधर वह अभक्त ब्राह्मण दुष्ट और लम्पट भी था, उसने ठीक विवाहके दिन घरमें कुछ शेष नहीं बचा था। आपको चिन्तामें बलपूर्वक कन्याका अपहरण कर लिया। इससे आपको देखकर भगवान्की दिव्य वाणी हुई कि तुम्हारे पास जो बहुत दु:ख हुआ कि मेरी कन्या ऐसे अभक्त और धरोहरके रूपमें दूसरेका रजतपात्र रखा है, उसीको भगवद्विमुख दुष्ट व्यक्तिके साथ कैसे गुजारा करेगी? यह बेंचकर सन्तसेवा करो, कोई समस्या आयेगी तो मैं सोचकर आप अपने आराध्यदेवकी मूर्तिके पास जाकर सँभाल लूँगा। आपने तुरंत उस रजतपात्रको बेंच दिया, बिलख-बिलखकर रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान्से अपने जिससे पर्याप्त धनकी प्राप्ति हो गयी और उससे आप भक्तका यह दु:ख न देखा गया। उन्होंने तुरंत उस अभक्तके सन्तसेवा करने लगे। घरसे कन्याको लाकर आपके सम्मुख उपस्थित कर दिया। श्रीसवाईसिंहजी श्रीसवाईसिंहजी बड़े ही सन्तसेवी और परोपकारी आपने तुरंत उस कन्याका भक्त ब्राह्मणके साथ विवाह कर दिया। इस अद्भुत चमत्कारको देखकर सब लोग बहुत स्वभावके क्षत्रिय राजपूत थे। एक बार एक भक्त-दम्पती प्रभावित हुए। आपके विपक्षी भी आपके शरणागत हो गये वन-मार्गसे कहीं जा रहे थे, उनके पास धन-सम्पत्ति और भक्त-भगवत्सेवामें लग गये। देखकर लुटेरोंने उन्हें लूट लिया। उन भक्त-दम्पतीने श्रीद्यौगूजी पासके गाँवमें जाकर गुहार लगायी। गाँवके अन्य लोगोंको तो लुटेरोंका नाम सुनते ही साँप सूँघ गया, परंतु श्रीद्यौगूजी बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आप

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क सवाईसिंहजीसे भक्तोंका यह कष्ट न देखा गया। उन्होंने आपका जन्म खोसाके निकट एक ग्राममें हुआ था और तुरंत अपने अस्त्र-शस्त्र लिये और घोड़ेपर सवार होकर आप जातिसे माली थे। आपके यहाँ सदैव सन्तोंकी अकेले ही लुटेरोंके पीछे सरपट दौड़ चले और ललकारकर मण्डलियाँ आती ही रहती थीं और कथा-कीर्तन एवं कहा कि धन-सम्पत्ति छोडकर भाग जाओ, नहीं तो सत्संग होता रहता था। प्रभुकृपासे कभी किसी प्रकारकी प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा; सन्तोंको दु:ख देनेवाला कभी कमी नहीं होती थी। सुखी नहीं रह सकता। अब तो वे आपपर चारों ओरसे श्रीनापाजी गृहस्थ थे, आजीविकाके लिये आप प्रहार करने लगे। आपके प्राण संकटमें पड़ गये, परंतु खेती करते थे। आपका ज्यादातर समय सन्तसेवामें ही बीतता था, अतः खेत सूखने लगे। आप-जैसे भक्तका तभी भगवत्कृपाका चमत्कार हुआ। लुटेरोंके अस्त्र-शस्त्र इनके शरीरका स्पर्श करते ही खण्ड-खण्ड हो दु:ख भगवान्को भी बर्दाश्त नहीं हुआ और वे आपके गये। लुटेरोंको यह देखकर लगा कि हमने किसी पुत्रका रूप धारणकर आये और बोले—'पिताजी! भक्तको लूट लिया है, इसीलिये हमपर भगवानुका ही आपको अब रात्रिमें खेतोंकी सिंचाई करनेकी आवश्यकता कोप हो गया है। तब वे लोग आपसे रक्षाकी प्रार्थना नहीं है, अब आप निश्चिन्त रहिये और मैं दिनमें ही करते हुए शरणागत हो गये। उन लुटेरोंने न केवल सारा खेतोंकी सिंचाई और खेतीका काम कर दिया करूँगा। धन वापस कर दिया, बल्कि लूट-डकैतीका काम भी आप प्रसन्नतापूर्वक सन्तसेवा कीजिये।' पुत्रकी इस छोड दिया और सभी भगवद्भक्त हो गये। कर्तव्यनिष्ठा और सन्तसेवाके प्रति आदर-भाव देखकर श्रीचाँदाजी आपको बड़ी प्रसन्नता हुई और आप निश्चिन्त होकर श्रीचाँदाजीका स्थितिकाल विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दी सन्तसेवा करने लगे। है, आप भगवान्के परम अनुरागी और वीर प्रकृतिके सन्त एक दिन आपने देखा कि पुत्र घरपर सो रहा है, थे। उस समय देशमें यवनोंका राज्य था। वे लोग आपने सोचा थका होगा, इसलिये आराम कर रहा है हिन्दुओंको पददलित करनेके लिये उनके आस्थाके केन्द्र और यही सोचकर स्वयं खेतपर चले गये। वहाँ देखा मठ-मन्दिरोंको नष्ट कर देते थे। एक बार यवनसेना मठ-तो पुत्र खेतोंकी सिंचाई कर रहा था, आपको बडा मन्दिरोंको ध्वस्त करती हुई बढ़ रही थी, उसने चन्द्रसेनपर आश्चर्य हुआ। चुपचाप घर लौट आये और यहाँ देखा आक्रमण कर दिया। तब आपने धर्मरक्षार्थ बहुत-से तो पुत्र सो रहा था। अब तो आप समझ गये कि मेरे वीरोंको एकत्र किया और बडी वीरताके साथ यवनोंसे पुत्रका वेश धारणकर स्वयं परमपिता परमात्मा ही मेरे युद्ध किया। आपके प्रबल प्रहारोंसे यवनसेनाके पैर उखड़ खेतोंकी देखभाल कर रहे हैं। अब तो आप तुरंत ही गये और वह परास्त होकर तितर-बितर हो गयी। इसके वापस अपने खेतोंपर पहुँचे और पुत्ररूपधारी भगवान्का बाद आपने जोधपुरके गढ़में प्रवेशकर उसे सुरक्षित किया। हाथ पकड्कर कहने लगे—'प्रभो! मैं आपको पहचान वैशाख कु० १०, सं० १६२१ वि० की बात है, रामपोलसे गया, आप मेरे पुत्र नहीं स्वयं श्रीभगवान् हैं।' पुत्ररूपधारी निकलते हुए आपको यवनसेनाने घेर लिया और चारों भगवान्ने कहा—'अरे पिताजी! आप यह क्या कह रहे ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहार होने लगे। आपने अपने हैं ? मैं तो आपका पुत्र ही हूँ।' परंतु जब आप नहीं इष्टदेवका स्मरणकर ऐसा युद्ध किया कि एक भी यवन माने तो विवश होकर भगवानुको प्रकट होना पडा। जीवित न बचा। इस प्रकार श्रीचाँदाजी शास्त्र और शस्त्र आपने कहा-'प्रभो! आपको यह सब करनेकी क्या दोनोंसे धर्मरक्षा करनेवाले वीरव्रती भक्त थे। जरूरत थी?' प्रभुने कहा—'नापाजी! आप नित्य प्रति श्रीनापाजी हमारी और हमारे भक्तोंकी सेवा करते हैं, यदि हमने Hinghileng Diegograd, Server untergande server untergande de la surge Lind Ale Resource de la company de la compan छप्पय ९८. कवित्त ४०४ ] \* परोपकारी भक्त \* गया ? अरे ! मैं तो आपद्वारा की गयी सेवाका ब्याज भी | करनेवाली जातिमें हुआ था, परंतु पूर्वजन्मके संस्कारवश नहीं चुका पाया हूँ।' भक्तवत्सल प्रभुकी बातें सुनकर आपकी चित्तवृत्ति भगवत्स्वरूपमें लगी रहती थी। आपके प्रेमाश्र छलछला आये और हृदय परमानन्दसे साथ ही आपकी सन्तसेवामें बडी प्रीति थी, यहाँतक कि आप सन्तसेवाके लिये भगवद्धिक्तसे विमुख जनोंको गद्गद हो उठा। श्रीकीताजी जंगलमें लूट भी लिया करते थे और उससे सन्तसेवा श्रीकीताजी महाराजका जन्म जंगलमें आखेट करते थे। परोपकारी भक्त लिछमन लफरा लडू संत जोधापुर त्यागी। सूरज कुंभनदास बिमानी खेम बिरागी॥ भावन बिरही भरत नफर हरिकेस लटेरा। हरिदास अजोध्या चक्रपानि ( दियो ) सरजू तट डेरा॥ तिलोक पुखरदी बिज्जुली उद्धव बनचर बंसजे। पर अर्थ परायन भक्त ये कामधेनु कलिजुग्ग के॥९८॥ ये भक्तजन इस कलियुगमें भी बड़े ही परोपकारी । श्रीभावनजी, श्रीविरही भरतजी, श्रीनफरजी, श्रीहरिकेशजी तथा आश्रितजनोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कामधेनुके | लटेरा, श्रीहरिदासजी, श्रीअयोध्या-सरयू-तटवासी समान हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीलक्ष्मणजी, श्रीलफराजी, श्रीचक्रपाणिजी, श्रीतिलोक सुनारजी, श्रीपुखरदीजी, श्रीलड्डजी, जोधपुरके त्यागी श्रीसन्तजी, श्रीसूरजजी, श्रीबिज्जुलीजी, वनचर (श्रीहनुमान्) वंशमें उत्पन्न श्रीकुम्भनदासजी, श्रीविमानीजी, श्रीखेम वैरागीजी, श्रीउद्धवजी॥९८॥ इन परोपकारी भक्तोंमेंसे कुछ भक्तोंके चरित्र इस प्रकार हैं— श्रीलइइजी भेजा था। राजकर्मचारी एक गरीब ब्राह्मणके बालकको श्रीलड्डूजी महाराज बड़े ही परोपकारी एवं पकड़कर ले जा रहे थे। उसके माता-पिता करुण क्रन्दन भगवद्भक्त वैष्णव सन्त थे। दुसरेके दु:खोंको दुर करना कर रहे थे। उसी समय आप वहाँ पहुँच गये। दीन ब्राह्मण-आपका सहज स्वभाव था। आपके समयमें बंगाल दम्पती आपकी शरणमें आये और पुत्रकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणकी करुण प्रार्थना, ब्राह्मणीके क्रन्दन प्रान्तके एक गाँवमें प्रायः भगवद्विमुख नास्तिक लोग ही रहते थे। इन्हें हिंसा करनेमें लेशमात्रका भी पाप-भय और बालककी दीनता देखकर आपका सन्त हृदय द्रवित नहीं था; यहाँतक कि पशुबलि क्या, मानवबलि देनेमें भी हो उठा। आपने ब्राह्मण बालकको मुक्त करा दिया और उनको हिचक नहीं होती थी। उसकी जगहपर स्वयं बलिदान होनेके लिये तैयार हो गये। कहते हैं कि जिस समय आप उन विमुखोंके देश राजकर्मचारी आपको पकड़कर देवीके सम्मुख ले गये।

पहुँचे, उस समय वहाँके राजाने देवीको बलि देनेके लिये

देवी भक्तको बलिके लिये आया देखकर अत्यन्त कुपित हुईं और उन्होंने उन राजकर्मचारियोंका ही वध कर डाला।

किसी मनुष्यको पकडु लानेके लिये अपने कर्मचारियोंको ।

इस घटनाका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— लड्डू नाम भक्त जाय निकसे विमुख देश लेसहँ न सन्तभाव जानै पाप पागे हैं।

देवी कों प्रसन्न करें मानुस को मारि धरें लै गये पकरि तहां मारिबे कों लागे हैं॥ प्रतिमाको फारि बिकरारि रूपधारि आई लै कै तरवार मूंड काटे भीजे बागे हैं।

आगे नृत्य करै, दूग भरै साधु पांव धरै ऐसे रखवारे जानि जन अनुरागे हैं॥४०४॥

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क . इसका साध्-सन्तोंमें भाव नहीं है, अत: वहाँसे चल श्रीसन्तजी दिये। संयोगसे मार्गमें श्रीसन्तजी मिल गये। सन्तोंने भक्त श्रीसन्तजीका साधु-सेवामें बड़ा प्रेम था। पूछा—'आप कहाँ रहे ?' उस समय सन्तजीके हृदयमें इन्होंने गाँव-गाँवसे भिक्षा लाकर सन्त-सेवा करनेका साक्षात् भगवान् ही बैठकर बोले—'हमारी पत्नीने जो नियम ले रखा था। एक बार ये किसी गाँवमें भिक्षा कहा है, वह सत्य कहा है। सचमुच मेरे मनमें लेने गये थे। इसी बीच घरपर सन्तोंकी जमात आ गयी। सन्तोंने इनकी पत्नीसे पूछा कि 'सन्तजी कहाँ चूल्हेकी आँचका ही ध्यान हो रहा था।' फिर श्रीसन्तजी हैं?' तो पत्नीने प्रमादपूर्वक कहा कि 'वे चूल्हेमें सन्तोंको पुन: घर लौटा लाये और भगवत्प्रसाद पवाकर गये।' पत्नीकी वाणी सुनकर सन्त जान गये कि उन्हें आनन्दमें मग्न कर दिया। श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— सदा साधुसेवा अनुराग रंग पागि रह्यौ गह्यौ नेम भिक्षा व्रत गांव गांव जाय कै। आये घर संत पूछें तिया सों यों संत कहां ? 'संत चुल्हे मांझ' कही ऐसे अलसाय कै।। बानी सुनि जानी, चले मग सुखदानी मिले कही कित हुते? सो बखानी उर आय कै। बोली वह सांच, वही आंच ही कौ ध्यान मेरे आनिगृह फेरि किये मगन जिंवाय कै॥ ४०५॥ श्रीतिलोकजी सुनार श्रीतिलोकभक्तजी पूर्व देशके रहनेवाले थे और जातिके राजाकी कन्याके विवाहका दिन भी आ गया, परंतु सोनार थे। इन्होंने हृदयमें भक्तिसार—सन्त-सेवाका व्रत इन्होंने आभूषण बनानेके लिये जो सोना आया था, उसे धारण कर रखा था। एक बार वहाँके राजाकी लडकीका हाथसे स्पर्श भी नहीं किया। फिर इन्होंने सोचा कि समयपर विवाह था। उसने इन्हें एक जोड़ा पायजेब बनानेके लिये आभूषण न मिलनेसे अब राजा मुझे जरूर मार डालेगा, सोना दिया, परंतु इनके यहाँ तो नित्यप्रति अनेकों सन्त-अतः डरके मारे जंगलमें जाकर छिप गये। यथासमय राजाके चार-पाँच कर्मचारी आभूषण लेनेके लिये महात्मा आया करते थे, उनकी सेवासे इन्हें किंचिन्मात्र भी अवकाश नहीं मिलता था, अत: आभूषण नहीं बना पाये। श्रीतिलोकजीके घर आये। भक्तके ऊपर संकट आया जब विवाहके दो दिन ही रह गये और आभूषण बनकर जानकर भगवानुने श्रीतिलोक भक्तका रूप धारणकर अपने नहीं आया तो राजाको क्रोध हुआ और सिपाहियोंको संकल्पमात्रसे आभूषण बनाया और उसे लेकर राजाके पास आदेश दिया कि तिलोक सुनारको पकड़ लाओ। सिपाहियोंने पहुँचे। वहाँ जाकर राजाको पायजेबका जोड़ा दिया। तुरंत ही इन्हें पकड़कर लाकर राजाके सम्मुख कर दिया। राजाने उसे हाथमें ले लिया। आभूषणको देखते ही राजाके राजाने इन्हें डाँटकर कहा कि 'तुम बड़े धूर्त हो। समयपर नेत्र ऐसे लुभाये कि देखनेसे तृप्त ही नहीं होते थे। राजा आभूषण बनाकर लानेको कहकर भी नहीं लाये।' इन्होंने श्रीतिलोकजीपर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उनकी पहलेकी कहा—'महाराज! अब थोड़ा काम शेष रह गया है, अभी सब भूल-चूक माफ कर दी और उन्हें बहुत-सा धन आपकी पुत्रीके विवाहके दो दिन शेष हैं। यदि मैं ठीक पुरस्कारमें दिया। श्रीतिलोकरूपधारी भगवान् मुरारी इस समयपर न लाऊँ तो आप मुझे मरवा डालना'। प्रकार धन लेकर श्रीतिलोक भक्तके घर आकर विराजमान हुए। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है— पूरबमें ओकसो तिलोक हो सुनार जाति पायो भक्तिसार साधुसेवा उर धारियै। भूपके विवाह सुता जोरौ एक जेहरिकौ गढ़िबेकौ दियौ कह्यौ नीके कै सँवारियै॥ आवत अनन्त सन्त औसर न पावै किहूँ रहे दिन दोय भूप रोष यों संभारियै। ल्यावो रे पकरि, ल्याये, छाड़िये मकर, कही नेकु रह्यो काम आवै नातो मारि डारियै॥ ४०६॥

छप्पय ९८, कवित्त ४०८] \* परोपकारी भक्त \* आयो वही दिन कर छुयौ हूं न इन नृप करै प्रान बिन बन मांझ छिप्यौ जायकै। आये नर चारि पांच जानी प्रभु आँच गढ़ि लियौ सो दिखायौ सांच चले भक्तभायकै॥ भूपको सलाम कियो जेहरिकौ जोरौ दियौ लियो कर देखि नैन छोड़ैं न अघायकै। भई रीझि भारी सब चूक मेटि डारी धन पायो लै मुरारी ऐसे बैठे घर आयकै॥ ४०७॥ श्रीतिलोकरूपधारी भगवान्ने दूसरे दिन प्रात:काल 'जिसके समान त्रैलोक्यमें दूसरा कोई नहीं है।' फिर ही महान् उत्सव किया। उसमें अत्यन्त रसमय, परम भगवान्ने पूरा विवरण बताया। सन्तरूपधारी भगवान्के स्वादिष्ट अनेकों प्रकारके व्यंजन बने थे। साधू-ब्राह्मणोंने वचन सुनकर श्रीतिलोकजीके मनको शान्ति मिली। फिर खूब पाया। फिर भगवान् एक सन्तका स्वरूप धारणकर भगवत्प्रेममें मग्न श्रीतिलोकजी रात्रिके समय घर आये। घरपर साधु-सन्तोंकी चहल-पहल तथा घरको धन-धान्यसे झोलीभर सीथ—प्रसाद लिये हुए वहाँ गये, जहाँ श्रीतिलोक भक्त छिपे बैठे थे। श्रीतिलोकजीको प्रसाद देकर सन्त भरा हुआ देखकर श्रीतिलोकजीका श्रीप्रभुके श्रीचरणोंकी रूपधारी भगवान्ने कहा—'श्रीतिलोक भक्तके घर गया ओर और भी अधिक झुकाव हो गया। वे समझ गये कि श्रीप्रभुने मेरे ऊपर महान् कृपा की है, निश्चय ही मेरे किसी था। उन्होंने ही खूब प्रसाद पवाया और झोली भी भर दी।' श्रीतिलोक भक्तने पूछा—कौन तिलोक ? भगवानुने कहा— | महानु भाग्यका उदय हुआ है। श्रीप्रियादासजी श्रीतिलोकजीपर भगवान्की इस कृपाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं— भोरही महोछौ कियौ, जोई मांगे सोई दियौ नाना पकवान रसखान स्वाद लागे हैं। सन्तकौ सरूप धरि लै प्रसाद गोद 'भिर गये तहां' पावै जू तिलोक गृह पागे हैं॥ कौनसो तिलोक ? अरे दूसरो तिलोक मैं न बैन सुनि चैन भयो आये निसि रागे हैं। चहल पहल धन भर्यौ घर देखि ढर्यौ प्रभुपद कंज जानौ मेरे भाग जागे हैं॥ ४०८॥ श्रीलक्ष्मणजी एवं अलमस्त थे। एक बार श्रीगुरुदेवजीने आपको एक परम सन्तसेवी श्रीलक्ष्मणजी सन्तोंके रहनेके लिये आश्रमकी देख-रेखका भार सौंपा। यद्यपि इस कार्यमें निवास-स्थान बनवा रहे थे, छतका पटाव हो गया था, आपकी अभिरुचि बिलकुल नहीं थी, फिर भी परंतु वह अभी परिपक्व नहीं हुआ था कि छतकी श्रीगुरुदेवजीसे संकोचवश आप इनकार नहीं कर सके। आधारभूता एक बल्ली ट्रट गयी। लोगोंको बड़ी चिन्ता अतः कुछ दिन तक तो आपने जैसे-तैसे आश्रमका हुई कि अब तो छत गिर जायगी अथवा नीचेको धँस कार्य सँभाला, फिर दस दिनके लिये तीर्थयात्राका जायगी। अब तो इसे फिरसे बनवाना पड़ेगा आदि। बहाना बनाकर श्रीगुरुदेवजीसे आज्ञा लेकर आप आश्रमसे श्रीलक्ष्मणजीने सबको समझाया कि आप लोग चिन्ता निकले तो फिर लौटकर आश्रमपर गये ही नहीं। नहीं करें, श्रीहरिकृपासे कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। सचमुच श्रीगुरुजीने कुछ दिनतक तो इनकी प्रतीक्षा की, परंतु ये प्रात:काल जब सबने देखा तो बल्लीमें टूटनेका निशान जब नहीं आये तो उन्होंने प्रसंग चलनेपर इन्हें 'लफरा' भी नहीं था, छत ज्यों-की-त्यों दुरुस्त थी! सब लोग कहा। वही नाम पड़ गया। भगवान्की इस प्रत्यक्ष कृपापर आश्चर्य करने लगे। ऐसे श्रीकृम्भनदासजी अनन्य निष्ठावान् और सन्तसेवी भक्त थे श्रीलक्ष्मणजी! श्रीकुम्भनदास परम भगवद्भक्त, आदर्श गृहस्थ श्रीलफराजी (श्रीलफरा गोपालदेवाचार्यजी) और महान् विरक्त थे। वे नि:स्पृह्, त्यागी और महासन्तोषी आप निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी हरिव्यास-व्यक्ति थे। उनके चरित्रकी विशिष्ट अलौकिकता यह थी देवाचार्यजीके कृपापात्र थे। आप स्वभावसे बड़े विरक्त कि भगवान् साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ सखाभावकी

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* क्रीडाएँ करते थे। लगे। भगवान्से भक्तका यह महाश्रम देखा नहीं गया। कुम्भनदासका जन्म गोवर्धनके सन्निकट जमुनावतो तुरंत प्रभु-प्रेरणासे उस ब्राह्मणका चोरी गया बैल वहाँ ग्राममें संवत् १५२५ वि० में चैत्र कृष्ण एकादशीको आकर खड़ा हो गया, तब श्रीखेमदासजीने ब्राह्मणको हुआ था। वे गोरवा क्षत्रिय थे। उनके पिता एक साधारण क्षमादान देते हुए सन्त-सेवाका उपदेश दिया। ब्राह्मण श्रेणीके व्यक्ति थे। खेती करके जीविका चलाते थे। भी भक्त हो गया। कुम्भनदासने भी पैतृक वृत्तिमें ही आस्था रखी और श्रीहरिदासजी किसानीका जीवन ही उन्हें अच्छा लगा। श्रीहरिदासजी श्रीअयोध्याधाममें निवास करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी उनके दीक्षा-गुरु थे। आप भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। श्रीहरि-इच्छासे जो कुछ भी अपने-आप सहज रूपसे प्राप्त हो जाता, संवत् १५५० वि० में आचार्यकी गोवर्धन-यात्राके समय उन्होंने ब्रह्मसम्बन्ध लिया था। उसीसे सन्त-सेवा करते थे। एकबार सन्तोंकी बहुत बड़ी श्रीनाथजीके शृंगारसम्बन्धी पदोंकी रचनामें उनकी जमात इनके स्थानपर आयी। कृटीमें एक छटाँक भी विशेष अभिरुचि थी। महाप्रभु वल्लभाचार्यके लीला-सीधा-सामान नहीं था। ये बड़े चिन्तित हुए। तब इनकी प्रवेशके बाद कुम्भनदास गोसाईं विद्वलनाथके संरक्षणमें चिन्ता दुर करनेके लिये प्रभुने अपने श्रीचरणकमलसे रहकर भगवान्का लीला-गान करने लगे। विट्ठलनाथजी पाँच मुहरें प्रकट कर दीं। प्रभुकी ऐसी कृपा देख आप महाराजकी उनपर बड़ी कृपा थी। वे मन-ही-बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं मुहरोंसे उन्होंने खूब सन्तोंकी मन उनके निर्लोभ-जीवनकी सराहना किया करते थे। सेवा की। संवत् १६०२ वि० में अष्टछापके कवियोंमें उनकी श्रीउद्भवजी गणना हुई। अनन्य श्रीरामभक्त श्रीउद्धवजी स्वयं श्रीहरि और श्रीखेमदासजी हरिजन—दोनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहते ही थे, दुसरोंको भी यही उपदेश देते थे। इनके उपदेशसे प्राणिमात्रका क्षेम-कुशल चाहते हुए श्रीखेमदासजी बड़े भावसे सन्तसेवा करते थे। एक बार सन्तोंके आनेपर प्रभावित होकर एक राजाने सन्तसेवाका व्रत लिया था। एक वैश्यके यहाँसे सीधा-सामान लेकर आ रहे थे तो वेषमात्रमें उसकी अपार निष्ठा हो गयी थी। एक दुष्ट मार्गमें एक ब्राह्मणने व्यंग्य किया—'माला पहन लिये राजाकी इस निष्ठाका अनुचित लाभ उठाकर महलमें तिलक लगा लिये, बस, बाबाजी बन गये। कुछ करना रहने लगा। एक दिन मौका देखकर वह रात्रिके समय न धरना, फोकटका माल खाते हैं और मटरगश्ती करते राजमहलकी एक युवतीको ले भागा। इससे राजाको हैं। अरे, सच्चे साधु तो ये बैल हैं। इन्हें जो दो, जितना बड़ा रोष हुआ। उसने श्रीउद्धवजीको उपालम्भ दिया दो, उतना ही खाते हैं और खूब हल खींचते हैं, भार कि आपके कहनेसे मैंने सन्त-सेवा प्रारम्भ की थी और ढोते हैं।' श्रीखेमदासजीने मुसकुराकर कहा—'तुम ठीक देखिये ये सन्तवेषधारी ऐसे-ऐसे घृणित कार्य करते हैं। कहते हो। देखो, तुम्हारा एक बैल चोरी चला गया है, श्रीउद्भवजीने राजाको धैर्य बँधाया। निष्ठापर दुढ यदि मैं उसके बदले तुम्हारे हलमें चलूँ तब तो तुम मुझे रहनेके लिये जोर दिया और उस युवतीका आकर्षण सच्चा साधु मानोगे।' उसने कहा—'हाँ, यदि आप भी किया। श्रीहरि-कुपासे वह युवती आकाश-मार्गसे बैलका-सा परोपकार करें तो मैं मान लूँगा कि आप भी राजमहलमें आ गयी। तब तो राजाकी सन्तसेवामें और भी दृढ़ निष्ठा हो गयी तथा श्रीउद्धवजीके प्रति भी सच्चे सन्त हैं।' श्रीखेमदासजी सन्तोंकी व्यवस्था करके ुसांक्रीसांक्रक हांक्रुवर्त Server https://dec.gg/dharmai | श्रुक्ष वह भागा | LOVE BY Avinash/Sha

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीबीठलदासजी आदि अंत निर्बाह भक्त पद रज ब्रतधारी। रह्यो जगत सों ऐंड़ तुच्छ जानै संसारी॥ प्रभुता पति की पधित प्रगट कुल दीप प्रकासी। महत सभा मैं मान जगत जानै रैदासी॥ पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोबिंद जुग फल दिया। बिठलदास हरि भक्ति के दुहूँ हाथ लाडू लिया॥१७७॥ श्रीबीठलदासजीने भगवद्धक्तिके दोनों फलों। (अर्थात् श्रीसम्प्रदायमें श्रीरैदासजीकी प्रणालीसे सन्तसेवा (लोकमें सन्तसेवा परलोकमें प्रभुसेवा)-को प्राप्त करके) अपने कुलके दीपक हुए। सभी जानते थे कि किया। आपने आदिसे अन्ततक अर्थात् जीवनभर आप रैदासवंशी हैं, परंतु बड़ी-बड़ी सभाओंमें बड़े-बड़े भक्तोंकी चरणरजको प्रतिज्ञापूर्वक सिरपर धारण किया महापुरुष आपका सम्मान करते थे। भगवल्लीलापदोंको अर्थात् सब प्रकारसे सन्तोंकी सप्रेम सेवा की। अहंकारी पढ़ते-पढ़ते आपने शरीर छोड़ा और भगवद्धामको प्राप्त धनिकों और विमुखोंको आपने तुच्छ जाना, कभी किया। आपपर प्रसन्न होकर श्रीगुरु और गोविन्द उनकी खुशामद नहीं की। सर्वदा भगवद् बलपर उनसे दोनोंने दो फल दिये, अत: आपके दोनों हाथोंमें ऐंठकर ही चलते थे। आप प्रभुताके पतिकी पद्धतिमें | हरिभक्तिके लड्ड रहे॥ १७७॥ भगवद्धक्तोंके भक्त क्वाहब श्रीरँग सुमित सदानंद सर्वसु त्यागी। स्यामदास लघुलंब अनिन लाखै अनुरागी॥ मारू मुदित कल्यान परसबंसी नारायन। चेता ग्वाल गुपाल सँकर लीला पारायन॥ सन्त सेय कारज किया तोषत स्याम सुजान कों। भगवंत रचे भारी भगत भक्तनि के सनमान कों॥१७८॥ भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेके लिये भगवानुने इन । भक्त श्रीलाखाजी, मारु रागके प्रवीण गायक श्रीकल्याणनजी, सन्तोंको प्रकट किया। इन सन्तोंने भक्तोंकी सेवाके द्वारा | परसवंशमें उत्पन्न श्रीनारायणजी, श्रीचेताजी, श्रीग्वालजी, भगवान्को प्रसन्न किया। श्रीक्वाहबजी, सुन्दर मितवाले | श्रीगोपालजी और भगवान्की लीलाओंके प्रेमी श्रीशंकरजी— श्रीरंगजी, सन्तसेवाके लिये सर्वस्वका त्याग करनेवाले | इन भक्तोंने सन्तसेवा रूप महान् कार्य किया। उससे श्रीसदानन्दजी, लघुलम्ब (बौने) श्रीश्यामदासजी, अनन्य । सुजान श्यामसुन्दर सन्तुष्ट हुए॥ १७८॥ भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेवाले इन भक्तोंमेंसे कुछका चरित इस प्रकार है— श्रीसदानन्दजी । समझते थे। एक बार एक सन्त इनके पास आकर

आप बड़े प्रेमसे सन्त-सेवा करते थे। आप सर्वस्व बोले—मैं बड़ा अभागी हूँ। मेरे पास रहनेके लिये घर

त्यागकर भी सन्तोंको सन्तुष्ट करना अपना कर्तव्य | नहीं है। जो था वह भी छिन गया। खाने-पहननेके लिये

छप्पय १७८ ] \* भगवद्धक्तोंके भक्त \* जीवकी रक्षा कर रहे थे, अतः उन्हें चोट नहीं लगी। अन्न-वस्त्र नहीं है, अत: मेरे रहने और खाने-पीनेका प्रबन्ध कर दीजिये। श्रीसदानन्दजीने कहा—आप अपने इस चमत्कारसे प्रभावित होकर राजाने श्रीनारायणदासजीका विशेष सत्कार किया और इनके उपदेशोंको स्वीकार कुटुम्बके साथ आज ही मेरे स्थानमें आ जाइये, रहिये, खाइये। मैं अपने लिये वनमें एक झोपड़ी बना लुँगा। किया। केवल प्राणियोंके प्रति ही नहीं, वृक्षोंके प्रति भी ऐसा कहकर अपना सर्वस्व उसे सौंपकर स्वयं वनमें इनके मनमें करुणा थी। जाकर रहने लगे। भगवानुने अपने एक धनी भक्तको श्रीशंकरजी स्वप्नादेश दिया कि 'मेरा प्रिय भक्त सदानन्द वनमें रह सन्तसेवी श्रीशंकरजी एकबार अपने गाँवसे बाहर दूसरे गाँवमें गये हुए थे। वहाँपर आपने किसी सेठके रहा है। एक आश्रम बनवाकर उसमें उसे रखो।' उसने आश्रम बनवाकर इन्हें रखा और खर्चेके लिये सीमित द्वारपर कई साधुओंको देखा। निकट जाकर दण्डवत् सीधा-सामान भी देने लगा, पर इनके यहाँ सन्तोंकी भीड प्रणाम करनेके बाद पूछनेपर मालूम हुआ कि सन्तजन अधिक होती। कभी-कभी सामानकी कमी पड़ने लगी। गेहुँका आटा और कुछ घी भगवान्के भोगके लिये माँग रहे हैं और वह सेठ बेझड़के आटेकी पर्ची दे एक दिन आप उस स्थानको छोड़कर कहीं चले गये। इनके जाते ही साधुओंकी बड़ी जमात आ गयी। तब रहा है। श्रीशंकरजीने उससे कहा कि—तेरी गाँउसे भगवान सदानन्दजीका रूप धारण करके आये और क्या जा रहा है? पर्ची तुम्हें बनानी है। सामान उन्होंने सभी सन्तोंकी खूब सेवा की तथा आश्रमको पंचायती मिलना है। गेहुँका ही आटा और थोड़ा घी अन्न-धनसे भर दिया। फिर वैश्य भक्तका रूप बनाकर दे दो। सन्त-सेवा हो जायगी, इसमें तुम्हारी क्या हानि श्रीसदानन्दजीके पास आये और बोले—अरे! आप यहाँ होगी? यह सुनकर सेठने क्रुद्ध होकर कहा-'यदि कैसे आ गये? अभी तो आप सन्तोंकी पंगत करा रहे आप ऐसे बड़े सन्तसेवी हैं तो इन्हें ले जाइये और थे। मैंने देखा है, आपके आश्रममें ऋद्धि-सिद्धिके मनमाना भोजन कराइये।' इसपर आपने सन्तोंसे विनती भण्डार भरे हैं। पंगत करके सन्तोंने वरदान दिया है कि करके कहा-भगवन्! आप लोग मेरे यहाँ चलिये। सदानन्द! तुम्हारे यहाँ सदा ही आनन्द रहेगा। कभी अश्रद्धालुका अन्न लेना उचित नहीं है। आपके पास किसी वस्तुकी कमी न होगी। यह सुनकर आप आये आवश्यक सीधा-सामान न था। इसलिये घरका कुछ और मन-ही-मन अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी सामान बेचकर आपने गेहुँका आटा और घी आदि लाकर सन्तोंको दिया। सन्तोंने भोग लगाया, पाया। कृपाकी अनुभूति की। श्रीनारायणदासजी आपकी इस सेवा-निष्ठापर प्रसन्न होकर भगवान् एक वैश्यका रूप धारण करके आये और एक पात्रमें आपकी सन्त-सेवामें बड़ी प्रीति थी। एकबार एक भरकर मुहरें देते हुए बोले कि-हमें प्रभुकी आज्ञा राजा आश्रमके समीप हरे वृक्षोंको कटवा रहा था। श्रीनारायणदासजीने मना किया, पर वह नहीं माना। हुई है, अत: हम यह धन सन्त-सेवाके निमित्त देते राजकर्मचारी पेड़ काटने लगे। तब आप पेड़के समीप हैं, आप स्वीकार करें। ऐसा कहकर वे तुरंत अन्तर्धान खड़े हो गये और बोले कि मैं पेड़को नहीं काटने दूँगा। हो गये। तब आपने जाना कि ये तो स्वयं प्रभु ही थे। पेड़ काटना जीवहत्याके समान है। राजकर्मचारियोंको कृपा करके आये और सन्त-सेवाका उपदेश दे गये। क्रोध आ गया। एकने श्रीनारायणदासजीपर जैसे ही श्रीलाखाजी प्रहार किया, वैसे ही स्वयं चिल्लाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ये गुनीर गाँव हँसुवा फतेहपुरके निवासी अध्वर्यु ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम श्रीपरमानन्द था। गुनीर और छटपटाने लगा। इस समाचारको सुनकर राजा भी वहीं आ गया। प्रहार करनेवालेको चोट लगी। सन्त गाँव गंगाजीके तटपर बसा हुआ है, वहीं झोंपड़ी बनाकर

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीलाखादासजी रहते थे। इनका गंगा-स्नान करनेका गंगाजीकी धारा भी कुटीके निकट आ गयी। इस नित्य-नियम था। दैवयोगसे एकबार गंगाजी कुटीसे दूर घटनाको देखकर दर्शक चिकत हो गये। इनका सुयश हट गयीं। उस समय ये पूर्ण वृद्ध हो चुके थे, फिर भी चारों ओर फैल गया। नित्य स्नान करने जाते थे। ग्रीष्मसे तप्त रेती और उसपर श्रीलाखादासजीने अपने ग्रन्थमें गुरु-परम्पराका नंगे पैर धीरे-धीरे चलना, उनकी कठिन तपश्चर्या थी। उल्लेख किया है और अपनेको श्रीवर्द्धमान एवं आने-जानेमें असमर्थ होकर एक दिन इन्होंने प्रार्थना गंगलभट्टाचार्यकी परम्पराका अनुवर्ती लिखा है। कई स्थानोंपर हरिनारायण आदि शब्दोंके साथ गुरु शब्दोंको की—'मात: गङ्गे! अब आप अपने पूर्वस्थानपर पधारें, यदि नहीं चलेंगी तो मैं भी कुटियापर नहीं जाऊँगा।' जोड़कर हरि-गुरुनिष्ठाका परिचय दिया है। इन्हें गंगाकी धारासे आवाज आयी—'तुम चलो, मैं आ रही श्रीरूपनारायणजीसे सम्प्रदायकी शिक्षा और श्रीहरिव्यास-हूँ।' यह सुनकर प्रसन्नचित्त आप कुटीपर आये। पीछेसे 🖡 देवाचार्यजीसे दीक्षा प्राप्त हुई थी। श्रीहरीदासजी सरनागत कों सिबिर दान दाधीच टेक बलि। परम धरम प्रहलाद सीस जगदेव देन कलि॥ बीकावत बानैत भक्त पन धर्म धुरंधर। तूँवर कुल दीपक्क संत सेवा नित अनुसर॥ पार्थ पीठ आचरज कौन सकल जगत में जस लियो। तिलक दाम परकास कों हरीदास हरि निर्मयो॥१७९॥ तिलक-कण्ठीधारी वैष्णवोंकी सेवाके वास्ते ही श्रीबीकाजीके वंशमें प्रसिद्ध शूरवीर थे। भक्तोचित प्रण और धर्मका पालन करनेमें अतिश्रेष्ठ थे। तुँवर क्षत्रिय कुलके भगवानुने इस पृथ्वीपर श्रीहरीदासजीको प्रकट किया। शरणागतकी रक्षा करनेमें आप राजा शिविके समान थे। दीपक और नित्य सन्तसेवामें तत्पर रहनेवाले थे। अर्जुन दान देनेमें श्रीदधीचि ऋषिके समान, प्रतिज्ञाको निभानेमें और परीक्षित्के वंशमें उत्पन्न श्रीहरीदासजीमें ऐसे गुणोंका राजा बलिके समान, वैष्णव धर्मका पालन करनेमें श्रीप्रह्लादजीके होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अपनी दृढ़ भक्तिके समान और रीझकर सिर देनेमें श्रीजगदेवजीके समान थे। कारण आपने सारे संसारमें सुयश प्राप्त किया॥ १७९॥ श्रीहरीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीप्रह्लादजी, श्रीशिविजी, श्रीदधीचिजी और श्रीबलिजी शक्ति कालीदेवीका स्वरूप ही थी। जब वह गाती थी, —इन भगवद्भक्तोंके गुण श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये तो सुननेवालोंको सुननेकी बड़ी भारी चटपटी लग जाती हैं। श्रीहरीदासजीमें ये सभी गुण एक स्थानपर ही दिखलायी थी और उसकी मधुर-मुसकान देखकर वे मोहित हो जाते पड़ते हैं। टीकाकार श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि मूल छप्पयमें थे। रिझवार राजा श्रीजगदेवजीने एक बार उस नटीका श्रीनाभाजीने रीझनेमें श्रीहरीदासजीको श्रीजगदेवजीके समान अद्भुत नृत्य देखा और मधुर गानको सुना तो वह उसपर कहा है, परंतु कलियुगके भक्त श्रीजगदेवजीके रीझनेके रीझ गया। जब उसने पुरस्कार देनेका विचार किया तो कोई भी वस्तु उसके योग्य न दिखायी पडी। अन्तमें उसने प्रसंगको प्राय: सब लोग नहीं जानते हैं। मैंने उसे किसी सन्तसे जैसा सुना है, वैसा यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ। नटीसे कहा—मैंने अपना सिर तुम्हें दिया, जब चाहो, तब उत्तम रूप और गुणोंसे युक्त एक नटी थी। वह साक्षात् इसे ले सकती हो। अब यह मेरा नहीं है, तुम्हारा है।

छप्पय १७९, कवित्त ६०४] * श्रीहरी	दासजी * ४६७
**************	*********************************
श्रीजगदेवजीके द्वारा दिये गये मस्तकदानको	मूर्च्छा दूर हुई, तब उसने कहा—'मैंने तो यह समझा था
स्वीकारकर उस नटीने कहा—'मैंने भी अपना दाहिना	कि धन मिला होगा, अत: उससे दसगुना देनेको कहा,
हाथ आपको दिया। अब इस हाथको फैलाकर न तो	किन्तु यहाँ धनकी बात नहीं रही। अब मैं क्या करूँ और
किसीसे कुछ माँगूँगी और न लूँगी।' कुछ दिनोंके बाद	क्या दूँ, मेरे वशकी बात नहीं है।' नटीने कहा—'ऐसे
किसी एक राजाने सुना कि उस नटीने राजा जगदेवसे	अमूल्य पुरस्कारके बदले ही मैंने अपना दाहिना हाथ
ऐसा कुछ इनाम पाया है कि उसके बदले अपना दाहिना	राजा जगदेवको दिया है।' राजा लिज्जित हो गया, इसके
हाथ उन्हें दे दिया। अब मैं उस नटीको अधिक इनाम	पश्चात् नटीने आकर राजा जगदेवके धड़से उनका सिर
देकर जगदेवके इनामको तुच्छ कर दूँ। इस विचारसे उस	जोड़ दिया और जिस पदपर रीझकर उन्होंने अपना सिर
राजाने नटीको नृत्य करनेके लिये अपने दरबारमें बुलाया।	दिया था, उसी पदको गाया। तानके साथ आलापको
नटीने अपना नृत्य-गान प्रस्तुत किया, तब उस राजाने	सुनकर राजा जगदेव जीवित हो गये।
प्रसन्न होकर नटीको कुछ इनाम देना चाहा। नटीने	राजा जगदेवजीकी रिझवार निष्ठाका वृत्तान्त एक
लेनेके लिये अपना बायाँ हाथ फैलाया। इसपर राजाने	बड़े (यवन) राजाकी लड़कीने सुना तो वह उनमें
रुष्ट होकर कहा—'हमारा इतना अपमान।' नटीने	आसक्त हो गयी और उसने अपने पितासे कहा कि 'मेरा
कहा—'मैं अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवजीको दे	विवाह आप राजा जगदेवजीके साथ कर दीजिये।' उसने
चुकी हूँ, अत: दाहिने हाथमें किसीसे कुछ नहीं ले	जगदेवजीको बुलाकर अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर
सकती हूँ।' उस राजाने पूछा—'राजा जगदेवजीसे ऐसी	स्पष्ट कहा कि 'आप मेरी पुत्रीके साथ विवाह कर
कौन-सी अलभ्य वस्तु मिली है ? तुम उस वस्तुको मुझे	लीजिये।' श्रीजगदेवजीने स्वीकार नहीं किया। राजाने
दिखा दो और उससे दसगुनी वस्तु मुझसे ले लो।' नटीने	पुन:-पुन: आग्रह किया, परंतु इन्होंने हर बार मना ही
कहा—दूसरा कोई वैसी वस्तु नहीं दे सकता है।	किया। तब उस राजाने जगदेवजीको मार डालनेकी
उस राजाको नटीने बहुत समझाया, परंतु वह नहीं	आज्ञा दी। बिधक लोग मारनेके लिये ले जा रहे थे,
माना। उसे जिद सवार हो गयी। उसने बार-बार उस	राजकन्याने देखा तो वह बोली कि 'इनको मत मारो,
वस्तुको लाकर दिखानेका हठ किया। तब नटी बारह	मेरा इनमें अनुराग है। इन्हें मेरे सामने लाओ।' सामने
वर्ष बाद परम बड़भागी राजा जगदेवके पास गयी और	लाये जानेपर राजकन्याने इनको अपनी ओर देखनेके
बोली—'राजन्! मेरी वस्तु मुझे दीजिये।' राजाने सिर	लिये बाध्य किया। परंतु श्रीजगदेवजीने राजकन्याकी
काटकर नटीको दे दिया। नटीने धड़को न जलानेका	ओर नहीं देखा, तो रुष्ट होकर उसने भी इन्हें मार
आदेश देकर सुरक्षित रखवा दिया और उस पुरस्कारको	डालनेकी अनुमति देकर कहा कि 'इनके सिरको
थालमें ढककर उस राजाके पास ले आयी और दिखाकर	काटकर मेरे पास ले आओ।' बधिकोंने ऐसा ही किया।
बोली—'इसे देख लीजिये और इससे दसगुनी या बराबर	राजकन्या अपने सामने कटे सिरको रखकर जब उसकी
ही दीजिये।' सिरको देखते ही वह राजा मूर्च्छित हो	ओर देखने लगी तो वह सिर राजपुत्रीके सामनेसे घूम
गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा। अनेक उपचारोंसे उसकी	गया। इस धर्मनिष्ठापर सभी लोग रीझ गये।
श्रीप्रियादासजीने राजा जगदेवसे सम्बन्धित इस घ	गटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—
प्रहलाद आदि भक्त गाए गुण भागवत सब	
रीझि 'जगदेव' सो यों कहिकै बखान कियौ, ज	=
रहै एक नटी सक्तिरूप गुण जटी गावै ल Hinduism Piscout Sewenhtes://dsc.qg/db	ागै चटपटी मोह पावै मृदु हांस मैं। व <del>िस्तार के।MANE WEH के VER</del> Bमें।Axinash/Sha

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* ४६८ [ भक्तमाल-अङ्क दियौ कर दाहिनौ मैं, यासों नहीं जाचौं कहूँ, सुनि एक राजा भेद भाव सों बुलाई है। नृत्य करि गाई रीझि 'लेवौ कही' आई 'देहु' ओड़्यो बायों हाथ, रिस भरिकै सुनाई है॥ 'इतौ अपमान', 'पानि दक्षिन लै दियौ अहो 'नृप जगदेवजू कों' 'ऐसी कहा पाई है'। 'तासों दसगुनी लीजै, मोको सो दिखाय दीजै', 'दई नहीं जाय काहू, मोहिये सुहाई है॥ ६०५॥ कितौ समझावै 'ल्यावौ' कहै, यहै जक लागी, गई बड़भागी पास वस्तु मेरी दीजियै। काटि दियो सीस, तन रहै ईश शक्ति लखो, ल्याई बकसीस थार ढाँपि देखि लीजियै॥ खोलिकै दिखायो, नृप मूरछा गिरायो तन, धन की न बात अब याकौ कहा कीजियै। मैं जु दीनौ हाथ जानि आनि ग्रीव जोरि दई लई वही रीझि पद तान सुनि जीजियै॥६०६॥ सुनी जगदेव रीति, प्रीति नृपराज सुता पिता सों बखानि कही वाही कौ लै दीजियै। तब तौ बुलाये समुझाये बहु भाँति खोलि बचन सुनाये अजू बेटी मेरी लीजिये'॥ नट्यौ सतबार जब कही 'डारों मारि', चले मारिबे को, बोली वह 'मारौ मत भीजियै। 'दुष्टि सों न देखें' कही 'ल्यावौ काटि मूंड़', लाए चाहै सीस आँखिन को, गयौ फिरि रीझियै॥ ६०७॥ टीकाकार श्रीप्रियादासजी बताते हैं कि श्रीजगदेवजीकी। छतसे उतरकर (स्नानार्थ) चले। प्रभुकी ऐसी चेष्टा रिझवार-निष्ठाका विस्तारसे वर्णन किया गया। अब देखकर रास्तेमें मिलकर श्रीहरीदासजीने चरण पकड श्रीहरीदासजीने जैसी साधु-सेवा की, उसको सुनिये। राजा लिये और एकान्तमें विनती करते हुए कहा कि 'प्रभो! होकर इनकी साधु-सेवामें ऐसी निष्ठा थी कि वे सन्तोंसे आप जो भी लीला करें, सो उचित है। परीक्षार्थ ऐसी परदा या किसी प्रकारका कपट नहीं करते थे। बिना रोक-लीला न करें, जिससे नास्तिक दुष्टजन सन्तोंकी निन्दा करें। मुझे अपनी निन्दासे भय नहीं है, वह तो मुझे सुख टोकके साधुओंका महलोंमें आना-जाना होता था। ऐसी विलक्षण एवं दूढ्-निष्ठा देखकर भगवान्ने इनकी परीक्षा देनेवाली है, परंतु सन्त-निन्दासे हमें भय है।' ली। परीक्षार्थ एक अल्पवयस्क सन्तका रूप धारण करके श्रीहरीदासजीने सन्त भगवान्से पुन: कहा कि महाराज! आये और इनके यहाँ निवास करने लगे। उनके प्रति इस प्रकार आपको चेतावनी देनेसे मेरी भक्तिमें कलंक लगता है। आप चाहे जैसे अपने भक्तकी परीक्षा लें, मुझे श्रीहरीदासजीका भगवन्मय वात्सल्य भाव था। वे बालक-कुछ भी नहीं कहना चाहिये, परंतु मैंने इस शंकाके कारण बालिकाओंके साथ खेलते रहते। एक दिन ग्रीष्म-ऋतुमें बालक-बालिका छतपर सोये हुए थे, वे कुछ ओढ़े नहीं आपसे कुछ कहा कि कहीं कोई साधु-सन्तका अपमान न थे। श्रीहरीदासजी दातौन करनेके लिये छतपर चढ़कर गये। करे। किसी साधुमें किसी प्रकारकी कमी है, यह सुनना मुझे गहरी नींदमें सन्त-भगवन्तको बेसुध सोये देखकर इन्होंने अच्छा नहीं लगता। सन्त भगवान्ने फिर परीक्षार्थ ऐसा भाव अपनी चादर ओढ़ा दी। शयनके दर्शनकर आप नीचे उतरे दिखाया कि जैसे लिज्जित हो रहे हों। सन्त भगवान्ने तो हृदयमें प्रभुका ध्यानकर उसमें मग्न हो गये। कहा—मैं अब कहीं अन्यत्र जाकर भजन करना चाहता हूँ। हरीदासने चरण पकड़ लिये और अपने सच्चे सद्भावसे प्रात:काल होनेपर बालक भगवान् और राजाकी कन्या दोनों जगे। विलम्बसे जगनेके कारण घबड़ाये। सन्तरूपधारी भगवानुको प्रसन्न कर लिया। तब भगवान् विचार करने लगे कि हम चादर ओढ़कर नहीं सोये फिर अपने रूपसे प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उन्हें अपना यह किसकी चादर है, कौन ओढ़ा गया? बालिकाने स्वरूप प्रदान किया। फिर बोले—मैं तुम्हारी सन्त-सेवा-निष्ठासे प्रसन्न हूँ, जो चाहो सो वरदान माँग लो। श्रीहरीदासजीने पहचानकर कहा कि यह तो पिताजीकी है। भगवान् हरीदासजीकी परीक्षा ले रहे थे, अत: जैसे कुछ भूल हो कहा—'हे प्रभो! आप उसी बालक सन्तरूपसे मेरे घरमें गयी हो-ऐसी मुखमुद्रा बनाये, दृष्टिको नीचे किये हुए रहिये। साथ-साथ सेवा-भजन करनेका सुख दीजिये।'

छप्पर	ग १८० ]			* श्रीकृष्ण	गदासजी *					४६९
					*********					
	-	` -			श्रीगोविन्ददा					
				`	बजानेकी प्र		। बादश	ाहके कह	नेपर भी	बंसी
रूप	धारणकर इ	नके यहाँ रहे	हे। आपके	छोटे भाई	नहीं बजायी	1				
श्रीप्रियादासजीने आपके इस पावन चरित्रका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—										
	निष्ठा रिझ	वार रीति क	<b>ीनी विस्ता</b> न	र यह सुनौ	ा साधु सेवा	हरीदार	न जूने	करी है।	l	
	परदा न स	न्त सों है दे	त हैं अनन्त	सुख रह्यौ	सुख जानि	भक्त स्	गुता चित	ं धरी है।	II	
	दोऊ मिलि सोवैं रितु ग्रीषम की छात पर, गात पर गात सोये सुधि नहीं परी है।									
	दातुन के करिबे को चढ़े निसि सेस आप चादर उढ़ाय नीचे आए ध्यान हरी है॥६०८॥									
	जागि परे दोऊ, अरबरे देखि चादर कों पेखि पहिचानी सुता पिता ही की जानी है।									
	सन्त दूग नये चले बैठे मग पग लये गये लै एकान्त में यों विनती बखानी है॥									
नेकु सावधान ह्वैकै कीजिये निसङ्क काज, दुष्टराज छिद्र पाय कहै कटु बानी है।										
तुमको जु नाव धरै जरै सुनि हियौ मेरी, डरैं निन्दा आपनी न होत सुखदानी है॥६०९॥										
	इतनी जतावनी में भक्ति कों कलङ्क लगै, ऐपै सङ्क वही, साधु घटती न भाइयै।									
	भई लाज भारी, विषैबास धोय डारी नीके, जीके दुख रासि चाहै कहूँ उठि जाइयै॥									
	निपट मगन किये नाना विधि सुख दिये, दिये पै न जान, मिलि लालन लड़ाइयै।									
			•		न मैं न ल्या					
		3		श्रीकृष्ण					•	
				•	•			2 22		
	तान मान सुर ताल सुलय सुंदर सुठि सोहै।									
	सुधा अंग भ्रूभंग गान उपमा कों को है॥									
	रतना कर संगीत राग माला रँग रासी।									
	रिझये	राधा	लाल	भक्त	पद	रेनु	उप	गसी।	ı	
स्व	र्नकार	खरगृ	्सुवन	। भत्त	<b>ह भ</b> ज	ान <sup>ं</sup>	पद	दृढ़	लिय	IJ I
नंद	खुँवर	कृष्नद	ास को	ं निज	पग ते	में नूए	पुर वि	देयो ।	१८०	> 11
	श्रीकृष्णदास	जी महान् भ <sup>ः</sup>	क्त थे। एक	बार नृत्य।	अंगोंका संच	ग्रालन अं	ौर गायन	में इनके र	प्रमान को	ई भी
करते	समय इनके प	रैरमेंसे नूपुर ख्	बुलकर गिर ग	या तो स्वयं	नहीं दिखार्य	ो देता थ	। आप ३	ग्रास्त्रीय सं	गीतके वि	शोषज्ञ
3,5		थे। आपने	अपने भ	क्तियुक्त र	तदुगुणोंसे	श्रीराधाकृ	ष्णको			
पैरमें बाँध दिया। जिस समय ये स्वर-तालको सँभालकर				-		_				
सुन्दर लयके साथ गाते थे, उस समय श्रोताओंको बड़ा		रिझा लिया। भक्तोंकी चरणधूलिके उपासक, खरगू स्वर्णकारके सुपुत्र श्रीकृष्णदासजीने भक्तोंकी सेवाका दृढ़								
ही आनन्द आता था। नाचनेका सुन्दर ढंग, भौहोंके साथ।										
() J			•		प्रकार है—	G1 4111	100 11			
	•			•	- <b>प्रयार ह</b> —   उनके सामने	' आनन्य	ग्रन होत्स	मत्य औः	र गान ऋग	तेशे।
प्रमा	•	_	•					-		
परमानन्दके रूप युगल श्रीराधाकृष्णकी सेवाको अपनाया। । आप नित्य-नियमसे प्रिया-प्रियतमकी सेवा करनेके पश्चात् ।										
जाप	1.114-11444	-INMILINAU+	नन्म साना कर	ाक परपाएं।	। जानका अप	ा रारारप	ग दील ग	स रहा। ५५	ता भाप प	गापफ

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क एक पैरका नूपुर खुलकर गिर गया। आप नृत्य-भावमें हुए। नृत्य-गानको समाप्तकर श्रीकृष्णदासजी जब स्वस्थ विभोर थे, अत: आप नूपुरको बाँध नहीं सके। नूपुर हुए तो उन्होंने देखा कि मेरे पैरका नूपुर अलग धरतीपर ट्रटकर गिर गया है, इसका आपको पता नहीं था। पड़ा है और उसकी जगह मेरे पैरमें दूसरा दिव्य नूप्र घुँघरूके बिना बजे तालकी गति बिगड़ गयी। नृत्य-गान बँधा हुआ है। भगवान्की इस कृपालुताका अनुभव और तानके रंगमें रँगे श्रीलालजीसे यह सहन नहीं हुआ, करके आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। दूसरे अतः उन्होंने अपने श्रीचरणमेंसे अपना दिव्य नुप्र जिन-जिन लोगोंने जाना-सुना, उन्हें भी भगवद्भक्ति खोलकर कृष्णदासजीके पैरमें बाँध दिया। अब तालपर प्रिय लगी, वे भी भजन-कीर्तन करने लगे। घुँघरूका बजना सुनकर श्रीठाकुरजी बहुत ही प्रसन्न । श्रीकृष्णदासजीकी पवित्र कीर्ति संसारमें फैल गयी। श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— कृष्णदास ये सुनार राधाकृष्ण सुखसार, लियौ सेवा पाछे नृत्य गान बिसतारियै। ह्वै करि मगन काहू दिन तन सुधि भूली, एक पग नूपुर सो गिर्यौ न सँभारियै॥ लाल अति रंग भरे जानी जित भंग भई पांय निज खोलि आप बाँध्यौ सुख भारियै। फेरि सुधि आई देखि धारा लै बहाई नैन कीरति यों छाई जग भक्ति लागी प्यारियै॥६११॥ परमधर्मपोषक संन्यासी भक्त चितसुख टीकाकार भक्ति सर्बोपर राखी। श्रीदामोदर तीर्थ राम अर्चन बिधि भाषी॥ चंद्रोदय हरिभक्ति नरसिंहारन्य जु कीनी। माधौ मधुसूदन ( सरस्वती ) परमहँस कीरति लीनी॥ परबोधानंद रामभद्र जगदानँद कलिजुग्ग धनि। परमधर्म प्रतिपोष कौं संन्यासी ये मुकुटमनि॥१८१॥ श्रीमाधवानन्दजी और श्रीमधुसूदनजीसरस्वती ये दोनों श्रीचित्सुखानन्दजी सरस्वतीने श्रीभगवद्गीतापर। चित्सुखी नामकी टीका लिखी, उसमें इन्होंने कर्म, ज्ञान सत्-असत्-विवेकी परमहंस प्रसिद्ध थे। श्रीप्रबोधानन्दजी, आदिकी अपेक्षा हरिभक्तिको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। श्रीरामभद्रजी और श्रीजगदानन्दजी भी कलियुगमें भगवद्भक्तिकी आराधना करके धन्यवादके योग्य हुए। श्रीदामोदरतीर्थने रामार्चनविधिका वर्णन किया, उसमें भक्तिको महत्त्व दिया। श्रीनृसिंहारण्यजीने हरिभक्तिचन्द्रोदय इन सभी संन्यासी महानुभावोंने परमधर्म श्रीहरिभक्तिका नामक ग्रन्थ लिखा। श्रीमधुसूदनजी सरस्वतीने भक्तिरसायन प्रतिपादन और समर्थन किया। अतः ये संन्यासियोंके आदि ग्रन्थ लिखे। श्रीमाधवानन्दजी भी भगवद्भक्त हुए। मुक्टमणि कहे गये॥ १८१॥ इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है— श्रीदामोदरतीर्थजी भक्तिका भाव और दृढ हो गया। परमानन्दमय प्रभुरूपमें ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। निरन्तर ध्यानमें आप मग्न हो गये। फिर आपके मनमें भाव आया कि यह दर्शन दूसरे भक्तोंको कैसे सुलभ हो। तब श्रीराघवेन्द्रने मग्न रहा करते थे। एकबार आप ध्यानमग्न होकर प्रेरणा की कि अर्चन-पद्धतिका वर्णन करो। उससे श्रीसीताराम नामका जप कर रहे थे, उसी समय श्रीसीतारामजीने प्रकट होकर दर्शन दिया। आपके हृदयमें हमारा दर्शन सुलभ हो जायगा। आपके द्वारा लिखित

\* परमधर्मपोषक संन्यासी भक्त \* छप्पय १८१ ] रामार्चन-विधिसे अर्चन करके लोगोंने श्रीसीतारामजीका तब श्रीरामने झट हाथ पकड़ लिया और बड़ी मधुर दर्शन पाया। इस प्रकार ग्रन्थोंका निर्माणकर आपने वाणीसे बोले—'तुमने मेरी आज्ञाको छोड़ा, अब मैं तुमको नदीके जलमें छोड़ रहा हूँ।' श्रीरामभद्रजीने भक्तिपथ प्रदर्शित किया। कहा—'प्रभो! मैं अज्ञानी जीव, आपका शिश् अनुचित श्रीनुसिंहारण्यजी आपको भक्ति अत्यन्त प्रिय थी। आपने कर सकता हूँ, पर आप अपने स्वभावको नहीं छोड़ सकते हैं।' ऐसे दीनवचन सुनकर प्रभुने इन्हें नदीसे हरिभक्तिचन्द्रोदय नामक उत्तम ग्रन्थकी रचना की। निकालकर तटपर खड़ा कर दिया और स्वयं आप फिर उसमें जीवलोककी मुक्तिभूमिपर विवेकको राजा बताया। नदीमें कूद पड़े। भगवत्स्पर्श और दर्शनसे कृतार्थ हुए उसके शत्रु मोहसे विवेकका बड़ा-भारी युद्ध हुआ। शील, धर्म, सन्तोष और वैराग्य आदिको विवेकके श्रीरामभद्रजीसे नहीं रहा गया, ये भी नदीमें कूद पड़े। हँसकर प्रभुने इन्हें फिर निकाला और अपने दर्शनोंसे सेनानी बताया। काम, क्रोध, लोभ और ममता आदिको इनके मनोरथको पूर्ण किया। प्रेममग्न होकर आप पुनः मोहके सेनानी कहा। चिरकालतक भयंकर युद्धके पश्चात् मोह जीत गया और विवेककी सेना भाग खड़ी उसी स्थानपर आ गये। सुनकर लोगोंकी भीड़ उमड़ पडी। आपने स्वप्नादेश और भगवत्कृपाका वर्णन करके हुई। विवेककी एक श्रद्धा नामकी स्त्री थी। उसके गर्भमें प्रीति नामकी एक कन्या थी। उसी समय उसका जन्म सभीके मनमें भक्तिभाव भर दिया। हुआ और वह तत्क्षण बहुत बड़ी हो गयी। उसने श्रीजगदानन्दजी ज्ञानरूपी खड्गको हाथमें लिया और सेनासहित मोहको श्रीजगदानन्दजी भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। मार भगाया। फिर विवेककी शक्ति जगी। उसके मरे आपकी जैसी भक्ति भगवान् श्रीरामके चरणोंमें थी, वैसी सैनिक जी उठे। इस प्रकार भक्तिकी विजयका वर्णन किसी विरले ही पुरुषमें होगी। आपमें वर्ण-आश्रम या करके आपने परमधर्मका पोषण किया। विद्या आदिका अहंकार बिलकुल न था। वैष्णव सन्तको श्रीरामभद्रजी देखते ही उसके चरणोंमें सिर झुकाते, उसकी परिक्रमा ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। चातुर्मास्य करते और मधुर वाणीसे सत्कार करते हुए कहते कि 'आज मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मुझे श्रीरामजीके प्यारे व्रतके लिये आप एक स्थानपर ठहरे। वहाँ आपके मिल गये।' भोजन-विश्रामादिके बाद उनसे प्रार्थना करते सद्पदेशोंको सुननेके लिये बहुत भीड़ एकत्र होती। वर्षा-ऋतुके बीत जानेपर आप वहाँसे चलनेके लिये कि 'श्रीरामजीकी कोई कथा सुनाइये।' इस प्रकार तैयार हो गये। तब भगवान्ने स्वप्न दिया कि वर्षाके सत्संगमें सर्वदा भगवत्कथाओंको कह-सुनकर परमधर्मका बाद शरद ऋतुमें भी यहीं निवास करो और अपने प्रचार-प्रसार करते। एक बार दो सन्त तीर्थयात्रा करते उपदेशोंसे लोगोंमें भक्तिका प्रचार करो। आपने स्वप्नादेशका हुए काशीजीमें आये। वहाँ एक सन्त बीमार हो गये और उल्लंघन कर दिया। उसे केवल अपने मनका विकार उनका शरीर छूट गया। उसके वियोगमें दुसरा सन्त माना और प्रतिपदाको ही चल दिये। मार्गमें एक नदी करुणक्रन्दन करने लगा। उसका विलाप सुनकर मिली। आपने देखा कि पानी थोड़ा है, अत: पैदल ही श्रीजगदानन्दजीसे नहीं रहा गया। निकट जाकर आपने उसे पार करनेके लिये उसमें घुसे। बीच धारमें पहुँचते उससे कहा—सन्तजी! आप विलाप न करें, ये मरे नहीं ही जलकी बाढ आ गयी। तेज गहरी धारमें श्रीरामभद्रजी हैं। आपके साथ-साथ तीर्थयात्राको पूर्ण करके, अपने बहने और डूबने लगे। तब आपको भगवान् श्रीरामकी स्थानमें पहुँचकर आजसे एक माहके बाद शरीर याद आयी, अपनी भूलपर पछताने लगे। शरीरका त्यागकर वैकुण्ठको पधारेंगे। आपका स्पर्श पाकर सन्त <del>आपिमपे संबंध क्रिइंद्रहर् किट प्रवा</del>क्ष प्रस्करां से पहले उद्योगि विष्णु व और MAPPE WITH के OXE BY हो स्वाप विकास

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क दण्डवत्प्रणाम किया। इस प्रकार आपने अनेकोंके संकट पड़े। कपिलधाराके पास वहीं संत इन्हें फिर मिले। काटकर उन्हें परमधर्मका उपदेश दिया। उन्होंने कहा—'स्वामीजी! लोग तो भगवत्प्राप्तिके लिये अनेक जन्मोंतक साधन, भजन, तप करते हैं और फिर श्रीमधुसूदनसरस्वती भी बडी कठिनतासे उन्हें भगवानुके दर्शन हो पाते हैं, ईसाकी लगभग सोलहवीं शताब्दीमें बंगालके फरीदपुर जिलेके कोटालपाड़ा ग्राममें प्रमोदन पुरन्दर पर आप तो तीन ही महीनेमें घबरा गये।' अब अपनी नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनके तृतीय पुत्र भूलका स्वामीजीको पता लगा। ये गुरुदेवके चरणोंपर हुए कमलनयनजी। इन्होंने न्यायके अगाध विद्वान् गिर पड़े। काशी लौटकर ये फिर भजनमें लग गये। गदाधरभट्टके साथ नवद्वीपके हरिराम तर्कवागीशसे प्रसन्न होकर श्रीश्यामसुन्दरने इन्हें दर्शन दिये। न्यायशास्त्रका अध्ययन किया। काशी आकर दण्डीस्वामी अब तो इनका जीवन ही बदल गया था, अद्वैतसिद्धि, श्रीविश्वेश्वराश्रमजीसे इन्होंने वेदान्तका अध्ययन किया सिद्धान्तिबन्द्, वेदान्तकल्पलितका, अद्वैत-रत्न-रक्षण, और यहीं संन्यास ग्रहण किया। संन्यासका इनका नाम प्रस्थानभेदके लेखक इन प्रकाण्ड नैयायिक तथा वेदान्तके विद्वान्ने श्रीकृष्ण-प्रेमके वशीभूत होकर भक्तिरसायन, 'मधुसूदनसरस्वती' पड़ा। स्वामी मधुसूदनसरस्वतीको शास्त्रार्थ करनेकी धुन गीताकी गृढार्थदीपिका नामक व्याख्या और श्रीमद्भागवतकी थी। काशीके बडे-बडे विद्वानोंको ये अपनी प्रतिभाके व्याख्या लिखी। बलसे हरा देते थे। परंतु जिसे श्रीकृष्ण अपनाना चाहते श्रीप्रबोधानन्दजी हों, उसे मायाका यह थोथा प्रलोभन-जाल कबतक श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीजीका जन्म एक श्रेष्ठ उलझाये रख सकता है! एक दिन एक वृद्ध दिगम्बर ब्राह्मणकुलमें हुआ। इनके पूर्वज आन्ध्रप्रदेशके निवासी परमहंसने उनसे कहा—स्वामीजी! सिद्धान्तकी बात श्रीसम्प्रदायी वैष्णव थे। श्रीरंगक्षेत्रसे प्रभावित होकर करते समय तो आप अपनेको असंग, निर्लिप्त ब्रह्म कहते उसके निकट कावेरीतटपर बसे बेलंगुरी गाँवमें आकर हैं, पर सच बताइये, क्या विद्वानोंको जीतकर आपके सपरिवार निवास करने लगे। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम मनमें गर्व नहीं होता? यदि आप पराजित हो जायँ, तब श्रीवेंकटभट्ट और मध्यम भ्राताका नाम श्रीत्रिमल्लभट्ट भी क्या ऐसे ही प्रसन्न रह सकेंगे? यदि आपको घमण्ड था। श्रीगौरांग महाप्रभु तीर्थयात्राके व्याजसे प्रेमभक्तिका वितरण करते हुए दक्षिणदेशमें पधारे। तब श्रीवेंकटभट्टने होता है तो ब्राह्मणोंको दु:खी एवं अपमानित करनेका पाप भी होगा।' कोई दूसरा होता तो मधुसूदनसरस्वती उन्हें अपने घरपर चातुर्मास्य बितानेके लिये आग्रहपूर्वक उसे फटकार देते, परंतु उस संतके वचनोंसे वे लज्जित रखा। फिर भट्टपरिवार महाप्रभुजीके प्रेमसे प्रभावित हो गये। उनका मुख मलिन हो गया। परमहंसने कहा— होकर उनके पदाश्रित हो गया। श्रीप्रबोधानन्दजी बडे 'भैया! पुस्तकोंके इस थोथे पाण्डित्यमें कुछ रखा नहीं रसिक एवं प्रेमानन्दमें विभोर रहनेवाले महान् सन्त और है। तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। उपासना करके हृदयसे आनन्दकन्द श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रिय सेवक थे। आपने इस गर्वके मैलको दूर कर दो। सच्चा आनन्द तो तुम्हें श्रीवृन्दावनविहारिणी बिहारीजीकी नित्य नयी-नयी निकुंज-आनन्दकन्द श्रीवृन्दावनचन्द्रके चरणोंमें ही मिलेगा।' लीलाओंका अनुभव करके उनका अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया तथा प्रिया-प्रियतमकी अनुपम रूप-माधुरीके स्वामीजीने उन महात्माके चरण पकड लिये। मधुर रसका पानकर उन्हें अपने नेत्रोंकी पुतली बना दयाल संतने श्रीकृष्णमन्त्र देकर उपासना तथा ध्यानकी विधि बतायी और चले गये। मधुसूदनसरस्वतीने तीन लिया। श्रीवृन्दावन-महिमामृत आदि ग्रन्थोंमें आपने महीनेतक उपासना की। जब उनको इस अवधिमें कुछ श्रीवृन्दावनधामके वाससे मिलनेवाले दिव्यसुखको प्रकाशित लाभ न जान पड़ा, तब काशी छोड़कर ये घूमने निकल किया। इस प्रकार व्रजरसके परमानन्दसागरको भावकोंके

\* श्रीपूर्णजी \* छप्पय १८३ ] लिये सुलभ किया तथा भगवद्भक्तिविहीन कर्म-धर्मोंके | भक्तोंने प्रेमरंग प्राप्त किया। श्रीवृन्दावनधामका वास आचरणको आपने त्याज्य बताया। आपके द्वारा वर्णित । आपको ऐसा प्रिय लगा कि आपने उसपर अपना तन-रसिसद्धान्तको पढ़-पढ़कर एवं सुन-सुनकर करोड़ों | मन और धन सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। श्रीप्रियादासजीने श्रीप्रबोधानन्दजीके इस वृन्दावन-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया— श्रीप्रबोधानन्द, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्री 'चैतन्यचन्द' जू के पारषद प्यारे हैं। राधाकुष्ण कुञ्ज केलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप, दोऊ किये दुग तारे हैं॥ वृन्दावन वास कौ हुलास लै प्रकास कियो, दियो सुख सिन्धु, कर्म धर्म सब टारे हैं। ताहि सुनि सुनि कोटि कोटि जन रङ्ग पायौ, विपिन सुहायौ, बसे तन मन वारे हैं॥६१२॥ श्रीद्वारकादासजी सरिता कूकस गाँव सलिल में ध्यान धर्यो मन। राम चरन अनुराग सुदृढ़ जाकें साँचो पन॥ सुत कलत्र धन धाम ताहि सों सदा उदासी। कठिन मोह को फंद तरिक तोरी कुल फाँसी॥ कील्ह कृपा बल भजन के ग्यान खड्ग माया हनी। अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास जानै दुनी॥१८२॥ सन्त श्रीद्वारकादासजी 'कूकस' नामक गाँवके । अपने विवेकसे उसे तोड़-फोड़ डाला। अपने गुरुदेव निकट बहनेवाली नदीके जलमें प्रवेश करके भजन- । श्रीकील्हदेवाचार्यजीकी कृपा एवं भगवद्भजनके बलसे ध्यान करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें आपका | आपने ज्ञानरूपी तलवारसे अविद्या-मायाका नाशकर सुदुढ अनुराग था। आपने प्रतिज्ञापूर्वक भगवानुकी अष्टांगयोगकी विधिसे नदीमें शरीरको छोडा और उपासना की। आप स्त्री, पुत्र, घर और धनसे सदा विरक्त | साकेतधामको प्राप्त किया। इस बातको दुनिया जानती रहे। यद्यपि मोहका बन्धन कठिन होता है, परंतु आपने | है॥ १८२॥ श्रीपूर्णजी उदै अस्त परबत्त गहिर मधि सरिता भारी। जोग जुगति बिस्वास तहाँ दृढ़ आसन धारी॥ ब्याघ्र सिंह गुँजै खरा मनहिं कछु संक न मानैं। अर्ध न जातें पौंन उलटि ऊरध कों आनैं॥ साखि सब्द निर्मल कहा कथिया पद निर्बान। पूर्न प्रगट महिमा अनँत करिहै कौन बखान॥१८३॥ श्रीपूर्णजीकी महिमा अपार है, कोई भी उसका वर्णन | दो ऊँचे पर्वतके बीच बहनेवाली सबसे बड़ी (श्रेष्ठ) नदीके नहीं कर सकता है। आप उदयाचल और अस्ताचल—इन | समीप पहाड़की गुफामें रहते थे। योगकी युक्तियोंका आश्रय

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क जाते थे, फिर उसे नीचेकी ओर नहीं आने देते थे। आपने लेकर और प्रभुमें दृढ़ विश्वास करके समाधि लगाते थे। व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक पशु वहीं समीपमें खड़े गरजते उपदेशार्थ साक्षियोंकी, मोक्षपद प्रदान करनेवाले पदोंकी रहते थे, परंतु आप उनसे जरा भी नहीं डरते थे। समाधिके रचना की। इस प्रकार मोक्षपदको प्राप्त श्रीपूर्णजीकी महिमा समय आप अपान वायुको प्राणवायुके साथ ब्रह्माण्डको ले 📗 प्रकट थी॥ १८३॥ श्रीपूर्णजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीपूर्णजी भगवत्कृपाप्राप्त श्रीरामभक्त सन्त थे। स्थित पीपलकी छायामें विराजे थे। भगवत्स्मरण करते एक बार आपका शरीर अस्वस्थ हो गया। आपको हुए शान्त-एकान्तमें आपको निद्रा आ गयी। वृक्षकी औषधिके लिये औंगरा (एक जडी)-की आवश्यकता खड्खड़ाहटसे आपकी नींद ख़ुली तो आपने एक थी। इनके मनकी बात जानकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने वानरको पीपलपर इधर-उधर कृदते देखा। उसी समय वानरके मुखसे 'दासोऽहं राघवेन्द्रस्य' यह एक ब्राह्मणका रूप धारण किया और औंगरा लाकर दिया। जिससे ये स्वस्थ हो गये। भगवत्कृपाका अनुभव स्पष्ट सुनायी पड़ा। साक्षात् श्रीहनुमान्जी हैं, यह करके आप प्रेम-विभोर हो गये। आप पूर्णतया अकाम जानकर आपने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और और सभी प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित थे। एक बार हनुमदाज्ञासे उसे पवित्र स्थल जानकर आपने वहीं एक यवन-बादशाहने आपके इन्द्रिय-संयमकी परीक्षा अपना निवासस्थान बनाया और वहाँ श्रीहनुमान्जीकी लेनी चाही, किंतु आप उसमें पूर्ण सफल रहे। प्रतिमा स्थापित की। भगवन्नाम-जपके प्रभावसे आपमें सर्वसिद्धियाँ आ गयीं। सुख-शान्तिके निमित्त श्रीपुरनजीका नाम श्रीअग्रदेवजीके शिष्योंमें आया है। एक बार आप स्वर्णरेखा नदीके तटपर आनेवाले जनसमुदायके मनोरथ पूर्ण होने लगे। श्रीलक्ष्मणभट्टजी सदाचार मुनिबृत्ति भजन भागवत उजागर। भक्तनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर॥ संतोषी सुठि सील हृदय स्वारथ नहिं लेसी। परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी॥ श्रीभागवत बखानि के नीर छीर बिबरन कर्त्यो। श्रीरामानुज पद्धति प्रताप भट्ट लच्छिमन अनुसस्यौ॥१८४॥ श्रीलक्ष्मणभट्टजीने श्रीरामानुज-सम्प्रदायकी पद्धतिके । नाममात्रका भी स्वार्थ आपमें नहीं था। जिससे भगवद्धिक्त अनुसार भगवान्की सेवा-पूजाका अनुसरण किया। आप दृढ़ हो, उस परम धर्मका पालन करनेवाले तथा सन्तोंका महान् सदाचारी, मुनियोंकी-सी वृत्ति स्वीकार करके जो मार्ग है, उसके आप उपदेशक थे। श्रीमद्भागवतकी जीवनमें धारण करके जीवन-यापन करनेवाले, भजन-कथाएँ कहकर आपने सत् और असत्का उसी प्रकार परायण और यशस्वी भगवद्धक्त थे। भगवद्धकोंमें आपका विवेचन किया, जैसे हंस नीर और क्षीरका करता है। इस बड़ा भारी स्नेह था। आपके हृदयमें दशधा भक्तिका प्रकार श्रीभट्टजीने असत्को छोडकर सत् अर्थात् भगवत्-शरणागतिको ग्रहण किया॥१८४॥ निवास था। आप परम सन्तोषी, बडे शीलवान् थे। श्रीलक्ष्मणभद्रजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीलक्ष्मणभट्टजी सन्त थे। आप श्रीमद्वल्लभाचार्यके | आपने एक भक्त शिष्यके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा पिता एवं श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें दीक्षित थे। एक बार | कही, उसमें प्रचुर भेंट आयी। आपने ज्यों-की-त्यों

\* स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारी\* छप्पय १८५. कवित्त ६१३ 🛚 . . सम्पूर्ण भेंट सन्त-सेवाके निमित्त एक साधुको समर्पित | लिये आमन्त्रित किया, उन्हीं तिथियोंमें किसी सन्तने कर दी। ये केवल उपकार-सन्तसंगकी भावनासे कथा | कथाके लिये कहा। आप सन्तके यहाँ गये, राजाके यहाँ कहते थे। एक बार राजाने आपको श्रीभागवत-कथाके | नहीं गये। ऐसे सन्त-प्रेमी और निर्लीभी थे आप! स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारी कृष्नदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयो। अतिथि धर्म प्रतिपाल प्रगट जस जग में लीयो।। उदासीनता अवधि कनक कामिनि नहिं रातो। राम चरन मकरंद रहत निसि दिन मदमातो॥ गलतें गलित अमित गुन सदाचार सुठि नीति। दधीचि पाछें दूसरी ( करी ) कृष्णदास कलि जीति॥१८५॥ महान् सिद्धसन्त पयहारी श्रीकृष्णदासजी जयपुरमें | किया। इस प्रकार विलक्षण रूपसे अतिथिधर्मका पालन श्रीगलताजीकी गद्दीपर विराजते थे। आप अनन्त दिव्य विरके आपने सुयश प्राप्त किया। आप वैराग्यकी तो गुणोंसे सम्पन्न, बडे सदाचारी और अच्छे नीतिज्ञ थे। सीमा ही थे और कभी भी धन और स्त्रियोंमें आसक्त श्रीदधीचिजीके बाद इस कलियुगमें उत्पन्न होकर नहीं हुए। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके कलिकालके विकारोंपर आपने विजय प्राप्त की। परागमें आपका मन उसी प्रकार आनन्दित रहता था, अतिथिके रूपमें प्राप्त सिंहको आपने न्यौता दिया और जैसे पुष्परसको पाकर भ्रमर मतवाला हो जाता अपने शरीरमेंसे मांस काटकर उसे भोजनके लिये अर्पण है।। १८५॥ स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

एक बार पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराज अपनी श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं रहा गया, उन्होंने प्रकट होकर गुफामें विराजमान थे, उसी समय द्वारपर एक सिंह अपकर खड़ा हो गया। आपने विचार किया कि 'आज तो अतिथि-प्रभु पधारे हैं।' उनके भोजनके लिये आपने अपनी जाँघ काटकर मांस सामने रख दिया और प्रार्थना कि 'प्रभो! भोजन कीजिये।' धर्मकी बहुत बड़ी अपने शरीरका दान कौन कर सकता है! आपके

महिमा है और उसका पालन करना बहुत ही कठिन इस चिरित्रको सुनकर लोगोंके मनमें महान् आश्चर्य है। इनकी सच्ची धर्मनिष्ठाको देखकर भगवान् होता है। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

चैठे हैं गुफा में, देखि सिंह द्वार आय गयौ, लयौ यों बिचारि हो अतिथि आज आयौ है। दई जाँघ काटि डारि, कीजियै अहार अजू, महिमा अपार धर्म कठिन बतायौ है॥

दियौ दरसन आय, साँच में रह्यो न जाय, निपट सचाई, दुख जान्यौ न बिलायौ है। Hinduism Discord Server https://dsc.qg/dharmas | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha जन जल देखे हो की झोखत जगत पर, कीर कीन सके जन मन भरमायौ है।। ६१३॥

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* 308 [ भक्तमाल-अङ्क श्रीगदाधरदासजी लाल बिहारी जपत रहत निसि बासर फूल्यौ। सेवा सहज सनेह सदा आनँद रस झूल्यौ॥ भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई। आसय अधिक उदार रसन हरि कीरति गाई॥

हरि बिस्वास हिय आनि कै सपनेहुँ आन न आस की। भली भाँति निबही भगति सदा गदाधरदास की॥१८६॥

प्रकार है—

श्रीगदाधरदासजीकी भक्तिका सर्वदा निर्वाह हुआ, उसमें कभी भी कोई बाधा नहीं उपस्थित हुई। आप श्रीबिहारीलालजीके नामोंका जप करते हुए दिन-रात प्रफुल्लित ही रहते थे। भक्त-भगवन्तकी सेवामें आपका सहज स्नेह था। उसीके आनन्दमें सर्वदा झुमते रहते थे। भक्तमें आपका श्रीगदाधरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस श्रीगदाधरदासजी श्यामसुन्दरके प्रेममें ऐसे डूबे कि उनका घर, धन और परिवार सब कुछ छुट गया। परमविरक्त हो गये। कुछ दिन इधर-उधर घूम-फिरकर

आप महाराष्ट्रमें ताप्ती नदीके तटपर ब्राहानपुरको आये और उसीके निकट एक बागमें आसन लगाकर बैठ गये। लोगोंने आपसे बहुत अनुनय-विनय करके कहा—'प्रभो! गाँवमें चलकर किसी मन्दिरमें रहिये।' परंतु उनके कहनेसे आप गाँवमें नहीं गये। उसका कारण यह कि आपको एकान्तमें ही सुख था।

भगवद्भजनको छोड्कर दूसरी किसी कामनासे आपका कोई प्रयोजन न था। एक बार कई दिनोंतक लगातार वर्षा होती रही, उससे आपका शरीर और वस्त्र भीग गये। इनके कष्टको देखकर प्यारे श्यामसुन्दरने अत्यन्त मीठे स्वरमें एक भक्त सेठसे कहा—तुम्हारे घरमें बहुत-सा धन भरा हुआ है, तुम श्रीगदाधरदासजीके लिये और उनके ठाकरजीके लिये एक सुन्दर मन्दिर बनवाओ और उन्हें लाकर उस मन्दिरमें रखो।

भगवान्की आज्ञा पाकर उस सेठ भक्तने सुन्दर

विशाल मन्दिर बनवाया और भगवान्की आज्ञाको

आपने स्वप्नमें भी किसी दूसरेकी आशा नहीं रखी॥ १८६॥ सुनाकर (संत-सेवार्थ) बहुत आग्रह किया, तब बड़ी मुश्किलसे आप उस मन्दिरमें आये। आपने उस मन्दिरमें भगवान्के श्रीविग्रहकी स्थापना की और उनका नाम 'श्रीलालबिहारीजी' रखा। श्रीठाकुरजीके

बडा भारी अनुराग था। आपकी सन्त-सेवाकी रीति सभीको

अच्छी लगती थी। आप मन-बुद्धिसे परम उदार थे और जिह्वासे सदा भगवान्की कीर्तिका गान किया करते थे।

हृदयमें केवल भगवान्का विश्वास और भरोसा रखकर

सुन्दर मधुर स्वरूपको देख-देखकर आप सर्वदा उसी

आनन्दमें विभोर रहते। बड़े प्रेमके साथ आप सन्तोंकी सेवा करते, इनकी सेवासे सन्तजन बहुत प्रसन्न होते

और सन्तोंको सुखी देखकर आप भी प्रसन्न रहते। सन्त-भगवन्तकी सेवाके लिये जो भी कुछ सामान आता था, आप उसे उसी दिन सेवामें लगा देते, बासी अन्न-धन दूसरे दिनके लिये नहीं रखते। एक बार रसोइयाने छिपाकर कुछ सामान रख रखा था। संयोगवश आश्रममें कई सन्त आ गये। तब श्रीगदाधरदासजीने अपने रसोइयासे कहा—कुछ सामान हो तो उसीसे रसोई बनाकर प्रेमपूर्वक इन साधु-सन्तोंको भोजन करा दो। शिष्य रामदास और वेंकटदास रसोइयाने

श्रीगदाधरदासजीसे कहा—'श्रीठाकुरजी भूखे न रहें,

इसलिये मैंने भोगके लिये कुछ थोड़ी-सी सामग्री

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीनारायणदासजी भक्ति जोग जुत सुदृढ़ देह निज बल करि राखी। हिएँ सरूपानंद लाल जस रसना भाषी॥ परिचय प्रचुर प्रताप जान मनि रहस सहायक। श्रीनारायन प्रगट मनो लोगनि सुखदायक।। नित सेवत सन्तनि सहित दाता उत्तर देस गति। हरि भजन सींव स्वामी सरस श्रीनारायनदास अति॥१८७॥ स्वामी श्रीनारायणदासजी भगवद्भजनकी सीमा थे रहस्यमय ढंगसे आपकी सहायता करते थे। इसी तरह आप और आपका हृदय अति सरस था। आपने भक्तियोगसे युक्त सबके सहायक थे। श्रेष्ठज्ञानी होनेके कारण आप रहस्यका बोध कराकर साधककी सहायता करते थे। विश्वका सुदृढ़ शरीरको अपनी भक्तिके प्रतापसे स्वस्थ एवं भक्तिमय आचरण करनेयोग्य रखा। हृदयमें श्रीगोपाललालके सुन्दर कल्याण करनेके लिये मानो स्वयं नारायण भगवानुने ही रूपके ध्यानका आनन्द लेते हुए आप जिह्वासे उनके अवतार लिया था। आप बडे प्रेमके साथ सन्तोंकी सेवा सुयशका वर्णन करते रहते थे। भक्तिके प्रतापसे आपके द्वारा करते थे। उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेशमें निवास करनेवालोंको आपने उपदेश देकर उन्हें सद्गति प्रदान की॥ १८७॥

अनेक चमत्कार प्रकट हुए। सुजानशिरोमणि श्यामसुन्दर श्रीनारायणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— महात्मा श्रीनारायणदासजी पहले बदरिकाश्रममें निवास करते थे, फिर वहाँसे श्रीमथुरापुरीको चले आये। यहाँ पुरीका दर्शन करके आपको बड़ा भारी सुख मिला। आप श्रीकेशवदेवजीके द्वारपर रहने लगे। आपने मनमें विचार किया कि मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये जो लोग आते हैं, उन्हें भगवान्के दर्शनोंका आनन्द अच्छी प्रकारसे नहीं मिलता है, क्योंकि उनके मनमें जुतोंके चोरी चले जानेका भय बना रहता है, इसलिये में दर्शनार्थियोंके जूतोंकी रखवाली किया करूँ तो इन भक्तोंको भगवद्दर्शनका पुरा-पुरा आनन्द मिलेगा। ऐसा निश्चयकर आप जुतोंकी

रखवाली करने लगे। इससे दर्शनार्थी और स्वयं आप भी

आनन्दित हुए। दूसरे लोग आपके प्रभावको तथा आपकी

सेवा-निष्ठाको नहीं जानते थे कि आपके हृदयमें सेवाका

कैसा अपार भाव भरा है। एक बार एक दुष्ट आया और

उसने एक बड़ी-सी पोटली आपके सिरपर रख दी और

कहा कि इसे ले चलो। आप बिना किसी ननु-नचके

पोटली लादकर उसके साथ चल दिये।

सिरपर लिये जा रहे थे तो उसी समय रास्तेमें एक कोई बड़े प्रतिष्ठित सज्जन मिल गये और उन्होंने श्रीनारायणदासजीको पहचान लिया। फिर बड़े अनुरागमें भरकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और उस दुष्टको बड़े जोरसे डाँटा-फटकारा। तब उस महादुष्टने भी आपकी महिमाको जाना और उसने भी इनके चरण पकड़ लिये। उसके मनमें बड़ा दु:ख हुआ। उसका देहाभिमान छूट गया और वह पछताकर कहने लगा कि मुझसे बड़ी भारी भूल हुई। श्रीनारायणदासजीने उसे समझाते हुए कहा—'तुम्हारा काम हो रहा है, तुम अपने मनमें किसी बातकी चिन्ता मत करो।' यह सुनकर वह रोने लगा, उसके नेत्रोंसे आँस्ओंकी धारा बहने लगी। उसने प्रार्थना करते हुए श्रीनारायणदासजीसे कहा कि 'अब मैं घरका मुख नहीं देखुँगा। मुझे अपनी शरणमें रखिये।' उसके दैन्य-भावसे प्रसन्न होकर आपने उसे भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। उसे भी मालुम हो गया कि

जब श्रीनारायणदासजी उस दुष्टकी पोटलीको

छप्पय १८८ ] \* श्रीभगवानदासजी \* भक्ति-जगत् कैसा होता है। साधु-सन्तोंमें क्या विशेषता | तात्पर्य यह है, साधुजन मेघके समान समदर्शी और उदार है, उनकी कैसी क्षमा-शक्ति होती है। इस चरित्रका होते हैं। श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है— आये बद्रीनाथ जू तें, मथुरा निहारि नैन, चैन भयौ, रहें जहाँ केसौजू कौ द्वार है। आवै दरसनी लोग जूतनि कौ सोग हिये रूप कौ न भोग होत कियौ यों बिचार है॥ करै रखवारी, सुख पावत है भारी, कोऊ जानै न प्रभाव, उर भाव सो अपार है। आयो एक दुष्ट पोट पुष्ठ सो तौ सीस दई लई, चले मग ऐसौ धीरज कौ सार है॥६१८॥ कोऊ बड़ौ नर, देखि मग पहिचानि लिये किये, परनाम भूमि परि, भरि नेह कौ। जानिकै प्रभाव, पाँव लीने महादुष्ट हुँ नै, कष्ट अति पायो छूट्यौ अभिमान देह कौ॥ बोले आप 'चिन्ता जिनि करौ, तेरौ काम होत', नैन नीर सोत 'मुख देखौं नहीं गेह कौ'। भयौ उपदेश, भक्ति देस उन जान्यौं साधु सक्ति कौ विसेस, इहाँ जानौ भाव मेह कौ॥६१९॥ श्रीभगवानदासजी भजन भाव आरूढ़ गूढ़ गुन बलित ललित जस। श्रोता श्रीभागवत रहसि ग्याता अच्छर रस।। मथुरापुरी निवास आस पद सन्तनि इकचित। श्रीजुत खोजो स्याम धाम सुखकर अनुचर हित॥ अति गंभीर सुधीर मित हुलसत मन जाके दरस। भगवानदास श्रीसहित नित सुहृद सील सज्जन सरस॥ १८८॥ भक्त श्रीभगवानदासजी श्री (-भक्ति)-से सम्पन्न | थे। आप श्रीमथुरापुरीमें निवास करते थे और एकाग्र थे। सभीके सुहृद, सुशील, सज्जन और परम रसिक थे। मनसे एकमात्र सन्तोंके श्रीचरणोंकी आशा रखते थे। आप सर्वदा भजन-भावमें तत्पर रहते थे। गोप्य गुणोंसे श्रीमान् खोजीजी एवं श्यामदासके परिवारको सुख युक्त भगवान्के मनोहर सुयशसे आपका हृदय परिपूर्ण देनेवाले तथा उनके हितकारी सेवक थे। आप अत्यन्त था। श्रीमद्भभागवतके रसिक श्रोता थे, चरित्रोंके गम्भीर धीर-गम्भीर बुद्धिवाले एवं ऐसे प्रेमी भक्त थे कि आपके रहस्य तथा अक्षर (अविनाशी)-के रसके ज्ञाता अनुभवी 🖡 दर्शन-मात्रसे मन प्रसन्न हो जाता था॥१८८॥ श्रीभगवानदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— चाहिये। उसने मथुरा नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया कि श्रीभगवानदासजी आमेरनरेश भारमलके पुत्र थे। आप बादशाह अकबरके मनसबदार थे। अकबरकी 'कोई भी माला-तिलक धारण न करे, यदि कोई माला-मृत्युके बाद जहाँगीरके समयमें आपको मथुराका हाकिम तिलक धारण किये देखा जायगा तो उसे फाँसीकी सजा बनाया गया। आपका वैष्णव तिलक और कण्ठीमें दी जायगी।' बादशाहकी आज्ञाके अनुसार बहुतोंने विशेष प्रेम था। एक बार (जहाँगीर) बादशाहके मनमें प्राणोंके लोभमें आकर माला-तिलक धारण करना बन्द आया कि तिलक-कण्ठी धारण करनेका प्रण किसका कर दिया। बहुत-से लोग अपने घरोंमें छिप गये, बाहर स्रिक्षा त्राहित प्रमुख्य है। इस प्रमुख्य स्त्रिक्ष क्रिक्ष क्रिक्

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क बादशाह जानेगा तो मरवा डालेगा, परंतु भक्त श्रीभगवान-निष्ठा और निर्भयताको देखकर रीझ गया। प्रसन्न होकर दासजी बादशाहकी आज्ञाको सुनकर बिलकुल भयभीत नहीं बादशाहने श्रीभगवानदासजीसे कहा—'आप जो चाहो, हुए, क्योंकि उनके हृदयमें आनन्दस्वरूपा अपार भक्ति वह माँग लो।' आपने अपने जीवनपर्यन्त मथुरापुरीमें भरी हुई थी। उन्होंने अति सुन्दर वैष्णव-वेश (द्वादश निवास करनेकी इच्छा प्रकट की, इसे बादशाहने स्वीकार तिलक एवं कण्ठी-माला) धारण किया और बादशाहके कर लिया। इसके बाद आप मथुराको छोडकर अन्यत्र दरबारमें जा पहुँचे। बादशाहको माला-तिलक धारण कहीं नहीं गये। आपने श्रीगोवर्धनमें श्रीहरिदेवजीका करनेकी दृढ़-निष्ठा बहुत ही प्रिय लगी। वह इनकी इस । लाल पत्थरका मन्दिर बनवाया, जो बड़ा ही दर्शनीय है। श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— जानिबे कों पन, पृथीपित मन आई, यों दुहाई लै दिवाई माला तिलक न धारियै। मानि आनि प्रान, लोभ, केतिकनि त्याग दिये, छिपे नहीं जात, जानी बेग मारि डारियै॥ भगवानदास उर भक्ति सुखरास भन्त्यौ कन्त्यौ लै सुदेस देस, रीति लागी प्यारियै। रीझ्यौ नृप देखि, रीझ मथुरा निवास पायौ, मन्दिर करायौ 'हरिदेव' सों निहारियै॥६२०॥ श्रीकल्याणदासजी जगन्नाथ को दास निपुन अति प्रभु मन भायो। परम पारषद समुझि जानि प्रिय निकट बुलायो।। प्रान पयानो करत नेह रघुपति सों जोर्यो। सुत दारा धन धाम मोह तिनुका ज्यों तोरयो॥ कौंधनी ध्यान उर में लस्यौ, राम नाम मुख जानकी। भक्त पच्छ ऊदारता, यह निबही कल्यान की॥१८९॥ भक्तोंका पक्ष लेना तथा उदारतापूर्वक सबसे व्यवहार । पास बुला लिया। इन्होंने प्राण त्यागते समय स्त्री-पुत्र, करना—इन दोनों बातोंको श्रीकल्याणदासजीने जीवनभर धन-धामके महामोहको तृणके समान तोड़कर केवल निभाया। ये श्रीजगन्नाथजीके सेवक थे और सेवा करनेमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे स्नेह जोड़ा और हृदयमें श्रीरामजीकी बड़े चतुर थे, अत: भगवानुको बहुत ही अच्छे लगते थे। कौंधनीका ध्यान तथा मुखसे श्रीसीतारामजीके नामका भगवानुने इन्हें अपना नित्य प्रिय पार्षद मानकर अपने । उच्चारण करते हुए सद्गति प्राप्त की ॥ १८९ ॥ श्रीकल्याणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीकल्याणदासजी सन्त-सेवी सद्गृहस्थ थे। आप जाति-पॉॅंतिका कोई पता नहीं है, आपने इन्हें कैसे पहले ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और श्रीराघवेन्द्रसरकार खिला दिया ? इसपर आपने सबको समझाते हुए कहा कि सन्तोंका 'अच्यृत' गोत्र होता है और ये विश्वका कल्याण

ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और श्रीराघवेन्द्रसरकार आपके इष्टदेव थे। एक बार आपके यहाँ कन्याका विवाह था। जाति-बिरादरीके साथ-साथ सन्तोंको भी आपने आमन्त्रित कर रखा था। जब भोजनका समय हुआ तो आपने सन्तोंकी पंगत पहले करा दी। इससे अन्य ब्राह्मण

लोग बडे असन्तुष्ट हुए और कहने लगे कि इन साधुओंकी

आपने करनेवाले होते हैं। सन्त धरा-धामपर साक्षात् भगवान् ग तो श्रीहरिके प्रतिनिधि होते हैं, अत: उनके पहले प्रसाद ग्रहण गह्मण कर लेनेसे आप सबको असन्तृष्ट नहीं होना चाहिये। इस

प्रकारकी इनकी सन्त-निष्ठा देखकर अन्य ब्राह्मण भी

<b>७प्पय १९०</b> ]					
***************************************					
प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये। आपके यहाँ सन्त-सेवा चल	करेंगे। यह कहकर आपने सब सन्तोंको भोजन करा दिया,				
रही है, सुनकर और भी बहुतसे अनामन्त्रित सन्त भी आ	फिर जब घरातियों-बारातियोंको खिलानेकी बात आयी तो				
पहुँचे। यह देखकर बिरादरीके लोग कहने लगे—अभी	आपने पंगतमें सबको बैठवा दिया और परोसनेवालोंसे				
आपके घराती और बराती बाकी ही हैं, अगर आप इन	परोसनेको कहा। प्रभुकृपासे सभीने पूर्ण तृप्तिका अनुभव				
अनामन्त्रित सन्तोंको भोजन करा देंगे तो उनके लिये क्या	किया और भोजनमें किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं आयी।				
बचेगा ? इसपर आपने कहा—चिन्ता करनेकी बात नहीं है,	सन्त-कृपाका ऐसा चमत्कार देखकर सब लोग धन्य-धन्य				
सन्तोंको खिलानेसे कम नहीं पड़ता, सारी पूर्ति रामजी	कह उठे।				
श्रीसन्तदासजी तथा श्रीमाधवदासजी					
संतदास सदबृत्ति जगत	छोई करि डार्यो।				
महिमा महा प्रबीन भक्ति	वित धर्म विचार्यो॥				
बहुर्यो माधौदास भजन बल परचौ दीनो।					
करि जोगिनि सों बाद बर	<b>ग्न पावक प्रतिली</b> नौ॥				
परम धर्म बिस्तार हित	प्रगट भए नाहिन तथा।				
सोदर सोभूराम के सुनौ स	iत तिन की कथा॥१ <b>९०॥</b>				
हे भगवद्भक्तजनो! श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके दोनों	। करके उसे अपनाया। दूसरे भाई श्रीमाधवदासजीने				
सहोदर भाइयोंकी कथाका श्रवण कीजिये। सदाचार	भजनके प्रतापसे चमत्कार दिखाया और अभक्त योगियोंसे				
एवं सात्त्विक वृत्तिसे निर्वाह करनेवाले श्रीसन्तदास	   वाद-विवाद करके अपने वस्त्र जलती अग्निमें डालकर				
् (संतरामजी)-ने इस जगत्को नीरस एवं नि:सार वस्तु	   ज्यों–के-त्यों वापस कर लिये। परमधर्ममयी श्रीहरिभक्तिके				
जान-मानकर उसे त्याग दिया। आप महामहिमावाले	प्रचार-प्रसारके लिये ही ये दोनों भाई प्रकट हुए।				
तथा प्रवीन (अर्थात् सत्य-असत्यका निर्णय करनेमें	इन्होंने जैसा कार्य किया, वैसा दूसरा कोई नहीं कर				
चतुर) थे, भक्तितत्त्वके ज्ञाता थे, अतः सोच-विचार	<b>3</b> (				
श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजीके विषयमें	विशेष विवरण इस प्रकार है—				
श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजी दोनों सगे	इससे वे देवगण अप्रसन्न नहीं होते हैं। इस सम्बन्धमें				
भाई थे। श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके आशीर्वादसे इन दोनोंका	जोगीने श्रीमाधवदासजीसे बहुत वाद-विवाद किया, पर				
जन्म हुआ था। एक बार श्रीमाधवदासजीने एक	इनसे नहीं जीता, तब बोला कि—हम अपने कानोंकी				
नाथपंथी योगीके शिष्य एक राजाको दीक्षा देकर वैष्णव	मुद्राएँ और सिंगीको अग्निमें डालते हैं, तुम अपनी				
बना लिया। इससे वह कनफटा योगी बहुत नाराज हुआ	कण्ठी-मालाको डालो। जिसकी वस्तुएँ जल जायँ, वह				
और बोला कि तुमने ऐसा क्यों किया? आपने कहा—	हारा और जिसकी न जलें, वह जीता माना जायगा।				
ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिसे पूजित होनेके कारण विष्णुभगवान्	   श्रीमाधवदासजीने कहा—तुलसी-मालाको हम अग्निमें				
श्रेष्ठ हैं। उनके चरणोंसे गंगाकी उत्पत्ति हुई, जो	   नहीं डाल सकते हैं। हम अपना वस्त्र डालेंगे। अग्निमें				
त्रिलोकतारिणी अघहारिणी हैं; अत: किसी भी देवी-	। डालनेपर जोगीकी मुद्राएँ और सिंगी जल गयीं, परंतु				
देवके उपासकको विष्णु-भक्तिका उपदेश देना उचित है,	इनका अँचला नहीं जला। हारकर उसने चरण पकड़े,				

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* िभक्तमाल-अङ् चलकर गाँवमें रहिये, वहाँ आपके भोजनादिका यथोचित क्षमा-प्रार्थना करके अनुयायी बना। उस योगीमें अग्नि-स्तम्भन सिद्धि थी। कई स्थानोंमें उसका प्रदर्शन कर प्रबन्ध हो जायगा। यहाँ जंगलमें कुछ भी प्रबन्ध नहीं चुका था, अत: उसे अहंकार था। भक्तिके सामने हो सकता है। श्रीसन्तदासजीने कहा-मुझे तो मायिक सिद्धियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये वह हार श्रीगोविन्दजीकी आशा है। आप लोग मेरी चिन्ता न गया। उन दिनों हरियाणामें बड़ा आतंक फैला हुआ था, करें। यह सुनकर गाँवके लोग निराश होकर चले वे वैष्णव सन्तोंको टिकने नहीं देते थे। एक बार कई आये। आप वहीं भजनमें मग्न रहे। भगवान्ने नगरके हाकिमको आदेश दिया कि मेरा भक्त वनमें बैठा है, लोगोंने आपकी भजन-कुटीमें चारों ओरसे आग लगा दी, पर कुटी नहीं जली। भक्तिके ऐसे प्रभावको देखकर उसकी सेवा करो। उस हाकिमने बहुतसे मिष्ठान्न-बहुत-से लोग आपके शिष्य बन गये। पक्वान्न लाकर आपको भोजन कराया। समीपमें एक बार श्रीसन्तदासजीके मनमें उत्कट वैराग्य चौकीदारोंको नियुक्त किया। इसके बाद आपकी महिमा उत्पन्न हुआ और ये जंगलमें जा विराजे। संसारियोंसे बढी। अनेक लोग दर्शन करने और उपदेश लेने आने लगे। इस प्रकार आप दोनों भाइयोंने परमधर्मका आप कुछ भी प्राप्त करनेकी आशा नहीं करते थे। बहुत-से ग्रामीण लोगोंने आपसे आकर कहा कि आप विस्तार किया। श्रीकन्हरदासजी कृष्न भक्ति को थंभ ब्रह्मकुल परम उजागर। छमासील गंभीर, सर्ब लच्छन को आगर॥ सर्वसु हरिजन जानि हृदय अनुराग प्रकासै। असन बसन सनमान करत अति उज्ज्वल आसै॥ सोभूराम प्रसाद तें कृपादृष्टि सब पर बसी। बूड़िए बिदित कन्हर कृपाल आतमाराम आगम दरसी॥ १९१॥ सब कुछ जानकर उनके प्रति बड़ा अनुराग करते थे। श्रीकन्हरदासजी बूडिया ग्रामके निवासी, आत्मामें रमण करनेवाले, परम दयालु, शास्त्रोंके तथा भविष्यके भोजन-वस्त्र आदिसे सेवा तथा उनका बहुत सम्मान द्रष्टा थे। आप श्रीकृष्णभक्तिके आधारभूत खम्भेके तुल्य करते थे। आपका उद्देश्य बड़ा पवित्र था। गुरुदेव थे तथा ब्राह्मणवंशमें प्रकट, अति प्रसिद्ध, क्षमाशील, श्रीस्वभूरामजीकी कृपाका बल पाकर आपने सभी गम्भीर एवं सभी शुभगुणोंसे सम्पन्न थे। भक्तोंको अपना जीवोंके ऊपर कृपाकी वर्षा की॥ १९१॥ श्रीकन्हरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— दी कि बीस सन्तोंके लिये सामग्री और बढा दो। भण्डारी श्रीकन्हरदासजी पंजाब प्रान्तके बृड़िया ग्रामके निवासी थे। आप भविष्यद्रष्टा सन्त थे। भविष्यमें घटित होनेवाली और रसोइयेने आज्ञाका पालन किया और सचमुच पंगतके घटनाओंकी जानकारी आपको पहले ही हो जाती थी और समय बीस मूर्तियाँ आ गयीं। इसी प्रकार आप प्राय: अपने आप उन्हें अपने शिष्योंको बता देते थे। एक बार आपके यहाँ और अपने सेवकोंके यहाँ आनेवाले सन्तोंकी संख्या यहाँ रसोई बन रही थी, अचानक आपने भण्डारीको आज्ञा बता देते और उनकी बतायी संख्या सदैव सत्य होती।

बिस्वबास बिस्वास दास परिचय बिस्तारन॥

बिबिधि भक्त अनुरक्त ब्यक्त बहु चरित चतुर अति॥ लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुद्ध उचारन।

श्रीगोविन्ददासजीके कण्ठमें सुशोभित होकर वृद्धिको

प्राप्त हुआ। इन्हें सम्पूर्ण भक्तमाल कण्ठस्थ था। अत्यन्त सुन्दर शील-स्वभाववाले तथा मेघके समान नील वर्णवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंमें आपकी

सहज ही रुचि थी। शुद्ध बुद्धिके तो आप समुद्र ही थे। सभी प्रकारके भक्तोंमें आपका परम अनुराग था और उन सबके चरित्रोंका वर्णन करनेमें आप अत्यन्त

चतुर थे तथा श्रीभक्तमालको पढ़ते या गाते समय ह्रस्व-दीर्घ स्वरोंका यथावत् उच्चारण करते थे। चरित्रोंका 🖡

श्रीजगतसिंहजी श्रीजुत नृपमनि जगतसिंह दृढ़ भक्ति परायन। परम प्रीति किए सुबस सील लक्ष्मीनारायन॥ जासु सुजसु सहजहीं कुटिल कलि कल्प जु धायक।

भक्तेस भक्त भव तोषकर संत नृपति बासो कुँवर॥१९३॥ भक्तोंके स्वामी जो भगवान् उनके महान् भक्त श्रीशिवको | है। आपकी आज्ञा अटल थी, उसका उल्लंघन करनेका सन्तुष्ट करनेवाले भक्तराज श्रीजगतसिंहजी वासोदेईके सुपुत्र

आपने अपनी सच्ची प्रीति तथा विनम्र स्वभावसे श्रीलक्ष्मीनारायणभगवान्को अपने वशमें कर लिया था। आपका सूयश कलियुगके दोष-पापोंको नष्ट करनेवाला । सर्वथा नाश हो जाता था॥ १९३॥

जानि जगत हित सब गुननि सुसम नरायनदास दिय। भक्त रतन माला सुधन गोबिंद कंठ बिकास किय॥१९२॥ भक्तरत्नमाला (भक्तमाल)-रूपी उत्तम वर्णन करनेमें वाक्य एवं शब्दोंकी इस प्रकार योजना

करते थे कि उसमें विरोध न हो, अर्थकी संगतिमें बाधा न हो। आप सम्पूर्ण विश्वमें निवास करनेवाले भगवान् एवं उनके भक्तोंमें दृढ़ विश्वास रखते थे और भक्तोंके चमत्कारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करते थे। सभी जीवोंके हितमें तथा भक्त-भक्ति-भगवन्त और

जानकर 'भक्तरत्नमाल' रूप सम्पत्तिको इन्हें प्रदान किया, अतः ये श्रीभक्तमालके श्रेष्ठ प्रवक्ता प्रथम भक्तमाली हुए॥ १९२॥

गुरुदेवकी सेवा-निष्ठा आदिमें श्रीनाभाजीने अपने समान

आग्या अटल सुप्रगट सुभट कटकनि सुखदायक॥ अति ही प्रचंड मार्तंड सम तम खंडन दोर्दंड बर।

साहस किसी भी योद्धा या दुष्टमें नहीं होता था। समरभूमिमें थे। आप राजाओंमें श्रेष्ठ, भक्तिमें दृढ़ निष्ठावाले भक्त थे। आपके पराक्रमको देखकर वीरोंकी सेनाएँ प्रसन्न हो जाती

> थीं और दूने उत्साहसे युद्ध करने लगती थीं। आपके भुजदण्ड प्रचण्ड सूर्यके तुल्य थे, उससे भयरूप अन्धकारका

श्रीजगतसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— Hinduism Discord Server https://dsc.qq/dharma | MADE:WITH I OVE BY Avinash/Sha

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क प्रतिज्ञा कर ली थी कि भगवान्का डोला सदा अपने साथ कर लिया।' इस प्रकार इनकी प्रशंसा करते-करते दोनों रखुँगा। तदनुसार डोला आपके साथ ही रहता। जब ही भगवत्प्रेमके प्रसंगमें डूब गये। आप युद्ध करनेके लिये लड़ाईके मैदानमें जाते तो आप राजा जगतसिंहजीने जयसिंहजीसे कहा—'मुझमें आगे रहते और डोला पीछे रहता। इसके अतिरिक्त जब भगवत्प्रेम कहाँ है? सच्चा प्रेम तो आपकी बहन कभी आप किसी यात्रामें जाते तो आगे-आगे भगवानुका दीपकुँवरिजीमें है, उसके प्रेमकी गन्धको भी मैं नहीं पा डोला रहता और सेवककी तरह आप पीछे-पीछे चलते। सकता हूँ, वे तो वात्सल्य प्रेमरसकी खान हैं। मैं तो थोड़ी-आपके हृदयमें श्रीठाकुरजीकी सेवाका ऐसा उत्साह था बहुत भगवान्की सेवा कर पाता हूँ।' यह सुनकर कि सेवाके लिये नित्य जल भरकर घड़ेको अपने सिरपर जयसिंहजीको बड़ा सुख हुआ। कुछ समयसे किसी रखकर लाते। आपकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर जयसिंह कारणवश ये अपनी बहन श्रीदीपकुँवरिसे नाराज रहते थे। और जसवन्तसिंहको बडी प्रसन्नता हुई। एक बार अब श्रीजगतसिंहजीसे उनके प्रेमका परिचय पाकर दिल्लीमें सभी राजा लोग इकट्ठे हुए। वहाँ श्रीयमुनाजलका जयसिंहजीने उस नाराजगीको अपने हृदयसे निकाल दिया। बहनके जो गाँव छीन लिये थे, वे फिरसे दे दिये घड़ा गाजे-बाजेसहित सिरपर रखकर लाते हुए श्रीजगतसिंहको जयसिंह और जसवन्तसिंहने देखा तो और स्वयं हरिका ध्यान करने लगे। मन्त्रीको लिखित धरतीपर लेटकर प्रणाम किया। फिर विनती करते हुए आदेश दिया कि 'बहनजी जैसे-जैसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करना चाहें, वैसे-वैसे उन्हें करने देना। इनकी कृपासे कहा—'वस्तुतः आपका शरीर धारण करना ही सफल है, क्योंकि आपने शरीरसे सेवा करके भगवत्प्रेमको प्राप्त । अब मैं भी दिन-रात भक्त-भगवद्गुणोंका गान करता हूँ।' श्रीप्रियादासजीने राजा जगतसिंहके इस भगवत्प्रेमका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है— जगता कौ पन मन सेवा श्री नारायण जू, भयौ ऐसौ पारायण, रहै डोला सङ्ग ही। लिखे कों चलै आगै, आगै सदा पीछे रहै, ल्यावै जल सीस, ईश भर्त्यौ हियो रङ्ग ही॥ सुनि जशवन्त जयसिंह के हुलास भयौ, देख्यौ, दिल्ली माँझ, नीर ल्यावत अभङ्ग ही। भूमि परि, बिनै करी, 'धरी देह तुमहीं नै', यातै पायौ नेह भीजि गये यों प्रसङ्ग ही॥६२१॥ नुपति जैसिंहजु सों बोल्यौ 'कहा नेह मेरे ? तेरी जो बहिन ताकी गन्ध को न पाऊँ मैं'। नाम 'दीपकुंवरि' सो बड़ी भक्तिमान जानि, वह रसखानि ऐपै कछुक लड़ाऊँ मैं॥ सुनि सुख भयौ भारी, हुती रिस वासों, टारी, लिये गांव काढ़ि फेरि दिये, हरि ध्याऊँ मैं। लिखिकै पठाई 'बाई करें सो करन दीजै, लीजै साधु सेवा किर निस दिन गाऊँ मैं'॥ ६२२॥ श्रीगिरिधरग्वालजी प्रेमी भक्त प्रसिद्ध गान अति गदगद बानी। अंतर प्रभु सों प्रीति प्रगट रहै नाहिन छानी॥ नृत्य करत आमोद बिपिन तन बसन बिसारै। हाटक पट हित दान रीझि तत्काल उतारै॥ मालपुरै मंगल करन रास रच्यो रस रंग कौ। गिरिधरन ग्वाल गोपाल को सखा साँचिलो संग कौ॥१९४॥ श्रीगिरिधरग्वालजी गोपालकृष्णके सच्चे सखा और । उस समय आपके हृदयकी प्रीति छिपाये नहीं छिपती थी, साथी थे। ये प्रसिद्ध प्रेमी भक्त थे। प्रेमके आवेशमें प्रकट हो जाती थी। प्रेम-विवश आनन्दमें मग्न होकर आकर गद्गद कण्ठसे जब ये भगवद्गुणगान करते तो | जब ये श्रीवृन्दावनमें नृत्य करते तो उस समय इन्हें अपने

छप्पय १९५]	१५] * श्रीगोपालीजी * ४८५			
		***********************		
शरीरको तथा वस्त्राभूषणोंको सुध नहीं रहती। उस		बार प्रेमी भक्तोंके मंगल कल्याणके लिये आपने मालपुरा		
यदि कोई आपके सामने पड़ जाता तो आप रीझव		(जयपुरके निकट) नामक ग्राममें रास करवाया। उसमें		
सोनेके गहने अथवा जरीदार वस्त्र उतारकर दे देवे	ते। एक	रसरूपी रंगकी वर्षा हुई, जिसमें सभी रँग गये॥ १९४॥		
श्रीगिरिधरग्वालजीके विषयमें विशेष वि	वरण इर	प प्रकार है—		
श्रीगिरिधरग्वालजी जातिसे ब्राह्मण थे, परंतु गो	चारणमें	कि 'मृतकका चरणोदक लेना ठीक नहीं है, आप इसे छोड़		
स्वाभाविक स्नेह होनेके कारण आपकी 'ग्वाल' उप	पाधि हो	दीजिये।' आपने उत्तर दिया कि 'जिसे सन्तोंमें अश्रद्धा हो,		
गयी थी। श्रीगिरिधरग्वालजीको सर्वदा साधु-सेव	ाका ही	उनके महत्त्वको न जानता हो, वह उन्हें मृतक मानकर		
स्मरण रहता था। सन्तोंका दर्शन करके आप कृतार्थ हो		उनका चरणामृत न ले। मैं सन्तोंमें श्रद्धा करता हूँ, उनके		
जाते थे, अपनेको धन्य मानते थे। सन्त-तत्त्वको	आपने	अद्भुत प्रभावको भलीभाँति जानता हूँ। शरीर त्यागकर		
भलीभाँति समझ लिया था, अतः शरीर छूट जाने	के बाद	भगवद्धाम जानेवाले सन्तोंको मृतक नहीं मानता हूँ। अत:		
भी उस सन्तका चरणामृत लेते थे। इससे अधिक	सन्तोंमें	उनका चरणामृत लेता हूँ, जिसे मृतक-बुद्धि हो, आपलोग		
प्रेम करनेकी रीति और क्या हो सकती है। जो ब्राह्म	ण लोग	उसे मना कीजिये।' यह सुनकर सबोंने इनका जाति-पॉॅंतिसे		
इनकी दृढ़-निष्ठासे अपरिचित थे, उन्होंने मृतकका चरणामृत		बहिष्कार कर दिया, फिर चमत्कारको देखकर सभी नतमस्तक		
लेना अनुचित मानकर पंचोंको एकत्र किया और उसमें		हुए। सबको इनकी दृढ़निष्ठा अच्छी लगी। सभी लोग		
श्रीग्वालभक्तजीको भी बुलाया। सभी लोगोंने इन	से कहा	इनकी प्रशंसा करने लगे।		
श्रीप्रियादासजीने श्रीगिरिधरग्वालजीकी इ	इस सन्त	निष्ठाका वर्णन इस प्रकार किया है—		
गिरिधर ग्वाल, साधु सेवा ही कौ ख्याल	गिरिधर ग्वाल, साधु सेवा ही कौ ख्याल जाके, देखि यौं निहाल होत प्रीति साँची पाई है।			
सन्त तन छूटे हूँते लेत चरणामृत जो, और अब रीति कहौ कापै जात गाई है।।				
भये द्विज पञ्च इंक ठौरे सो प्रपञ्च मान्यौ आन्यौ सभा माँझ कहैं 'छोड़ौ न सुहाई है।				
'जाके हो अभाव मत लेवौ, मैं प्रभाव जानौं मृतक यों बुद्धि ताकौ बारो' सुनि भाई है।। ६२३।।				
ş	श्रीगोपालीजी			
प्रगट अंग में प्रेम नेम सों मोहन सेवा।				
प्रगट अंग म प्रम नम सा माहन सवा। कलिजुग कलुष न लग्यो, दास तें कबहुँ न छेवा॥				
		_		
बानी सीतल सुखद सहज गोबिंद धुनि लागी।				
लक्षन कला गँभीर	धो	र संतनि अनरागी॥		
		क भक्ति निज उर धरी।		
_				
		त जसोदा अवतरी॥१९५॥		
		देनेवाली थी। श्रीगोविन्दभगवान्के नामको सदा रटती		
लिये श्रीगोपालीबाईके रूपमें मानो श्रीयशोदाज		रहती थी। भक्ता एवं पतिव्रता स्त्रियोंके सभी शुभ		
अवतार लिया था। इनके अंग-प्रत्यंगमें प्रेम प्रव		लक्षण एवं कलाएँ आपमें विद्यमान थीं। स्वभावसे		
नित्य-नियमसे अपने मोहनलालकी सेवा करत				
कलियुगके दोष-पाप आपके तन-मनको छूतव	_	श्रीगोपालीबाईका अन्त:करण सदा परम पवित्र रहता		
पाये थे और भक्तोंसे किसी प्रकारका छल-कपट				
नहीं रखा। आपकी वाणी सहज ही शीतल ए	व सुख	की ॥ १९५ ॥		

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीगोपालीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीगोपालीजी भगवान् श्रीकृष्णकी वात्सल्यभावसे करो। मैं रसका आस्वादन अपने भक्तोंकी रसनासे करता भावित भक्त थीं। ऐसा लगता था मानो श्रीयशोदाजी ही हूँ। तुम भक्तोंको उनकी रुचिके अनुसार भोजन कराओ, भक्तिमती गोपालीजीके रूपमें गोलोकसे पृथ्वीपर आ उनकी सेवा करो। गयी थीं। वही आवेश आपके अंगमें था। आप बड़े इस आज्ञाके बाद बाईको भक्तोंकी इच्छाका अनुभव प्रेमसे मोहनलालकी सेवा करती थीं। एक बार इनकी होने लगा। तदनुसार ये सेवा करने लगीं। एक दिन दस सन्त आये, उनके मनमें था, आज सीरा मिले। बाईने भक्तिपर रीझकर प्रभु एक सन्तका वेश धारणकर इनके घरपर पधारे। उस समय गोपालीबाई श्रीठाकुरजीको जानकर सीरा बनाकर भोग लगाया और सन्तोंके सामने रख दिया। सन्तोंके मनमें आश्चर्य हुआ। दुसरे दिन भोग लगा रही थीं। सन्तभगवानुका सत्कार करके प्रसादसे भरी थाली लाकर बाईने सन्तके सामने रखकर सन्तोंने आपसमें बातचीत करके खीर-भोग आरोगनेकी प्रार्थना की—'प्रसाद पाइये।' सन्तने कहा—पहले भगवानुको इच्छा की तो बाईने खीर ही खवाई। तीसरे दिन पवाओ। बाईने कहा—भगवान् तो गन्धमात्र ग्रहण करते सिखरन भातकी इच्छा हुई तो बाईने सिखरन भात ही हैं, मैं उन्हें कैसे पवाऊँ ? सन्तने कहा—यदि आप अपने पवाया। आश्चर्यचिकत होकर सन्तोंने पृछा—तो आपने हाथसे उनके श्रीमुखमें ग्रास दे दें तो वे अवश्य ही बताया कि मुझे सन्त-भगवन्तका आशीर्वाद मिल गया खायेंगे। बाईने मन्दिरमें थाल ले जाकर अपने हाथसे है, अतः उसका ज्ञान हो गया है। फिर कभी दो सन्त पधारे, उन्होंने इच्छा की कि हमारे वस्त्र फट गये हैं। भगवान्के मुखमें ग्रास दिया। बड़े प्रेमसे भगवान्ने खा लिया। इससे बाईको बड़ा-भारी सुख हुआ, वे प्रेममें गोपाली बाईके यहाँ पहुँचकर उनसे नये वस्त्र ले लेंगे। विभोर हो गयीं। जिस सन्तकी कृपासे यह अभृतपूर्व इस इच्छासे आये सन्तोंको भोजन कराकर बाईने वस्त्र आनन्द मिला, उस सन्तको भोजन करानेकी उत्कण्ठासे अर्पण करके कहा कि जो इच्छा हो सो बनवा लो। मन्दिरके बाहर आयीं तो सन्तके दर्शन न हुए। अब इन्हें सन्तोंने त्याग दिखाया और वस्त्र लेनेसे इनकार कर बड़ी बेचैनी हुई। आप समझ गयीं कि वे सन्त भगवान् दिया, तब बाईने कहा—'जब आप वस्त्रकी इच्छा ही थे। फिर आप मन्दिरमें श्रीठाकुरजीको पवाने लगीं। करके आये हैं, तब फिर अब क्यों अस्वीकार करते इस बार प्रभुने कुछ भी नहीं खाया। तब ये अधीर होकर हैं?' सन्तोंने गोपालीके चरणोंकी वन्दना की और रुदन करने लगीं। उसी समय आकाशवाणी हुई कि एक आशीर्वादके साथ वस्त्र प्राप्त किये। इस प्रकार इनका बार मैंने तुम्हारे प्रेमसे खा लिया। अब तुम आग्रह न । सुयश सन्तोंमें फैल गया। श्रीरामदासजी सीतल परम सुसील बचन कोमल मुख निकसै। भक्त उदित रिब देखि हृदय बारिज जिमि बिकसै॥ अति आनँद मन उमँगि सन्त परिचर्जा करई। चरन धोय दंडौत बिबिधि भोजन बिस्तरई॥ बछबन निवास बिस्वास हरि जुगल चरन उर जगमगत। श्री ( रामदास ) रस रीति सों भली भाँति सेवत भगत॥ १९६॥ श्रीरामदासजी बड़े मधुर भावसे भक्तोंकी सेवा करते । ही निकलते थे। सूर्योदय होते ही जैसे कमल विकसित थे। इनके मुखसे शीतल, कोमल और नम्रतापूर्ण वचन हो जाते हैं, उसी प्रकार भक्तको देखकर आपका हृदय

छप्पय १९६. कवित्त ६२५ ] \* श्रीरामदासजी \* खिल उठता था। मनमें अपार उत्साह रखकर बड़ी रुचिके | से-उत्तम भोजन-प्रसाद पवाते। बछवनमें आपका निवास साथ सन्तोंकी विविध प्रकारसे सेवा-शुश्रूषा करते थे। स्थान था, भगवान्में आपका अटल विश्वास था और आते ही सन्तोंके श्रीचरणोंको धोकर चरणोदक लेते, उन्हें उन्होंके युगल श्रीचरणकमल आपके हृदय-भवनमें साष्टांग दण्डवत् करते; तत्पश्चात् अनेक प्रकारके उत्तम- | जगमगाते रहते थे॥ १९६॥ श्रीरामदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— किसी सन्तने श्रीरामदासजीके भक्ति-भावकी प्रशंसा लीजिये, फिर रामदास आ जायगा।' सन्तने कहा-'नहीं, पहले रामदासजीको बुलाकर उनका दर्शन करा सुनी तो वे इनकी भक्तिनिष्ठाको देखनेके लिये इनके आश्रमपर आये। संयोगवश ये वहीं बैठे थे। वे सन्त दीजिये। उसके बाद ही मैं प्रसाद पाऊँगा।' इस प्रकार इन्हींसे पूछने लगे कि 'श्रीरामदासजी कौन हैं ?' सन्तको उनका आग्रह देखकर श्रीरामदासजीने कहा—'आप आया देखकर श्रीरामदासजी जल्दीसे उठे और उन्होंने सन्तोंका सेवक रामदास यही है, यह आपका ही आश्रम सन्तके चरण धोकर चरणामृत लिया। इसके बाद है, कुपा करके आप अपने आश्रममें पधारिये और प्रसाद साष्टांग दण्डवत् करके बोले—'आप विराजो, रामदास पाइये।' यह सुनते ही वे सन्त श्रीरामदासजीके चरणोंमें अभी आता है।' आगन्तुक सन्तने कहा—'पहले हमें गिर पड़े। उनका हृदय आनन्दसे भर गया, वे फूले नहीं समा रहे थे। वे कहने लगे—'आपके सुयशकी चाँदनी यह बतलाइये कि रामदासजी कहाँ हैं, उनसे मिलनेकी मुझे तीव्र लालसा है और यहाँ आनेका हमारा यही मुख्य सर्वत्र फैली है, उससे सभी लोगोंको सुख-शान्ति मिल प्रयोजन है। उनसे मिलकर हमें शीघ्र ही चले जाना है।' रही है। आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरे श्रीरामदासजीने उत्तर दिया—'पहले आप चलकर प्रसाद | हृदयमें भी प्रकाश हो गया।' श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— स्नि एक साध् आयौ, भक्ति भाव देखिबे कों, बैठे रामदास, पृष्ठे रामदास कौन है?'। उठे आप धोए पाँव, आवै रामदास अब, 'रामदास कहाँ ? मेरे चाह और गोन है'॥ 'चलो जू प्रसाद लीजै दीजै रामदास आनि', 'यही रामदास, पग धारौ निज भौन है'। लपटानौ पाँयन सो चायन समात नाहिं, भायनि सों भर्यौ हिये, छाई जस जौन्ह है॥६२४॥ श्रीरामदासजीकी कन्याका विवाह था। उस अवसरपर | न दें। अवसर पाकर श्रीरामदासजीने दूसरी ताली लगाकर सबको बड़ा भारी उत्साह हुआ। अनेक प्रकारके पक्वान्न कोठेका ताला खोल लिया। आप किसीसे डरते न थे।

बाराती और घरातियोंके लिये बनाकर कोठेमें रख दिये गये। सन्तजन पधारे, आपने पोटली बँधवा दी और कहा कि

इनके पुत्र और नाती पक्वान्नोंकी रखवाली करने लगे। स्थानमें ले जाकर आपलोग भोग लगाइये और पाइये। सन्त-भगवन्तको पक्वान्नोंकी पोटलियाँ बँधवाकर आपने उन्होंने कोठेमें ताला बन्द कर दिया; क्योंकि उनके मनमें

डर था कि कहीं बाबाजी सब सामान साधु-सन्तोंको बाँट | महान् सुख प्राप्त किया। श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है— बेटी को विवाह, घर बड़ौ उतसाह भयो, किये पकवान नाना, कोठे मांझ धरे हैं।

करैं रखवारी सुत नाती दिये तारौ रहैं, और ही लगाई तारी खोल्यौ नहीं डरे हैं॥ आये गृह सन्त तिहैं पोट बँधवाय दई, पायौ यों अनन्त सुख ऐसे भाव भरे हैं।  \* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीरामरायजी

## भक्ति ग्यान वैराग्या जोग अंतर गति पाग्यो। काम क्रोध मद लोभ मोह मतसर सब त्याग्यो॥

कथा कीरतन मगन सदा आनँद रस भूल्यो। संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूल्यो॥ बैर भाव जिन द्रोह किय तासु पाग खसि भ्वै परी।

बिप्र सारसुत घर जनम रामराय हरि रति करी॥१९७॥ सारस्वत ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर श्रीरामरायजीने | कीर्तनमें मग्न होकर इसके आनन्दमय अनुभवसे झूमते

भगवानुमें प्रेम किया। आपकी चित्तवृत्ति ज्ञान, वैराग्य रहते थे। सन्तोंको देखकर आपका मन उसी प्रकार खिल और भक्तियोगमें सर्वदा पगी रहती थी। काम, क्रोध, जाता था, जैसे सूर्यको देखकर कमलका पुष्प। जिन अहंकार, लोभ, मोह और ईर्ष्या आदि मायिक विकारोंको दुष्टोंने आपसे द्वेष किया, आपको नीचा दिखाना चाहा, आपने सर्वथा छोड दिया था। आप सर्वदा भगवत्कथा-उन्हें स्वयं ही नीचा देखना पड़ा॥१९७॥

श्रीरामरायजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीरामरायप्रभुका जन्म रावी नदीके तटपर बसे लाहौर (पंजाब) में वि० सं० १५४० वैशाख शुक्ल ११ को मध्याह्नमें हुआ। आपके पिता श्रीगुरुगोपालजी और माता श्रीयशोमतिजी थीं। परम्परागत रूपसे घरमें विराजमान

श्रीजयदेवजीके ठाकुर श्रीराधामाधवजीने श्रीगुरुगोपालजीको स्वप्नादेश दिया कि मेरा चरणामृत अपनी धर्मपत्नीको पिलाओ, उससे एक महान् चमत्कारी भक्तपुत्र उत्पन्न होगा। पादोदक पान करते ही यशोमतिजीको ऐसा अनुभव हुआ कि किसी शक्तिविशेषने मेरे उदरमें प्रवेशकर मुझे कृतार्थ किया। किसीके मतसे श्रीरामेश्वरम्की यात्रामें वहीं जन्म हुआ, इसलिये इनके रामेश्वर, रामराय, रामदास और

श्रीगीतगोविन्दके कर्ता रामगोपाल आदि नाम पड़ गये। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिताने इन्हें गायत्रीके साथ श्रीराधागोपालमन्त्र दिया, जो वृन्दावनमें श्रीजीके द्वारा श्रीजयदेवजीको प्राप्त हुआ था। श्रीरामरायजीने वि० सं० १५५२ बसन्त पंचमीके दिन श्रीजयदेवजीकी जन्म-जयन्तीके उपलक्ष्यमें बिना सामग्री मँगवाये एक हजार

ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इससे आपकी महिमा सर्वत्र

विख्यात हो गयी। ठाकुर श्रीराधामाधवजीने आज्ञा दी कि तुम वृन्दावन जाओ। उसके बाद मैं चन्द्रगोपालके साथ आऊँगा। आदेश पाकर योगबलसे आप हरिद्वार पहुँच गये। वहाँ नानाके बड़े भ्राता श्रीआसुधीरजी मिले। उन्हें भी वृन्दावन ले आये। मार्गमें उपब्रज (अलीगढ़)-में प्रसादी नामके ब्राह्मण सन्तसेवा करते थे. उनके यहाँ विश्राम किया। उनकी दीनता देखकर आपने अपनी मुद्रिका उतारकर दे दी और आशीर्वाद दिया कि खुब

लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जाओ और श्रीराधामाधवका भजन

करो। कालान्तरमें वे श्रीसे सम्पन्न होनेपर श्रीराधामाधवकी

सेवा-पूजा करने लगे। एक दिन श्रीरामरायजीने वृन्दावनमें बास करनेकी इच्छा प्रकट की। लोगोंने समझाया कि यहाँ हिंसक जानवर रहते हैं, फिर भी एक दिन सभीको सोते हुए छोड़कर आप वृन्दावन पहुँच गये। यमुनापुलिन धीर समीरमें आपको श्रीराधामाधवजीके दिव्य दर्शन हुए।

श्रीठाकुरजीने आदेश दिया कि पहले तीर्थाटन करो, तब यहाँ बास करना। तीर्थाटन करते हुए आप काशी पहुँचे। विद्वानोंने प्रभावित होकर आपकी शोभायात्रा निकाली।

प्यय १९८ ]				
***************************************	1			
उसमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी, राजेश्वरतीर्थ, प्रकाशानन्दसरस्वती,	श्रीगौरांग महाप्रभु वृन्दावन पधारे और अक्रूरघाटपर			
श्रीवल्लभाचार्य, श्रीगोकुलानन्द, विद्यासागर गोविन्द कवि	ठहरे। श्रीरामरायजी नित्य गीतगोविन्द सुनाकर उन्हें			
रंगनाथ एवं विश्वनाथ आदि महापुरुष उपस्थित थे।	प्रसन्न करते। आपने अपना अधिकांश समय व्रज-			
ईर्ष्यावश जिन्होंने शास्त्रार्थ किया, उन्हें पराजित करके	वृन्दावनमें ही बिताया। अन्तिम समयमें कहीं आना-जाना			
भक्तिकी स्थापना की। हजारों लोगोंको प्रसाद पवाकर	बन्द करके आप बन-विहार और वंशीवटमें रहकर			
सन्तुष्ट किया। श्रीनित्यानन्द महाप्रभुने प्रसन्न होकर इन्हें	भजन-ध्यान करते रहे। उसी समय आपने ब्रह्मसूत्रपर			
अपनी ओर आकर्षित किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीने	गौरविनोदिनी वृत्ति लिखी। इनके छोटे भ्राता			
श्रीरामरायजीको बताया कि ये संकर्षण भगवान् हैं, इनसे	श्रीचन्द्रगोपालजीने वृत्तिके ऊपर भाष्य किया।			
दीक्षा ले लो। गुरुत्वको स्वीकार करो। आचार्य होकर	श्रीरामरायजीके संस्कृतमें द्वादश ग्रन्थ हैं। आदिवाणी और			
भी इन्होंने उनके गुरुत्वको स्वीकार किया। आपके	श्रीगीतगोविन्दपर पदावली ये भाषाग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इस			
उत्कृष्ट दैन्यको देखकर श्रीवल्लभाचार्यजी बहुत सन्तुष्ट	प्रकार वि० सं० १५४० तक आपकी दिव्य जीवनलीला			
हुए। इसके पश्चात् श्रीरामरायजी श्रीनित्यानन्दजीके	रही। आपके १२ प्रधान शिष्य थे। इनके नाम इस प्रकार			
साथ नवद्वीप पधारे और श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका दर्शन	हैं—(१) श्रीभगवानदासजी, (२) श्रीगरीबदासजी, (३)			
किया। उन्हें अष्टपदी सुनाया। प्रसन्न होकर	श्रीविष्णुदासजी, (४) श्रीयुगलदासजी, (५) गोस्वामी			
श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने कहा—'आप साक्षात् रामभद्र हैं।'	श्रीराधिकानाथजी, (६) श्रीकिशोरदासजी, (७)			
मैं श्रीवृन्दावनमें आकर आपसे मिलूँगा। अपने साथ	श्रीकेशवदासजी, (८) श्रीमनोहरदासजी, (९)			
भूगर्भ और लोकनाथको ले जाओ। आप श्रीजगन्नाथ	   श्रीलाखादासजी, (१०) श्रीमधुसूदनदासजी, (११)			
भगवान्का दर्शन करते हुए वृन्दावन आये।	   श्रीहरिदासजी पटेल तथा (१२) श्रीतीर्थरामजी जोशी।			
श्रीभगवन्तमुदितजी				
	•			
कुंजबिहारी केलि सर				
दंपति सहज सनेह प्रीवि				
अननि भजन रस रीति पु	ष्ट मारग करि देखी।			
बिधि निषेध बल त्यागि प	गि रति हृदय बिसेषी॥			
माधव सृत संमत रसिक ति	नलक दाम धरि सेव लिय।			
_	रसना आस्वाद किय॥१९८॥			
_	जो पारस्परिक सहज स्नेह और प्रीतिकी जो अन्तिम			
भक्तोंसे समर्थित तुलसीकण्ठी और तिलक धारणकर				
अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्णकी नित्य-नियमसे सेवा की	<b>1</b>			

तथा उदार भगवान्के परमोदार सुयशका अपनी वाणीसे | उत्तम-से-उत्तम मार्ग मानकर अपनाया, उसीपर चले। वर्णन करके उसके रसका आस्वादन किया।

श्रीकुंजविहारिणी-कुंजविहारीकी नित्य-निकुंजलीला इनके

भक्तिसे भिन्न लौकिक-वैदिक विधि-निषेधोंका सहारा

छोड़कर आपका हृदय विशेषकर श्रीराधाकृष्णके परमानुरागमें हृदयमें सर्वदा प्रकाशित रहती थी। दम्पति श्रीराधाकृष्णका सराबोर रहता था॥ १९८॥

\* यो मद्भक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क श्रीभगवन्तमुदितजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीभगवन्तमुदितजी परमरसिक सन्त थे। आप आगराके धोती पहन लें और शेष सब घर-द्वार, कोठार-भण्डार, सूबेदार नवाब शुजाउल्मुल्कके दीवान थे। कोई भी ब्राह्मण, चल-अचल सम्पत्ति श्रीगुरुदेवको समर्पण कर दें और हम गोसाईं, साधु या गृहस्थ ब्रजवासी जब आपके यहाँ पहुँच दोनों वृन्दावनमें चलकर भजन करें। स्त्रीकी ऐसी बात जाता तो आप अन्न, धन और वस्त्र आदि देकर उसे प्रसन्न सुनकर श्रीभगवन्तमुदितजी उसपर बहुत प्रसन्न हुए और करते थे; क्योंकि व्रजवासियोंके प्रेममें इनकी बृद्धि रम गयी बोले—'सच्ची गुरु-भक्ति करना तो तुम ही जानती हो, यह थी। आपके गुरुदेवका नाम श्रीहरिदासजी था। ये श्रीवृन्दावनके तुम्हारी सम्मति हमको अत्यन्त प्रिय लगी है।' ऐसे कहते ठाकुर श्रीगोविन्ददेवजी मन्दिरके अधिकारी थे। इन्होंने हुए उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। गुरुदेव रात्रिमें बाहर व्रजवासियोंके मुखसे श्रीभगवन्तमुदितजीकी बड़ी प्रशंसा द्वारपर बैठे सुन रहे थे। सर्वस्व-समर्पणकी बात गोस्वामी सुनी तो इनके मनमें आया कि हम भी आगरा जाकर श्रीहरिदासजीने सुन ली और उन्होंने जान लिया कि ये (शिष्य) भक्तकी भक्ति देखें। सर्वस्व-त्याग करके विरक्त बनना चाहते हैं, जिसका अभी श्रीभगवन्तमुदितजीने सुना कि श्रीगुरुदेव आ रहे हैं योग नहीं है, अत: आप उसी समय बिना श्रीभगवन्तमुदितजीसे तो इन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि ये अपने अंगोंमें फूले नहीं मिले ही परिचित व्यक्तिको बताकर लौटकर श्रीवृन्दावनको समाये। ये अपनी स्त्रीसे बोले कि 'कहो, श्रीगुरु-चरणोंमें चले आये और इनके प्रेम-भरे त्यागके प्रणपर बहुत ही क्या भेंट देनी चाहिये ?' स्त्रीने कहा—'हम दोनों एक-एक | सन्तुष्ट हुए। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है— सूजा के दीवान भगवन्त रसवन्त भए, वृन्दावन बासिन की सेवा ऐसी करी है। बिप्र के गुसाईं साधु कोऊ ब्रजवासी जाहु, देत बहु धन एक प्रीति मित हरी है।। सुनी गुरुदेव, अधिकारी श्रीगोविन्द देव, नाम हरिदास 'जाय देखें' चित धरी है। जोग्यताई सीवां प्रभु दूध भात माँगि लियो कियौ उत्साह तऊ पेखें अरबरी है॥६२६॥ सूनी गुरु आवत, अमावत न किहूँ अंग रंग भिर तिया सों, यों कही 'कहा कीजियै?'। बोली घर बार पट सम्पति भण्डार सब भेंट किर दीजै, एक धोती धारि लीजियै॥ रीझे सुनि बानी, साँची भक्ति तैं ही जानी, मेरे अति मन मानी, कहि आँखें जल भीजियै। यही बात परी कान, श्रीगुसाईं लई जान, आये फिरि वृन्दावन, पन मित धीजियै॥६२७॥ श्रीभगवन्तमुदितजीको जब यह मालूम हुआ कि मनमें दु:ख न माना; क्योंकि आपका मन भगवान्की भक्तिमें श्रीगुरुदेव आये और वापस चले गये तो आपका उत्साह सराबोर था और दृष्टिमें श्रीवृन्दावन-बिहारिणी-बिहारीजी नष्ट हो गया। हृदयमें अपार पश्चात्ताप हुआ। फिर आपने समाये हुए थे। वास्तवमें आप बड़े ही भाग्यशाली और प्रेमी गुरुदेवके दर्शन करनेका विचार किया और नवाबसे आज्ञा सन्त थे। संसारमें आपका भगवत्प्रेम प्रसिद्ध था। माँगकर श्रीवृन्दावन आये। गुरुदेवके दर्शनकर सुखी हुए। श्रीभगवन्तमुदितजीके पिता श्रीमाधवदासजी रसिक थे। बहुतसे लीला-पदोंकी रचना की। आपका 'श्रीरसिक आगे उनकी कथा सुनिये— अनन्यमाल' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस प्रकार आपने अनन्य-'श्रीमाधवदासजी बेसुध हैं, नाड़ी छूटनेवाली है, अब इनका अन्तिम समय आ गया है'— ऐसा जानकर लोग प्रेमका एकरस निर्वाह किया। गुरुदेवसे आज्ञा लेकर आगराको उन्हें पालकीमें बैठाकर आगरासे श्रीवृन्दावनधामको ले लौट गये। वहाँ किसी कारणवश कई व्रजवासी चोरोंने आपके घरमें ही चोरी कर ली, पर इससे आपने जरा भी चले। जब आधी दूर आ गये, तब श्रीमाधवदासजीको होश

 श्रीलालमतीजी \* छप्पय १९९] हो आया। दु:खित होकर आपने लोगोंसे पूछा कि क्रूरो! | है, इसे जब वहाँ जलाया जायगा, तब इसमेंसे बड़ी-भारी तुम लोग मुझे कहाँ लिये जा रहे हो ?' लोगोंने कहा— | दुर्गन्ध निकलेगी, वह प्रिया-प्रियतमको अच्छी नहीं लगेगी।' 'आप जिस श्रीवृन्दावनधामका नित्य ध्यान किया करते हैं, | प्रिया-प्रियतमके पास जानेयोग्य जो होगा, वह अपने-आप वहीं ले चल रहे हैं।' यह सुनकर आपने कहा—'अभी | उनके पास चला जायगा। आप ऐसे भावकी राशि थे। लौटाओ, यह शरीर श्रीवृन्दावन जानेके योग्य कदापि नहीं । वापस जाकर आगरामें ही आपने शरीर छोड़ा। श्रीप्रियादासजीने श्रीमाधवदासजीकी इस भावनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है— रह्यौ उत्साह उर दाह कौ न पारावार कियौ लै विचार, आज्ञा माँगि, बन आये हैं। रहे सुख लहे, नाना पद रचि कहे, एक रस निर्बहे ब्रजवासी जा छुटाये हैं॥ कीनी घर चोरी, तऊ नेकु नासा मोरी नाहिं, बोरी मित रंग, लाल प्यारी दूग छाये हैं। बड़े बड़भागी, अनुरागी, रित जागी, जग माधव रिसक बात सुनौ पिता पाये हैं॥६२८॥ आयौ अन्तकाल जानि बेसुध पिछानि, सब आगरे तें लैकै चले वृन्दावन जाइयै। आये आधी दूर, सुधि आई बोले चूर ह्वै कै 'कहाँ लिये जात कूर ?' कही जोई ध्याइयै॥ कह्यौ 'फेरो तन बन जाइबे कौ पात्र नाहीं, जरै बास आवै प्रिया पिय को न भाइयै'। जानहारौ होई, सोई जायगो जुगल पास, ऐसे भावरासि ताही ठौर चिल आइयै॥६२९॥ श्रीलालमतीजी गौर स्याम सों प्रीति प्रीति जमुना कुंजनि सों। बंसीबट सों प्रीति प्रीति ब्रज रज पुंजनि सों॥ गोकुल गुरुजन प्रीति प्रीति घन बारह वन सों। पुर मथुरा सों प्रीति प्रीति गिरि गोबर्द्धन सों॥ बास अटल बृन्दाबिपिन दृढ़ करि सो नागरि कियो। दुर्लभ मानुष देह को लालमती लाहो लियो॥१९९॥ परमभक्ता श्रीलालमतीजीने गौर-श्याम श्रीराधाकृष्ण, | गोवर्धनके प्रति अपार प्रीति थी। इस चतुर व्रजभक्ता श्रीयमुनाजी तथा उसके तटपर विराजमान कुंज-भवनोंसे देवीने श्रीवृन्दावनधाममें अखण्डवास किया। इस प्रकार प्रेम किया। इनके हृदयमें वंशीवट, व्रजरज, गोकुल, इन्होंने दुर्लभ मानवदेहका अलभ्य लाभ (हरिभक्ति) व्रजवासी रसिक सन्त, श्रीमथुरापुरी एवं श्रीगिरिराज प्राप्त किया॥१९९॥ श्रीलालमतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है— श्रीलालमतीजीकी व्रज-वृन्दावनमें बडी निष्ठा थी। यात्रा बन्द करके श्रीवृन्दावनमें ही वास करो। स्वप्नका उन्होंने यमुना-कुंज आदि अष्ट स्थानोंमें प्रेम किया, वे स्मरणकर आपके मनमें बड़ा मोद हुआ। प्रात: आपने अपनी दासीके साथ यमुना-स्नान किया और कुंजमें आकर इनकी यात्रा करती रहती थीं। शरीरके क्षीण होनेपर भी दर्शन-यात्रा, सेवा आदिमें शिथिलता नहीं आयी। दर्शनोंकी बैठ गयीं। वहींपर श्रीराधाकृष्णने इन्हें दर्शन दिया। प्रेममें विह्वल प्रभुकी शोभाका गान करके दासीको सुनाने लगीं। तीव्र उत्कण्ठा देखकर प्रभुने इन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि प्रात:काल श्रीयमुना-कुंजमें आओ, वहाँ तुम्हें दासी भी सुनने लगी, पर दासीको भगवान्की छायाके भी प्रत्येश देशंनक्षां ने । दुन्हार्त जैन्नर एका विस्तृ को अपने । अपने के अपने स्वार्थ के स्वर्ध के अपने स्वर करके मुरली बजायी। जिसकी ध्वनि दासीको सुनायी पड़ी | बेसुध पड़ी रहीं। पश्चात् श्यामसुन्दरकी उसी शोभाका और वह भी कृतार्थ हुई। इसके बाद लीलाधारी प्रभु यमुनामें | ध्यान करती रहीं। इस प्रकार श्रीधाममें वास प्राप्तकर कूद पड़े। कुछ दूरतक बाईको दर्शन होते रहे। इसके बाद | लालमतीजीने जीवन-जन्म सफल किया।\* भक्त ही सर्वश्रेष्ठ किबजन करत बिचार बड़ो कोउ ताहि भनिजै। कोउ कह अवनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै॥ सो धारी सिर सेस सेस सिव भूषन कीनो।

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \*

दासीपर भी किंचित् कृपा हो। भगवान्ने प्रार्थना स्वीकार | प्रभु अन्तर्धान हो गये। श्रीलालमतीजी दासीसहित कुंजमें

[ भक्तमाल-अङ्क

सिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनो॥ रावन जीत्यो बालि (पुनि) बालि राम इक सर दँड़े।

अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारें ते बड़े॥२००॥ परम विवेकी ऋषिगण एकत्र होकर विचार करने लगे। कि) शिवका निवास-स्थान कैलासपर्वत है, उसके समेत कि सबसे बडा कौन है ? जिसका भजन-कीर्तन किया रावणने शिवको अपनी भुजाओंपर उठा लिया। उस रावणको जाय। किन्हीं लोगोंने कहा कि पृथ्वी सबसे बड़ी है, क्योंकि बालिने जीत लिया। ऐसे पराक्रमी बालिका वध करनेवाले

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सबसे बडे हैं। (यह सुनकर पाँचवें

वर्णन किया है। श्रीअग्रदेवाचार्यजी कहते हैं कि उक्त प्रमाणोंसे

उस पृथ्वीको शेषभगवान्ने अपने फणोंपर रजकणके समान श्रीपंचने कहा कि) ऐसे महतो महीयान् भगवान्को जो धारण कर रखा है, अत: शेष उससे बडे हैं। (तीसरेने कहा भक्त अपने हृदयमें धारण करते हैं, वे तीनों लोकोंमें सबसे कि) शेषको श्रीशंकरजीने अपने उरपर आभूषणकी तरह श्रेष्ठ हैं। श्रीअग्रदेवजीका मत है कि सबसे बड़े जो भक्तजन

यह सारे विश्वको धारण की हुई है। (दूसरेने कहा कि)

धारण कर रखा है, अत: शंकरजी बड़े हैं। (चौथेने कहा | हैं, उन्हींकी सेवा करो॥ २००॥ भक्तोंके सुयशकी महिमा

नेह परसपर अघट निबहि चारौं जुग आयो। अनुचर को उतकर्ष स्याम अपने मुख गायो॥ ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जग जानैं। पुर प्रबेस रघुबीर भृत्य कीरति जु बखानैं॥

अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस। हरि सुजस प्रीति हरि दास के त्यों भावैं हरि दास जस॥ २०१॥

जिस प्रकार भगवद्भक्तोंको भगवान्के सुयशमें प्रीति सदा ही सराबोर रहते हैं। इसको सारा संसार जानता है।

वनवासकी अवधि पूरी होनेपर श्रीअयोध्या-पुरीमें प्रवेश होती है, उसी प्रकार भगवान्को भी अपने प्रेमी भक्तोंकी कथा बहुत ही अच्छी लगती है। भक्तोंके और भगवानुके पारस्परिक करते समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने अनुचरोंकी कीर्तिका प्रेमका चारों युगोंमें निर्वाह हुआ है—यह सर्वदा पूर्ण और

एक-सा रहता है। अपने भक्तोंकी महिमाको भगवान्ने बार-यह सिद्ध है कि भक्तोंके गुणोंका वर्णन करनेसे श्रीसीतापति बार अपने श्रीमुखसे गाया है। भगवान् भक्तोंके अनुरागमें | श्रीरामचन्द्रजी सदाके लिये वशमें हो जाते हैं॥ २०१॥

\* भक्तमालमें वर्णित भगवद्भक्तोंका पावन चरित यहाँ पूर्ण हो जाता है। आगेके छन्दोंमें भक्तोंकी महिमा आदिका वर्णन हुआ है।

किल बिसेष परचो प्रगट आस्तिक ह्वै कै चित धरौ।

चरित्र इस भक्तमालमें नहीं आया है, उनका भी उसके पेटमें कैसे समा सकता है॥२०४॥ भगविद्वग्रह

उतकर्ष सुनत संतनि को अचरज कोऊ जिनि करौ॥२०२॥

इस भक्तमालमें या अन्यत्र इतिहास-पुराणोंमें सन्तोंकी बहुत बड़ी बड़ाईका वर्णन सुनकर कोई आश्चर्य (अविश्वास) न करे; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने (श्रीभागवतमें) दुर्वासा ऋषिसे कहा है कि 'मैं भक्तोंके वशमें हूँ। श्रीध्रवजी, गजेन्द्र, श्रीप्रह्लादजी आदिके चरित्र एवं श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शबरीके फलोंका सादर खाया जाना आदि प्रसंग सन्तोंकी बडाईके साक्षी हैं। श्रीयुधिष्ठिरजीके राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णने साधु-ब्राह्मणोंके । धारण करो, तभी रहस्य समझमें आयेगा॥ २०२॥ श्रीनाभादासजीकी भक्तोंसे विनय-प्रार्थना पादप पेड़िहं सींचते पावै अँग अँग पोष। पूरबजा ज्यों बरनते सब मानियो संतोष॥२०३॥ भक्त जिते भूलोक मैं कथे कौन पै जायँ।

समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥ २०४॥ श्रीमूरति सब बैष्नव लघु बड़ गुननि अगाध। आगे पीछे बरनते जिनि मानौ अपराध॥२०५॥ फल की सोभा लाभ तरु तरु सोभा फल होय। गुरू सिष्य की कीर्ति अचरज नाहीं कोय॥२०६॥ चारि जुगन में भगत जे तिन के पद की धूरि। सर्बसु सिर धरि राखिहौं मेरी जीवन मूरि॥२०७॥ जैसे पेडकी जड़को सींचनेसे उस पेड़के अंग-। स्मरणकर सन्तोष करना चाहिये॥ २०३॥ इस जगत्में प्रत्यंग, शाखा, पत्र-पुष्प आदि सभी पुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वाचार्यों (सम्प्रदायाचार्यों)-के वर्णनसे

सभी भक्तोंका वर्णन हो गया, ऐसा मानकर जिनका

चरण धोये और उनकी जूठी पत्तलें उठायीं। पाण्डवोंपर आयी अनेक बडी-बडी विपत्तियोंसे उनकी रक्षा की। भक्त चन्द्रहासजीको दुष्टने विष दिया, पर उसके बदले उन्हें विषया नामक स्त्री और राज्यकी प्राप्ति हुई। ये तो पिछले तीन युगोंकी बातें हुईं। इस कलियुगमें तो विशेष सन्तोंके चमत्कार प्रकट हुए। अतः कुतर्क त्यागकर विश्वासपूर्वक आस्तिक-बुद्धिसे भक्तचरित्रोंको हृदयमें

जितने भगवान्के भक्त हैं, उन सबके चरित्रोंका वर्णन

कौन कर सकता है ? जैसे कोई छोटी चिडिया समुद्रके

सम्पूर्ण जलको पी लेनेकी श्रद्धापूर्वक इच्छा करे तो वह

या तुलसीदल चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, सबकी एक-स्थित बीजसे वृक्ष-उत्पत्ति-रूप लाभ होता है तथा जैसी महान् महिमा है, उसी प्रकार वैष्णवजन चाहे छोटे फलोंसे वृक्षकी शोभा और वृक्षसे फलोंका लाभ मिलता हों या बड़े, सभी अनन्त गुणोंके कारण महा महिमावाले है, उसी प्रकार गुरुजनोंकी महिमा और कीर्तिसे शिष्योंकी हैं। इस भक्तमालमें किसीका वर्णन आगे-पीछे, बड़े-महिमा और कीर्ति बढ़ती है तथा शिष्योंकी कीर्तिसे गुरुजनोंकी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है॥ २०६॥ चारों छोटेकी दृष्टिसे नहीं किया गया है। इसलिये यदि कहीं आगे वर्णनीयका पीछे वर्णन दिखायी पडे तो पाठकजन युगोंमें जितने भक्त हुए हैं तथा जो आगे होंगे, उनके श्रीचरणकमलोंकी धूलि सर्वदा हमारे मस्तकपर रहे, वही इसमें दासका अपराध न मानें॥ २०५॥ जिस प्रकार वृक्षमें लगे रहनेसे फलोंकी शोभा होती है और फलमें हमारी जीवनमूरि है और वही सर्वस्व है॥ २०७॥ भक्तोंकी महिमा जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ। हरिजन को गुन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ॥ २०८॥ हरिजन को गुण बरनते जो करै असूया आय। इहाँ उदर बाढ़ै बिथा औ परलोक नसाय॥२०९॥ ( जो ) हरि प्रापित की आस है तौ हरिजन गुन गाव। नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यों जनम जनम पछिताय।। २१०।। भक्तदास संग्रह करै कथन श्रवन अनुमोद। सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठै हिर की गोद॥२११॥

\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \*

[ भक्तमाल-अङ्क

उन की भक्ती सुकृत को निहँचै होय बिभागि॥ २१२॥ भक्त दास जिन जिन कथी तिन की जूँठनि पाय। मो मित सार अच्छर द्वै कीनौं सिलौ बनाय॥२१३॥ काहू के बल जोग जग्य, कुल करनी की आस।

भक्त नाम माला अगर ( उर ) बसौ नारायनदास॥ २१४॥

अच्युत कुल जस बेर इक जाकी मति अनुरागि।

इस संसारमें कीर्ति और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति भगवत्प्राप्ति हो जायगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंमें होती है, त्रितापका नाश होता है तथा हृदयमें अटलरूपसे किये गये अनेक पुण्य भुने हुए बीजकी तरह बेकार हो भगवान्का वास हो जाता है॥ २०८॥ हरिभक्तोंके गुण-जायँगे। उनसे कल्याण न होगा फिर जन्म-जन्ममें पछताना पडेगा॥ २१०॥ जो कोई भक्त-चरित्रोंका संग्रह वर्णनको सुनकर जो लोग उनके गुणोंमें दोषारोपण करते

भगवद्भक्तोंके गुण और चरित्रोंका वर्णन करनेसे

हैं, उन्हें इस जन्ममें जलोदर आदि अनेक उदर रोगोंसे

कष्ट भोगना पड़ता है और मरनेके बाद उनका परलोक

पुत्रके समान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोदमें बैठा लेते भी नष्ट हो जाता है॥२०९॥ यदि भगवानुको प्राप्त हैं॥ २११॥ अच्युतगोत्रीय भगवद्भक्तोंकी कीर्तिको कहने-

करनेकी आशा है तो भक्तोंके गुणोंको गाइये, निस्सन्देह

करे अथवा कथन-श्रवण एवं समर्थन करे, वह भगवानुको

कवित्त ६३१ ] \* भक्तोंकी महिमा*\** करे॥ २१३॥ किसीको बल, योग और यज्ञ आदिका सुननेमें जिसके मनमें एक बार अनुराग हो गया, वह मनुष्य निश्चय ही उन सन्तोंके भजन और पुण्यमें भरोसा है, इनसे कल्याण होगा यह विश्वास है। हिस्सेदार हो जाता है। (जैसे पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रका किसीको अपने उत्तम कुल और पवित्र कर्मोंकी आशा सहज अधिकार होता है)॥ २१२॥ जिन-जिन सन्त, है कि इन्हींसे भवसागर पार हो जायँगे। पर इन योग, यज्ञादिका अनुष्ठान मेरे वशका नहीं है, इसलिये हमें विद्वान् महान् महानुभावोंने भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन किया है, उन्हींकी जूठन लेकर मैंने अपनी बुद्धिके इनकी आशा नहीं है। मुझ नारायणदासकी तो यही अनुसार इस 'भक्तमाल' की रचना उसी प्रकार की है, इच्छा है कि गुरुदेव, भगवद्भक्तोंके नाम और उनके जैसे कोई सिला (खेतके अन्न-कण) बीनकर संग्रह | चिरत्र मेरे हृदयमें निवास करें॥ २१४॥ ॥ श्रीनाभादासविरचित भक्तमाल सम्पूर्ण हुआ॥ श्रीप्रियादासजीद्वारा गुरु-वन्दना रिसकाई किबताई जाहि दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं। उर रङ्गभवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिम्ब भाय हैं॥ रसिक समाज में विराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलें सुख समुदाय हैं। जन मन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूँ को मन हरि लीनौ याते राय हैं॥६३०॥ भक्तिरसबोधिनी टीकाकार श्रीप्रियादासजी भक्तमालके गुरुदेवजी रसिकोंकी सभामें विराजमान होकर जिस उपसंहारमें अपने गुरुदेवजी श्रीमनोहरदासजीका परिचय समय उज्ज्वल शृंगाररसकी कथा कहते हैं, उस समय देते हुए कहते हैं कि मेरे गुरुदेवने जिन-जिन लोगोंको सभी भावुक श्रोता उनके श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाकर देखते ही रह जाते हैं और आनन्दमें मग्न होकर रसिकता और कवित्व प्रदान किया, उन्हें-उन्हें उसकी प्राप्ति हुई और उनके हृदयमें सरसता तथा नवीन प्रेमका फूले नहीं समाते हैं। अपने भक्तोंके मनको हरण करके चाव उत्पन्न हुआ। मेरे गुरुदेवके हृदयरूपी रंगमहलमें भगवान् श्रीकृष्णने 'मनोहर' यह नाम पाया, परंतु मेरे श्रीराधारमणजी उसी प्रकार निवास करते हैं, जैसे कि श्रीगुरुदेवने मनोहरके मनको भी हर लिया है, इसीलिये दर्पणमें प्रतिबिम्ब स्वाभाविक रूपसे रहता है। मेरे वे 'मनोहरराय' हैं। इनहीं के दास दास दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है। गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन पत्त्रौ जाको कत्त्रौ बास वृन्दावन लीला मिलि गाई है।। मित उनमान कह्यौ लह्यौ मुख सन्तिन के अन्त कौन पावै जोई गावै हिय आई है। घट बढ़ जानि अपराध मेरौ क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मानि मैं सुनाई है॥६३१॥ पा सकता है। सम्पूर्ण लीलाओंका वर्णन करना असम्भव इन्हीं श्रीमनोहरदासजीके दासोंका दास यह प्रियादास है, ऐसा जानिये। उसने श्रीभक्तमालकी इस सुखदायिनी है। जिसकी बुद्धिमें जितनी लीलाएँ आयीं, उसने उतनी भक्तिरसबोधिनी टीकाका वर्णन किया है। श्रीगोवर्धन-गायी हैं, इन लीलाओंको गानेमें मुझसे जो कुछ घटी-बढ़ी नाथजीके हाथोंमें जिनका मन पड़ गया है, उसने श्रीवृन्दावनमें हो गयी हो, इस अपराधको आपलोग क्षमा कीजिये। निवास करके और सन्तोंसे मिलकर इस लीलाका गान साधुजन गुणग्राही होते हैं, त्रुटियोंकी ओर ध्यान नहीं देते हैं, ऐसा मानकर ही मैंने अपनी तुच्छ-बुद्धिके अनुसार इन किया है। सन्तोंके श्रीमुखसे जैसा कुछ सुना, उसे ही अपनी बुद्धिकेर्यभुक्तार Discord Segretation: #dscapsida atma आं MADE स्पान के OVE BY Avinash/Sha



\* यो मद्धक्तः स मे प्रियः \* [ भक्तमाल-अङ्क

# श्रीप्रियादासजीद्वारा श्रीनाभादासजीकी वन्दना

कीनी भक्तमाल सुरमाल नाभा स्वामी जू ने तरे जीव जाल जग जन मन पोहनी। भक्ति रस बोधिनी सो टीका मित सोधिनी है बाँचत कहत अर्थ लगै अति सोहनी॥

जो पै प्रेम लक्षना की चाह अवगाहि याहि मिटै उर दाह नेकु नैननि हूँ जोहनी।

टीका अरु मूल नाम भूल जात सुनै जब रिसक अनन्य मुख होत विश्वमोहनी॥६३२॥

गोस्वामी श्रीनाभाजीने सुन्दर मधुर-रससे व्याप्त। श्रीभक्तमालकी रचना की। यह सभी भक्तोंके मनको गूँथनेवाली है। इसका पठन-श्रवण करके अनेक जीव भवसागरसे तर

गये। उसी भक्तमालकी यह भक्तिरसबोधिनी नामकी टीका है। इसके पठन-श्रवणसे मायासे मोहित बुद्धि भी शुद्ध हो

जाती है। पढ़नेमें, कहनेमें और अर्थ करनेमें यह बहुत ही

नाभा जु कौ अभिलाष पुरन लै कियौ मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।

सम्वत् प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर, फालगुन मास बदी सप्तमी बिताइकै। नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै, प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै॥६३३॥

उसकी साक्षी मैंने पहले ही भलीभाँति गाकर सुना दी है। जिसके हृदयमें भक्त-भगवच्चरणारविन्दोंमें भिक्त | पूर्ण हुई। मेरी प्रार्थना है कि सुखप्रद श्रीनारायणदासजी

और विश्वास हो, उसीके सामने इस भक्तमालकी कथाको कहना चाहिये, जिसे सुनकर उसका हृदय भक्तमालके रंगमें डूब जाय और वह श्रद्धासमेत सन्तोंकी 🛘 करें ॥ ६३३ ॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा भगवान्से निवेदन

अगिनि जरावौ लैके जल में बुड़ावौ भावै सूली पै चढ़ावौ घोरि गरल पिवायबी। बीछू कटवावौ कोटि साँप लपटावौ हाथी आगे डरवावौ ईति भीति उपजायबी॥ सिंह पै खवावौ चाहौ भूमि गड़वावौ तीखी अनी बिधवावौ मोहिं दुख नहीं पायबी।

व्रजजनोंके प्राणस्वरूप हे श्रीकृष्णभगवान्! आप। चाहे मुझे अग्निमें डालकर जलाइये, चाहे जलमें

डुबाइये, आपकी इच्छा हो तो शूलीपर चढ़ा दीजिये, घोलकर विष पिला दीजिये, बिच्छुओंसे कटवाइये, मेरे शरीरमें करोड़ों साँप लिपटवाइये, मतवाले हाथीके आगे करनेकी इच्छा है तो वह इस टीकाका निरन्तर पठन, श्रवण

और मनन करे। जो इसे मनके नेत्रोंसे भलीभाँति देखेगा, उसके हृदयका दाह दूर हो जायगा। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसे प्रेमसे सुनते समय यह भूल जाता है कि हम मूलका श्रवण कर रहे हैं या कि टीकाका। अनन्यरसिक

भगवद्भक्तके श्रीमुखसे जब इसका कथन होता है, तब यह अच्छी लगती है। यदि किसीको प्रेम-लक्षणा भक्तिको प्राप्त । सारे जगत्को मोहित करनेवाली हो जाती है।

भक्ति विशवास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै सन्तनि लड़ाइकै॥ मैंने श्रीनाभाजीकी अभिलाषाको ही पूर्ण किया है।। सेवा करने लग जाय। प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् १७६९ फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको यह 'भक्तिरसबोधिनी' टीका

> (श्रीनाभास्वामी) सुखस्वरूप श्रीभक्तमाल-ग्रन्थके समेत दासानुदास मुझ प्रियादासके हृदयमें सर्वदा निवास

ब्रजजन प्रान कान्ह बात यह कान करौ भक्त सों बिमुख ताको मुख न दिखायबी॥६३४॥ लिये प्रकट कर दीजिये, सिंहके द्वारा मरवाइये, चाहे धरतीमें गडवाइये, तीक्ष्ण भाला आदिसे छिदवाइये-इन

> सबसे मुझे नाममात्रका भी दु:ख नहीं होगा, परंतु हे कान्ह! ध्यानपूर्वक मेरी यह बात सुन लीजिये कि जो भक्तविमुख हैं, उनका मुख कभी न दिखाइये, उससे मुझे

डलवा दीजिये, ईति (पीड़ा), भीति आदि मेरे कष्टके । बहुत भयंकर कष्ट होगा॥६३४॥ ॥ श्रीप्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका पूर्ण हुई॥